वैदिक ज्योतिष श्रृंखला

चिकित्सा ज्योतिष के मौलिक तत्त्व

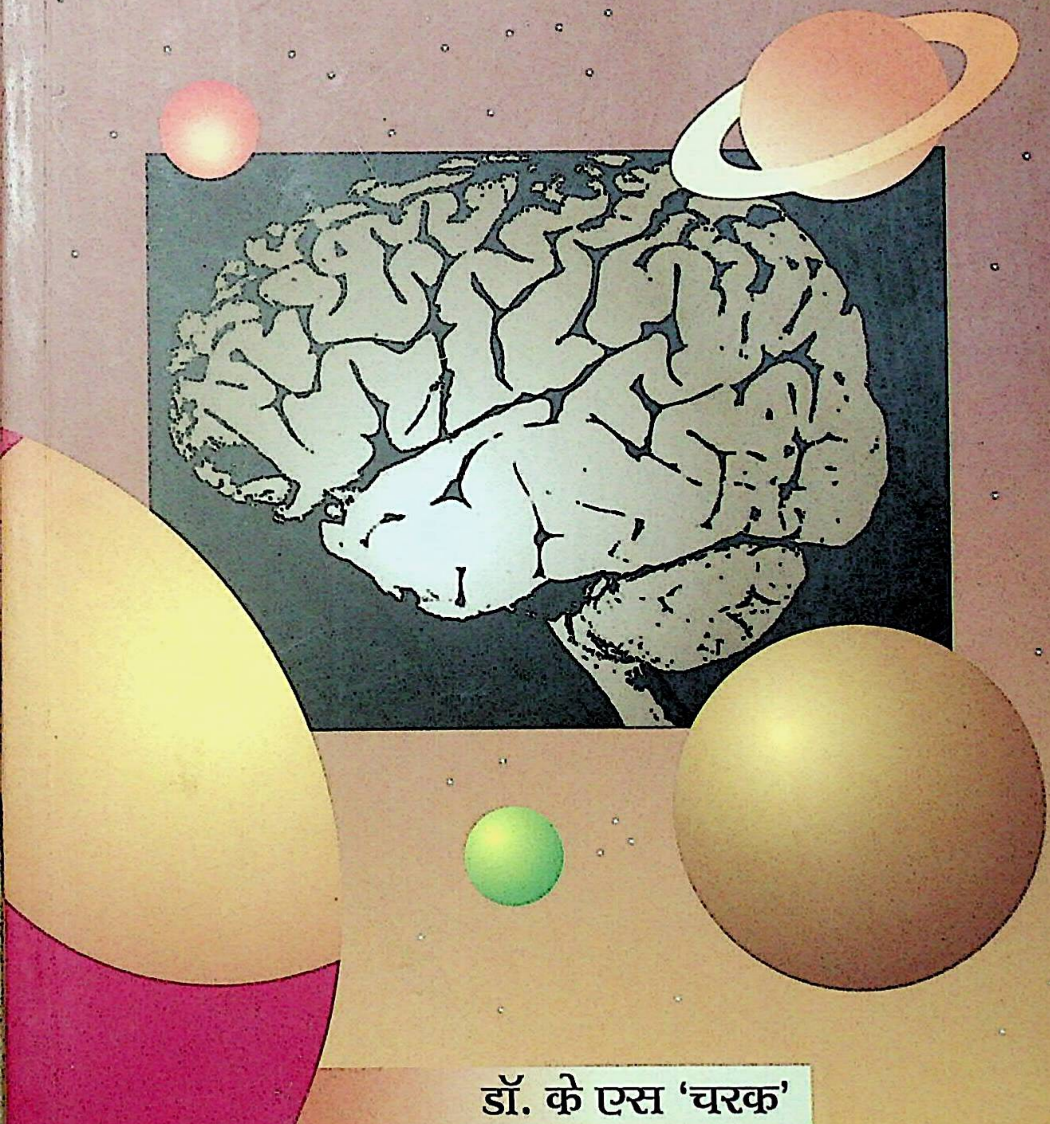

डॉ. के एस 'चरक'

चिकित्सा ज्योतिष
के
मौलिक तत्त्व

डॉ. के एस 'चरक'
एम.एस. (सर्जरी),
एफ.आर.सी.एस.(यूके)

अनुवादः
सुभाष चन्द्र चौधरी
एम.एससी., सी.ए.आई.आई.बी.,
ज्योतिष आचार्य

उमा पब्लिकेशंस

चिकित्सा ज्योतिष के मौलिक तत्त्व

© डॉ. के एस 'चरक'

प्रथम संस्करण: अक्टूबर 2005
पुनर्मुद्रण: जनवरी 2010
द्वितीय संस्करण: अगस्त 2013
पुनर्मुद्रण: सितम्बर 2016
पुनर्मुद्रण: सितम्बर 2019
पुनर्मुद्रण: फरवरी 2023

ISBN 81-901008-6-6

मूल्य:

रुपए 360/- US$ 21

प्रकाशक:

उमा पब्लिकेशंस
23 डॉक्टर्स अपार्टमेंट्स, वसुन्धरा इनक्लेव
दिल्ली-110096, भारत
मोबाइल: 9868170443
ई-मेल: kscharak@gmail.com

मुद्रण:

प्रिंटफोर्स, दिल्ली-110092
मोबाइल: 9958392130
ई-मेल: rawatys2011@gmail.com

विषयसूची

आमुख: द्वितीय संस्करण v

लेखकीय वक्तव्य vi

दो शब्द viii

1. **चिकित्सा-ज्योतिष: एक परिचय:** जीवन मार्ग; दोनों प्राचीन हैं; ज्योतिष तथा औषध अविभेद्य हैं। 1

2. **रोग विचार की पृष्ठभूमि:** भाव; राशियां; कुण्डली/जन्मपत्री की रचना; ग्रह; नक्षत्र; वर्ग; दशाएं; आयुर्वेद का त्रिदोष। 11

3. **शुभाशुभ ग्रह:** नैसर्गिक पाप तथा शुभ ग्रह; विभिन्न लग्नों के लिए शुभ तथा अशुभ ग्रह; राजयोग; त्रिक भाव तथा उनके स्वामी; मारक ग्रह; विभिन्न लग्नों के लिए ग्रहों का सम्बन्ध; गुलिक; विभिन्न प्रतिकूल घटक (22वां द्रेष्काण, 64वां नवांश, सर्प द्रेष्काण)। 26

4. **राशि भाव एवं शरीर के अंग:** कालपुरुष विचार, भावों का कारकत्व; द्रेष्काण तथा शरीर के अंग; नक्षत्र तथा शरीर के अंग। 38

5. **ग्रहों का कारकत्व:** सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु। 46

6. **बालारिष्ट योग:** बालारिष्ट, मृत्यु आवश्यक नहीं; बालपन में असामयिक मृत्यु; ज्योतिषीय नियम; बालारिष्ट के शास्त्रीय योग; माता को कष्ट; पिता को कष्ट; अरिष्ट योगों के फलीभूत होने का समय; बालारिष्ट के उदाहरण। 50

7. **अरिष्टभंग योग:** अरिष्टभंग के शास्त्रीय योग; अरिष्टभंग के कुछ उदाहरण। 63

8. **जन्मजात रोग:** प्रासंगिक नियम; जन्मजात बीमारियों के कुछ उदाहरण; सारांश। 69

9. **आरोग्य विचारः** पुष्ट स्वास्थ्य के सूचक; अपुष्ट स्वास्थ्य के सूचक; आरोग्य या पुनः स्वास्थ्य लाभ के संकेत; उदाहरण। 80

10. **रोगोत्पत्ति का समय एवं परिणामः** सम्बन्धित ज्योतिषीय नियम; विंशोत्तरी दशा, योगिनी दशा तथा वर्ग कुण्डलियों की भूमिका; ज्योतिषीय नियमों का प्रयोग; कुछ उदाहरण; माता-पिता तथा सहोदर की कुण्डलियों से रोग ज्ञात करना; सारांश। 89

11. **मनोरोगः** शास्त्रीय योग; मानसिक विषयों का ज्योतिषीय आधार; चन्द्र पर पाप प्रभाव; मानसिक रोग के उदाहरण। 129

12. **नेत्ररोगः** शास्त्रीय योग; अल्प दृष्टि/नेत्र रोग; अंधापन; जन्मांध होना; एक आंख में अंधपन; आंख पर चोट; नेत्ररोग के ज्योतिषीय नियम; नेत्ररोग के उदाहरण। 142

13. **कर्ण रोग तथा वाणी विकारः** बहरेपन के शास्त्रीय योग; ज्योतिषीय नियम; कर्णरोग के उदाहरण; दोषपूर्ण वक्तृता के शास्त्रीय योग; जन्म से बहरे और गूंगे बच्चे; जन्म से बहरे और गूंगे बच्चों के उदाहरण। 151

14. **हृदय रोगः** ज्योतिषीय नियम; हृदय रोग के सूचक; हृदय रोग के कुछ उदाहरण। 159

15. **विविध रोगः** मधुमेह; मधुमेह के योग; मधुमेह के उदाहरण; अपैन्डिसाइटिस; अपैन्डिसाइटिस के ज्योतिषीय घटक; उदाहरण; व्रण उन्मुखता; उदाहरण; क्षय (राजयक्ष्मा) रोग; अपस्मार रोग (मिरगी); कुष्ठरोग; दन्त रोग; अण्डवृद्धि; अर्शरोग (बवासीर); यौन अयोग्यता या नपुंसकता; विभिन्न रोगों के लिए एक पंक्ति के योग। 175

16. **उपसंहार** 192

शब्दार्थ 197

आमुखः द्वितीय संस्करण

हमारे लिए संतोष का विषय है कि *'चिकित्सा ज्योतिष के मौलिक तत्त्व'* का दूसरा संस्करण पाठकों के हाथ में है। अपने अंग्रेज़ी संस्करण Essentials of Medical Astrology की ही भांति इसको भी ज्योतिष के छात्रों और पाठकों ने खूब सराहा है।

यह पुस्तक उन व्यक्तियों के लिए आधारभूत सामग्री उपलब्ध कराती है जिन्हें चिकित्सा ज्योतिष के इस मोहक परन्तु जटिल विषय पर कुछ भी काम करना हो। इस पुस्तक की भाषा को आद्योपांत सुधारा अथवा दुबारा लिखा गया है जिससे यह अधिक सुग्राह्य हो गई है। यह संशोधित संस्करण अपने इस रूप में मेरे मित्र विनय आदित्य के परिश्रम का परिणाम है जिन्होंने इस कार्य के द्वारा वैदिक ज्योतिष के पावन विषय और ज्योतिष प्रेमियों की अप्रतिम सेवा की है।

1 अगस्त 2013

डॉ. के एस 'चरक'

23 डॉक्टर्स अपार्टमेंट्स
वसुन्धरा एन्कलेव, दिल्ली-110096
ई-मेल: kscharak@gmail.com

लेखकीय वक्तव्य

ज्योतिष जैसे प्राचीन विषय के प्रति व्यापक जनसमुदाय की जागरूकता पिछले दो तीन दशकों से लगातार बढ़ती ही जा रही है। इस सन्दर्भ में यह बात खास तौर पर ध्यान देने योग्य है कि समाज के प्रायः सभी वर्गों के लोगों की अभिरुचि ज्योतिष विषय को समझने, पढ़ने और सीखने में शिखर की ओर अग्रसर है। अनेक लोगों का यह उत्साह कहीं तो केवल शौक तक ही सीमित है और कहीं लोग अध्ययन के प्रारम्भिक स्तर से काफी आगे बढ़कर इसे व्यवसाय के तौर पर भी अंगीकार कर रहे हैं।

सदा की तरह भारत में तो लोगों का ज्योतिष के प्रति रुझान इतना समृद्ध हो गया है कि दिल्ली जैसे महानगरों के साथ-साथ छोटे शहरों व कस्बों तक में भी बहुत से समर्पित लोगों ने संस्थागत ढंग से ज्योतिष विषय के विधिवत् अध्ययन-अध्यापन की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति की है।

'चिकित्सा ज्योतिष' सर्वत्र ही ज्योतिष पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग है। इसी दृष्टि से 1994 में चिकित्सा ज्योतिष को कोरी शास्त्रीयता के प्रगाढ़ विषय विस्तार से बाहर लाकर, वर्तमान युगीन आवश्यकताओं के अनुरूप प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया। इसी संकल्प के फलस्वरूप *'एसैंशियल्स ऑफ मेडिकल एस्ट्रोलॉजी'* (Essentials of Medical Astrology) नामक अंग्रेजी पुस्तक ज्योतिष प्रेमियों के समक्ष प्रस्तुत की गई।

विषय को सुबोध व सुगम बनाने की दिशा में इस पुस्तक में पहली बार जन्म लग्न के साथ द्रेष्काण, नवांश और द्वादशांश कुण्डलियों और विंशोत्तरी व योगिनी दशाओं का भी उपयोग किया गया। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण इसे शीघ्र ही चिकित्सा ज्योतिष के क्षेत्र में अनूठा और स्तरीय लेखन होने का गौरव प्राप्त हुआ है। भारत ही क्या विश्व भर में यह ग्रन्थ आज तक अपने इस गौरव को अक्षुण्ण रख पाया है, इसके लिए ज्योतिष के विद्यार्थियों, अध्यापकगण और ज्योतिषाजीवी जनों का स्नेह व आदर ही कारण हो सकता है।

पिछले कई सालों से हिन्दी में 'चिकित्सा ज्योतिष' की पुस्तकों की आवश्यकता महसूस होती रही है। इसी दिशा में उक्त ग्रन्थ का हिन्दी

अनुवाद करने में ज्योतिषाचार्य एवं ज्योतिष अध्यापक श्री सुभाष चन्द्र चौधरी की प्रशंसा औपचारिकता से कहीं आगे जाकर अपरिहार्य हो जाती है। आपने मूल ग्रन्थ के भाव के साथ सामंजस्य रखते हुए अपेक्षाकृत कठिन परिभाषिक शब्दों का सटीक रूपान्तर करने का भरसक प्रयास भी किया है। इसके लिए वे हृदय से साधुवाद के पात्र हैं।

वर्तमान में ज्योतिष विषय को जनसाधारण की भाषा में प्रस्तुत करने में सिद्ध-हस्त आदरणीय मित्रवर डॉ. सुरेश चन्द्र मिश्र ने इस विद्वत्तापूर्ण हिन्दी अनुवाद को और अधिक परिष्कृत करके मणिकांचनयोग को सार्थकता प्रदान की है।

'चिकित्सा ज्योतिष के मौलिक तत्त्व' नामक प्रस्तुत ग्रन्थ में चिकित्सा ज्योतिष में उपयोगी सभी आवश्यक व मूल सिद्धान्तों का वैज्ञानिक विवेचन करते हुए रोगों के शास्त्रीय योगों को बालारिष्ट, ग्रहशील और ग्रहयोग के परिप्रेक्ष्य में कई उदाहरणों के माध्यम से विवेचित किया गया है। आंख, कान आदि के विकारों के साथ हृदयरोग, मानसिक विकार और वाणी के रोगों की भी विस्तृत विवेचना की गई है। अन्य अनेक रोगों का विचार 'विविध रोग' शीर्षक के अन्तर्गत किया है। रोग की उत्पत्ति व शान्ति के समय का अंकन करने की विश्वसनीय विधि एक अतिरिक्त आकर्षण है। सर्वत्र विषय को स्पष्ट करने के लिए अनेक उदाहरण दिए गए हैं।

आशा और विश्वास है कि यह ग्रन्थ हिन्दी क्षेत्र के सुविज्ञ पाठकों की अपेक्षाओं पर खरा उतरेगा।

डॉ. के एस 'चरक'

14 सितम्बर 2005

23 डॉक्टर्स अपार्टमेंट्स
वसुन्धरा एन्कलेव, दिल्ली-110096
ई-मेल: kscharak@gmail.com

दो शब्द

जिस समय मैं भारतीय विद्या भवन में 'ज्योतिष विशारद' का अध्ययन कर रहा था, लगभग उसी समय डॉ. के एस चरक की पुस्तक 'Essentials of Medical Astrology' अंग्रेजी में प्रकाशित हुई। एक शल्यचिकित्सक के द्वारा इसी विषय को कक्षा में पढ़ाए जाने के कारण मैं पहले ही से स्वयं को उत्साहित तथा प्रफुल्लित अनुभव कर रहा था। इस पुस्तक के वैज्ञानिक तथा चिकित्सकीय दृष्टिकोण ने मुझे ज्योतिष को और गहरे पैठ कर अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया। ज्योतिष सीखने का मेरा उद्देश्य किसी भी प्रकार से ज्योतिष का उत्थान करना था। डॉ. चरक का विश्वास है कि एक दिन एलोपैथी, होम्योपैथी तथा आयुर्वेद परस्पर पूरक होंगे तथा ज्योतिषीगण चिकित्सकों की सहायता तथा मार्गदर्शन में सहायक होंगे। इस पुस्तक के हिन्दी संस्करण के आ जाने से यह विश्वास मेरे मन में भी दृढ़ हो गया है। मुझे विश्वास है कि शोधोन्मुख पाठक इस प्रयास में अपना अमूल्य सहयोग प्रदान करेंगे।

कुछ सार्वभौमिक व्याधियों के नामों का हिन्दी रूपान्तर कर दिया गया है। अन्य को अंग्रेजी में ही रहने दिया गया है जिससे शोध छात्रों को किसी विशिष्ट रोग के विषय में चिकित्सक से जानकारी प्राप्त करने में असुविधा न हो। पुस्तक की भाषा को बोधगम्य बनाए रखने का निरन्तर प्रयास किया गया है।

इस रूपान्तर को उपलब्ध कराने में मैं कुछ समय अपने परिवार को यथोचित समय नहीं दे पाया। उनके सहयोग से ही मैं यह कार्य सम्पन्न कर सका हूं। भारतीय स्टेट बैंक में मेरे सहकर्मी श्री महेन्द्र खन्ना, एम.ए. (हिन्दी, संस्कृत), ने यह अनुवाद आप तक पहुंचाने में मेरा भरपूर साथ दिया है। ईश्वर के समक्ष नतमस्तक होते मैं अपने गुरुजनों, मित्रों एवं शुभचिन्तकों का आभार प्रकट करता हूं।

अन्त में सुधी पाठकों से अनुरोध है कि प्रमादवश हुई त्रुटियों की जानकारी देने की कृपा करें ताकि आगामी संस्करण में उनका निराकरण किया जा सके।

श्रावणी पूर्णिमा सम्वत् 2061 **सुभाष चन्द्र चौधरी**

30 अगस्त 2004

2, रूप विहार, स्टेट बैंक कालोनी
दिल्ली रोड, सहारनपुर (उ.प्र.)
दूरभाष: 0132-2766317; 09412234141

प्रथम अध्याय

चिकित्सा ज्योतिषः एक परिचय

पश्येम शरदश्शतं जीवेम शरदश्शतं
श्रृणुयाम शरदश्शतम्।
प्रब्रवाम शरदश्शतमदीनाः स्याम
शरदश्शतं भूयश्च शरदश्शतात्।।

(प्रकृति के अनुकूल आचरण द्वारा) मैं शताधिक वर्षों तक अविकल देखूं, शताधिक वर्षों तक जीवित रहते हुए जीवन भर कानों से सुनूं, वाणी से अविकल रहूं और शताधिक वर्षों तक सशक्त रहूं।

– यजुर्वेदः 26/24

पुरातन काल से ही औषध-विज्ञान तथा ज्योतिष दोनों ने भारत वर्ष में जीवन शैली को पूर्णतः प्रभावित किया है। सदियों से हमारी धरोहर रहे प्राचीन शास्त्रों में तत्कालीन चिकित्सा प्रणाली आयुर्वेद एवं समान रूप से विकसित वैदिक ज्योतिष के व्यापक संदर्भ प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त, अपनी परम्परा के पक्के प्राचीन भारतीयों ने अपने ज्ञान को मौखिक रूप से आगामी पीढ़ियों को दिया। इस प्रकार अति उन्नत ज्ञान परिवारों में सुरक्षित रहा। यही कारण है कि अध्ययन की प्राचीन प्रणाली, पुस्तकों को पढ़ने के स्थान पर व्यक्तिगत निर्देशों पर अधिक बल देती है। यह केवल औषध तथा ज्योतिष के लिए ही नहीं वरन् ज्ञान की सभी विधाओं पर लागू होता है।

ज्योतिष तथा आयुर्वेदः जीवन शैली के अंग

प्राचीन भारत में ज्योतिष तथा औषध का विकास धर्म के अंग के रूप में हुआ। आरोग्य के सिद्धान्त तथा रोगों की रोकथाम भी उसी तरह जीवन के दैनिक संस्कारों का एक हिस्सा थे जैसे सांसारिक कार्यों में ज्योतिष का प्रयोग।

दैनिक प्रार्थना अथवा धार्मिक अनुष्ठान से पूर्व शारीरिक स्वच्छता आवश्यक

थी। गीता में वर्णित 'शौचम्' के अनुसार दैनिक आध्यात्मिक क्रियाओं के लिए शारीरिक तथा मानसिक दोनों ही स्वच्छता आवश्यक हैं। वास्तव में आरोग्य के लिए औषध सेवन सहित सभी दैनिक कार्यों के लिए ज्योतिषीय सहायता ली जाती थी। ज्योतिष द्वारा ज्ञात उचित समय पर ही औषध का सेवन किया जाता था। यहां तक कि औषधियों में प्रयोज्य जड़ी-बूटियों का उचित समय पर संग्रह तथा संसाधन किया जाता था। चिकित्सीय तथा ज्योतिषीय नियमों का अलग-अलग एवं इकट्ठे अनुसरण करना ही जीवन शैली थे जो एक साधारण मनुष्य भी आसानी से कर सकता था। बुद्धिजीवियों ने इन नियमों को तर्क के द्वारा तथा साधारण मनुष्यों ने विश्वास एवं समर्पण के द्वारा स्वीकार किया। परिणाम एक ही था – शारीरिक तथा मानसिक रूप से स्वस्थ समाज।

दोनों विधाएं प्राचीन हैं

ज्योतिष तथा औषध दोनों ही भारतीय प्राचीन ज्ञान की प्रणालियां हैं। आज ज्योतिष के अनेक ग्रन्थ उपलब्ध होने के अतिरिक्त पुराणों में भगवान् शिव तथा पार्वती द्वारा ज्योतिष चर्चा अथवा ज्योतिष विषयक उल्लेख करते हुए कथाएं मिलती हैं।

आयुर्वेद की कथाएं भी अनेक हैं। पुराणों में भगवान शिव द्वारा हाथी के एक शिशु का मस्तक अपने पुत्र पर प्रत्यारोपित करने का वर्णन मिलता है, जो बाद में भगवान गणेश के नाम से जाने गए। भगवान शिव ने बकरे के सिर को भी अपने श्वसुर दक्ष प्रजापति पर प्रत्यारोपित किया जिनकी पुत्री पहले ही क्रोध के आवेश में सती हो गई थी। इसी तरह पुराणों के अनुसार अश्विनी कुमार देवताओं के वैद्य माने जाते हैं।

देवताओं तथा असुरों द्वारा समुद्र मंथन की मनोहारी कथा में दिव्य चिकित्सक धन्वन्तरि प्रकट हुए जिनसे आरोग्य शास्त्र का ज्ञान फैला। पांडव औषध विज्ञान के अच्छे ज्ञाता थे, विशेषतः नकुल व सहदेव जो अश्विनी कुमारों की यमल संतान थे। इन्हें पशुचिकित्सा का भी ज्ञान था जिसका इन्होंने राजा विराट के राज्य में वेष बदलकर रहते हुए एक वर्ष तक भरपूर उपयोग किया। बाद में चरक तथा सुश्रुत क्रमशः पुरातन भारतीय औषध तथा शल्य चिकित्सा के पितामह हुए। यहां तक कि आज भी उनके सिद्धान्त लाभप्रद हैं। आज भी नाक के पुनर्निर्माण की विधि, जो समस्त संसार के 'प्लास्टिक सर्जन' अपनाते हैं, हजारों वर्ष पूर्व सुश्रुत द्वारा बताई गई थी और जिसे "भारतीय विधि की राईनोप्लास्टी" (Indian method of rhinoplasty) के नाम से जाना जाता है।

ज्योतिष तथा आयुर्वेद

प्राचीन भारतीय औषध विज्ञान पर पुस्तकों में विशिष्ट रोग देने वाले ग्रह-योगों का संदर्भ मिलता है। वास्तव में ये योग इतने साधारण हैं कि रोग निदान में विशेष सहायता नहीं कर सकते, परन्तु वे सिद्धान्तों के उपयोगी रहस्यों को अवश्य प्रकट करते हैं।

इसी प्रकार ज्योतिष शास्त्र विशिष्ट रोगों को इंगित करने वाले योगों से भरपूर है। ये योग भी साधारण ही हैं, जिन्हें व्यक्तिगत कुण्डलियों पर आसानी से प्रयोग नहीं किया जा सकता। यदि उन सिद्धान्तों का सार समझ लिया जाए तो वे कुछ उपयोगी हो सकते हैं। वैदिक ज्योतिष एक अन्य प्रकरण में भी अद्वितीय है। यह कष्टकारक ग्रहयोग की स्थिति में उपचार के लिए ग्रहों की शान्ति का समर्थन भी करता है।

आजकल चिकित्सा की तीन मुख्य पद्धतियां हैं। सबसे प्रचलित 'एॅलोपैथी' है जिसका अर्थ है रोग द्वारा उत्पन्न परिणामों के विपरीत परिस्थिति उत्पन्न कर रोग का उपचार करना। यह ठोस वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है तथा सर्वाधिक स्वीकार्य है। इसके चिकित्सक खुले मन से नए वैज्ञानिक विचारों को स्वीकार करते हैं और इस पद्धति की उन्नति का यही कारण है। अन्य पद्धति 'होम्योपैथी' है जिसका आधार उस दवा से उपचार करना है जो सामान्यतः वही रोग उत्पन्न करती है जिस रोग का उपचार किया जाना है अवश्य ही शल्य क्रिया होम्योपैथी का अवयव नहीं है। प्राचीन भारतीय औषध पद्धति आयुर्वेद है जिसका शाब्दिक अर्थ है "जीवन का विज्ञान"। कुछ लोग इसे अलग पद्धति मानते है परन्तु वास्तव में इसमें 'एलोपैथी' तथा 'होम्योपैथी' दोनों का समावेश है।

'महाभारत' लिखने के पश्चात् भी महर्षि व्यास ने दैवीय आनन्द का अनुभव नहीं किया। इस विचलित अवस्था में महर्षि नारद उनके पास आए और उनकी निराशा का कारण पूछा। जब व्यासजी ने नारदजी को अपनी हताशा बताई तो नारदजी ने उन्हें कुछ सुझाव दिए। निस्संदेह व्यासजी ने दैवीय काव्य लिखा जो स्मरणीय तथा बुद्धिमत्ता में अद्वितीय है। परन्तु इसमें पर्याप्त श्रीकृष्ण भक्ति प्रतिबिम्बित नहीं होती। नारदजी ने कहा, "कोई ज्ञान, जो मोक्ष की ओर ले जा सकता है वह अपनी शोभा खो देता है अगर वह ईश्वर की भक्ति से च्युत हो। इस कारण भगवान श्रीकृष्ण की प्रशंसा में लिखिए।"

उन्होंने आगे कहा–

आमयो यश्च भूतानां जायते येन सुव्रत।
तदेव ह्यामयं द्रव्यं न पुनाति चिकित्सितम्।।

जिसका अर्थ है:

"हे सुव्रत, जिस द्रव्य के कारण प्राणियों को रोग होता है वही द्रव्य अति सूक्ष्म रूप में क्या उस रोग की चिकित्सा नहीं करता, अर्थात् करता है।"

श्रीमद्भागवत महापुराण, खण्ड 1,
अध्याय 5 श्लोक 33

व्यासजी ने नारदजी का संकेत समझा और 'भागवत पुराण' की रचना की। इस प्रकार नारद आयुर्वेद के उस सिद्धान्त को संदर्भित कर रहे थे जो आज होम्योपैथी के नाम से जाना जाता है। आयुर्वेद अपने मूल रूप में उपचार के लिए शल्यक्रिया का भी समर्थन करता है। वास्तव में उपचार की सभी पद्धतियों को 'आयुर्वेद' कहा जा सकता है। ज्योतिष, ऐंलोपैथी, होम्योपैथी तथा आयुर्वेद के वर्तमान ग्रन्थ, सभी की अपनी भूमिकाएं तथा सीमाएं है। बुद्धिमत्ता इसमें है कि प्रत्येक की सीमाओं को समझा जाए तथा उनका उपयोग एक दूसरे के विरोधी के रूप में न करके एक दूसरे के पूरक के रूप में किया जाए। केवल इसी प्रकार से इन्हें मानवजाति के लाभ के लिए प्रयोग किया जा सकता है।

वामन पुराणोक्त एक उत्कृष्ट आख्यान

उच्चकोटि के भारतीय साहित्य में महान सत्य को कथाओं के रूप में बताया गया है जिसका एक आदर्श उदाहरण यहां प्रस्तुत है। इस वर्णन में ज्योतिष और कायचिकित्सा की सम्बद्धता स्पष्ट है। प्रायः सिद्धान्तों को अति सूक्ष्म तरीके से प्रकट किया जाता है जिसमें ध्यानपूर्वक चिंतन की आवश्यकता होती है और परिणाम दूरगामी होते हैं।

यहां जो वर्णन है उसे वामन पुराण से लिया गया है। पुरातन काल में भगवान शंकर के श्वसुर दक्ष प्रजापति ने एक महान यज्ञ किया जिसकी आग में भगवान शंकर की भार्या, 'सती', ने आत्मदाह किया। क्रोधित भगवान शिव ने उस यज्ञ को नष्ट करने के लिए संहारक ताण्डव नृत्य किया। अपने इस संहारक रूप में भगवान समस्त भचक्र पर छा गए। भचक्र के विभिन्न भाग उनके शरीर के विभिन्न अंगों द्वारा इंगित हुए। जिनका वर्णन इस प्रकार है:

ऋषि पुलस्त्य ने नारदजी से कहा, "मुनिश्रेष्ठ, मैं अब आपके समक्ष त्रिपुरारि भगवान शिव के उग्र रूप का वर्णन करता हूं जो संसार के कल्याण के लिए सम्पूर्ण जगत पर छा गए।

"पूरे अश्विनी, भरणी एवं कृत्तिका के एक चरण से युक्त मंगल का क्षेत्र मेष राशि महादेव का सिर है।

"हे ब्रह्मन्! कृत्तिका के तीन चरण, पूरी रोहिणी एवं मृगशिरा के दो पूर्व चरण से युक्त शुक्र का क्षेत्र वृष राशि उनका मुख है।

"मृगशिरा नक्षत्र के शेष दो चरण, पूरी आर्द्रा और पुनर्वसु के तीन पाद से युक्त बुध का क्षेत्र मिथुन राशि भगवान शंकर की दोनों भुजाएं हैं।

"पुनर्वसु का एक चरण, पूरा पुष्य और आश्लेषा नक्षत्रों वाला चन्द्रमा का क्षेत्र कर्क राशि यज्ञविनाशक भगवान शिव के दो पार्श्व हैं।

"हे ब्रह्मन्! सिंह राशि जो पूर्ण मघा, पूर्ण पूर्वाफाल्गुनी एवं उत्तराफाल्गुनी के एक चरण से बनती है, जिसका स्वामी सूर्य है, वह शंकर का हृदय है।

"उत्तराफाल्गुनी के तीन चरण, पूरे हस्त एवं चित्रा के दो पूर्व चरण वाला, बुध का द्वितीय क्षेत्र कन्या राशि, शंकर का जठर (पेट) है।

"चित्रा के शेष दो चरण, पूर्ण स्वाती तथा विशाखा के तीन चरण, जो शुक्र के द्वितीय क्षेत्र तुला का निर्माण करते हैं, महादेव का नाभिक्षेत्र है।

"वृश्चिक, मंगल का द्वितीय क्षेत्र, जो एक चरण विशाखा तथा पूर्ण अनुराधा व ज्येष्ठा से बनता है, उनका जननांग है।

"सम्पूर्ण मूल, पूर्वाषाढ़ तथा उत्तराषाढ़ का एक चरण जो गुरु क्षेत्र धनु को बनाते हैं, महादेव की जंघाएं हैं।

"हे मुने! शनि का क्षेत्र मकर जो उत्तराषाढ़ के शेष तीन चरणों, पूर्ण श्रवण तथा धनिष्ठा के दो चरणों से बनता है, दोनों घुटनों का प्रतिनिधित्व करता है।

"धनिष्ठा का उत्तरार्ध, पूर्ण शतभिषा तथा पूर्वाभाद्रपद के तीन चरण जो शनि की दूसरी राशि कुम्भ को बनाते हैं, उनकी पिण्डलियां हैं।

"मीन, जो गुरु की द्वितीय राशि है तथा जो एक चरण पूर्वाभाद्रपद, पूर्ण उत्तराभाद्रपद तथा रेवती से बनती है उनके दोनों पैर हैं।"

शरीर के विभिन्न अंग जो विभिन्न राशियों से प्रतिबिम्बित होते है चित्र 1-1 में दिखाए गए हैं।

महर्षि पुलस्त्य से उपर्युक्त वर्णन सुनने के पश्चात् ऋषि नारद ने अब इन राशियों की प्रकृति तथा विशेषताओं को प्रकट करने की प्रार्थना की।

भचक्र की राशियां तथा शरीर के अंग

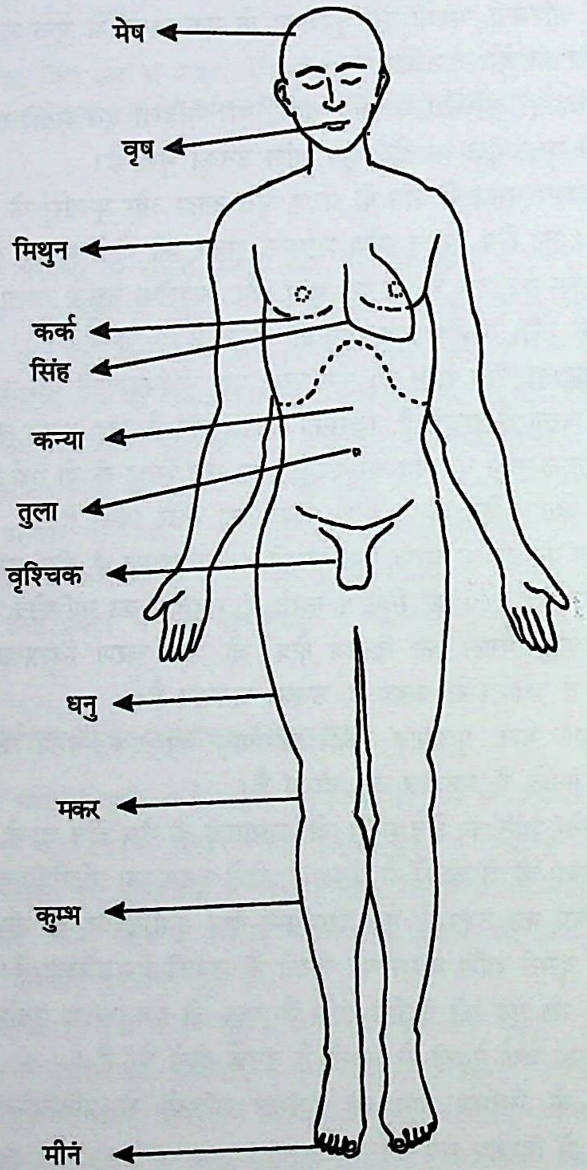

चित्र 1-1

पुलस्त्य तुरन्त सहमति से बोले, "हे नारद! अब मैं आपको इन राशियों की प्रकृति तथा इनके निवास क्षेत्र का वर्णन करता हूं।

"मेष राशि मेढ़ा के सदृश है। इसका निवास स्थान बकरी तथा भेड़ों के घूमने की भूमि, धातुओं की खान और रत्नों की भूमि होते हैं। यह घास वाली भूमि तथा वनस्पतियों से घिरी झील आदि स्थानों पर विचरण करती है।

"वृष राशि बैल के सदृश है। गौशाला और कृषकों की भूमि इसका निवास स्थान हैं।

"मिथुन राशि स्त्री-पुरुष का जोड़ा है। एक तुरही हाथ में लिए हुए है तथा दूसरा वीणा धारण किए हुए है। शय्या तथा विहार करने योग्य भूमि, नृत्य स्थल, गाने का स्थान, शिल्प का स्थान इसके निवास हैं। इस द्विस्वभाव राशि का क्रीड़ा स्थल तथा मनोरंजन स्थल पर आश्रय है।

"कर्क की आकृति केकड़े के समान है तथा जल में रहती है। इसके निवास स्थान जल से भरी क्यारी, नदी-तीर, तथा एकान्त भूमि हैं।

"सिंह के सदृश सिंह राशि है जिसका निवास पर्वत, जंगल, गुफा, दुर्गम स्थान, गहरी खाई तथा शिकारी के रहने के स्थान आदि में है।

"हाथ में दीपक तथा धान्य लिए नौका में सवार कन्या राशि है स्त्रियों के रति स्थान में जिसका निवास है।

"हे नारद! तुला राशि के स्वरूप में पुरुष के हाथ में तुला है और इसका निवास गलियों, बाज़ारों, नगरों, मार्गों तथा भवनों में है।

"वृश्चिक राशि बिच्छू के सदृश है। यह दरारों तथा गड्ढों में विचरती है। इसका निवास विष, पशुओं के मलमूत्र, पत्थरों तथा कीटों में है।

"धनु राशि का धड़ अश्व के सदृश है। वह प्रकाशमान तथा धनुषधारी है। घुड़सवारी में निपुण, शस्त्र में निपुण, तथा साहसिक कार्यों को करने वाली यह राशि हाथियों, रथों आदि में निवास करती है।

"हे ब्रह्मन्! मकर का मुख हिरण के समान, कन्धे बैलों के समान तथा नेत्र हाथियों के समान हैं। यह नदी में विचरण करती है तथा समुद्र में इसका निवास है।

"भीगे हुए कपड़े पहने, कन्धे पर घड़ा रखे पुरुष कुम्भ राशि है। इसका निवास स्थान मद्यशाला तथा सञ्चार स्थान द्यूतशाला हैं।

"मीन राशि परस्पर मुख-पुच्छ मिलित दो मछलियों के समान है। पुण्य स्थल तथा समुद्र में यह विचरती है। इसका निवास धार्मिक स्थलों, ईश्वर के मन्दिरों तथा ब्राह्मणों के घरों में है।"

आधुनिक परिवेश में चिकित्सा-ज्योतिष

प्राचीन भारतीय औषध विज्ञान के अत्युत्तम ग्रंथ 'चरक संहिता' के अनुसार रोग मन तथा शरीर में निवास करता है। 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' के अनुसार स्वास्थ्य की परिभाषा केवल रोग की अनुपस्थिति ही नहीं वरन् पूर्ण रूप से शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक कुशलता है। सामाजिक कुशलता की संदिग्धता से असंतुष्ट कुछ लोगों ने आध्यात्मिक कुशलता को भी स्वास्थ्य की परिभाषा में सम्मिलित करने का प्रस्ताव रखा है। हमारे उद्देश्य के लिए चरक संहिता की परिभाषा पर्याप्त है। परिणामतः हमारे विचार में रोग की परिभाषा में शारीरिक तथा मानसिक रुग्णता सम्मिलित हैं। दुर्घटना, जिसका सामान्य अर्थ अचानक, अत्यधिक, बाह्य बल के प्रयोग से शरीर का भंजन है, को भी शारीरिक रोगों की श्रेणी में सम्मिलित करना चाहिए।

चिकित्सा-ज्योतिष पर प्राचीन साहित्य

ज्योतिष तथा चिकित्सा पर अलग-अलग कई प्राचीन ग्रंथ उपलब्ध हैं। चिकित्सा ज्योतिष पर साहित्य बहुत कम है। प्राचीन ग्रंथों में जहां कहीं भी हम चिकित्सा ज्योतिष के संदर्भ पाते हैं, वे इतने सामान्य हैं कि उनका प्रयोग व्यक्तिगत जन्मपत्रिका में नहीं किया जा सकता। चिकित्सा ज्योतिष पर आज उपलब्ध साहित्य भी कई प्रकार की न्यूनताओं से युक्त है। इस न्यूनता का मुख्य कारण यह है कि सामान्यतः ज्योतिषी चिकित्सा में प्रशिक्षित नहीं हैं तथा मानव शरीर की क्रियाओं को भी पर्याप्त रूप से समझने में असमर्थ हैं। दूसरी समस्या यह है कि चिकित्सक लोग ज्योतिषी नहीं हैं। अभी तक चिकित्सकों ने अपनी रुचि ज्योतिष में नहीं दिखाई है। चिकित्सा-ज्योतिष में ठोस शोधकार्य हो तथा इस ज्योतिष का उपयोग वर्तमान चिकित्सा विज्ञान में हो, इसके लिए आवश्यक है कि आज के चिकित्सक, ज्योतिष के अध्ययन में गंभीरता से रुचि लें। चिकित्सा ज्योतिष को अचिकित्सकों के हाथों में नहीं छोड़ा जा सकता।

आज के चिकित्सकों की एक अन्य समस्या भी है। नवीन एॅलोपैथिक प्रणाली में रोग को समझना प्राचीन भारतीय प्रणाली आयुर्वेद से बिल्कुल भिन्न है। उपलब्ध ग्रन्थों में केवल मानक आयुर्वेदिक शब्दावली का ही प्रयोग है। उन शब्दों का नवीन एॅलोपैथिक प्रणाली में रुपान्तर करना कठिन है। अतः नवीन औषध विज्ञान के उपयोग के लिए चिकित्सा ज्योतिष में पर्याप्त शोध करना

कोई सरल कार्य नहीं है। चिकित्सा ज्योतिष के हमारे ज्ञान की वर्तमान स्थिति में रोग निदान में हम कोई बड़ा दावा नहीं कर सकते। इस संबंध में चिकित्सा ज्ञान रहित ज्योतिषियों द्वारा किए गए बड़े दावे दैविक विज्ञान ज्योतिष-शास्त्र के उपहास के लिए उत्तरदायी हैं।

रोग निर्णय के आवश्यक तथ्य

रोग के संबंध में कुण्डली का अध्ययन करते हुए चिकित्सा ज्योतिषी को निम्नलिखित तथ्यों पर विचार करना चाहिए:

1. रोगोत्पत्ति का समय
2. निदान
3. तीव्रता
4. उपचार

उक्त तथ्य चिकित्सा ज्योतिषी के लिए तथा रोगी अथवा चिकित्सक के लिए समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। प्रत्येक का संक्षिप्त वर्णन तथा ज्योतिषी की भूमिका बनाम चिकित्सक की भूमिका भी प्रस्तुत है।

1. ***रोगोत्पत्ति का संभावित समय*:** यह ज्योतिषी का परीक्षा क्षेत्र है। एक निपुण ज्योतिषी जन्मपत्री का परीक्षण कर किसी व्यक्ति के रोगग्रस्त होने के समय को सूचित कर सकता है। यह बचाव के उपाय, विशेष रूप से ज्योतिषीय उपचार, बताने में सहायक हो सकता है, जिससे होने वाली व्याधि को टाला जा सके अथवा रोग की तीव्रता को कम किया जा सके।

इसके विपरीत एक चिकित्सक के लिए रोग की पहिले से भविष्यवाणी करना सम्भव नहीं है। कुछ ऐसी व्याधियां हैं जो परिवारों में होती हैं तथा जातक के कुछ रक्त संबंधियों में हो सकती हैं। वर्तमान चिकित्सकीय ज्ञान के आधार पर निश्चित रूप से यह बता सकना कठिन है कि जातक का कौन सा संबंधी, तथा कब, इस पारिवारिक रोग से ग्रस्त होगा।

2. ***रोग का निदान (या प्रकृति)*:** इस क्षेत्र में ज्योतिषी पर्याप्त रूप से सक्षम प्रतीत नहीं होते। इस क्षेत्र में दक्ष होने के लिए ऐसे चिकित्सकों के द्वारा अधिक शोध की आवश्यकता है जो ज्योतिष में भी प्रवीण हों।

रोग के निदान का क्षेत्र चिकित्सकों का क्षेत्र है। इस संबंध में उनकी महत्वपूर्ण सहायता के लिए उनके पास उच्चस्तरीय जांच उपकरण उपलब्ध होते हैं।

3. ***रोग की तीव्रता तथा साध्यता*:** स्वाभाविक रूप से रोगी या परामर्श लेने वाला रोग की तीव्रता तथा परिणाम के विषय में चिन्तित होता है। सामान्यतः आज का चिकित्सक अपने परिपक्व ज्ञान के आधार पर किसी रोगी के रोग की अवधि को शुद्धता से बता सकता है। एक दक्ष ज्योतिषी भी, कभी-कभी निर्णायक तौर पर चिकित्सक से भी बेहतर, रोग की तीव्रता तथा परिणाम बता सकता है।

4. ***उपचार*:** निःसन्देह आज चिकित्सकीय उपचार किसी भी ज्योतिषीय उपचार से अधिक श्रेष्ठ तथा विश्वसनीय है। यहां ज्योतिष दो प्रकार से सहायक हो सकता है। पहला- जब प्रतिकूल ग्रहयोग भविष्य में होने वाले रोग को इंगित करें तथा चिकित्सीय विज्ञान इस विषय में मार्गदर्शन न कर सके तो सहायता के लिए ज्योतिषीय उपचार के रूप में ग्रहशान्ति की जानी चाहिए। दूसरा- ज्योतिष प्रायः यह इंगित कर सकता है कि शल्य चिकित्सा सहायक होगी या नहीं, और यदि हां तो कब। इसके अतिरिक्त जिस समय चिकित्सक को रोग का स्थान ढूंढ़ने में मुश्किल आ रही हो उस समय एक कुशल ज्योतिषी रोगग्रस्त अंग या क्षेत्र के बारे में बताकर सहायता कर सकता है। निःसन्देह यह केवल कभी-कभी ही संभव है।

सारांश रूप में आज चिकित्सा-ज्योतिष तुलनात्मक रूप से नया विषय है। यहां शोध के लिए चुनौतीपूर्ण अवसर हैं। शास्त्रीय ज्योतिष के ज्ञात नियमों को चिकित्सा विज्ञान के अज्ञात क्षेत्रों में प्रयुक्त करना होगा। आगामी पृष्ठों में प्राचीन संदर्भों से सहायता लेकर विषय को भली-भांति समझने के लिए वैज्ञानिक तरीके से प्रयास किया जाएगा। साथ ही उन नियमों को आधुनिक चिकित्सा-प्रणाली के साथ समन्वित करने का भी प्रयत्न होगा। इस प्रयास के बाद हमें यह आशा है कि किसी समय चिकित्सा ज्योतिष चिकित्सीय व्यवसाय के लिए अवश्य अधिक सहायक हो सकेगा।

द्वितीय अध्याय

रोग विचार की पृष्ठ भूमि

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

जो आवश्यकतानुसार खान-पान, समुचित क्रियाकलाप, निद्रा एवं जागरण का योगपूर्वक उपभोग करते हुए अपने कर्मों में लगा हुआ है वह स्वयं को दुःखों से मुक्त कर लेता है।

–गीता VI-17

जन्मपत्रिका एक विशिष्ट समय की ग्रहों की स्थिति को दर्शाती है। इसके मुख्य तीन खण्ड होते हैं।

(अ) भाव

(ब) राशियां

(स) ग्रह

भाव

जन्मपत्रिका में बारह भाव होते हैं। पूर्व जन्म की प्रवृत्ति तथा भविष्य की आशाओं सहित जन्मपत्रिका के इन भावों का अधिकार क्षेत्र जीवन के सभी विचारणीय पहलुओं पर होता है। प्रथम भाव को लग्न कहते हैं तथा यह सबसे महत्त्वपूर्ण भाव है। शेष भावों का अध्ययन केवल इस आधार पर किया जाता है कि वे प्रथम भाव से संबंधित होते हैं। कुण्डली के विभिन्न भावों को विशेष समूहों में निम्न प्रकार से बांटा जा सकता है।

(अ) *केन्द्र* : भाव 1, 4, 7 तथा 10

इन भावों पर शुभ तथा अशुभ प्रभाव स्वास्थ्य तथा रोग के लिए निर्णायक होते हैं।

(ब) *पणफर* : भाव 2, 5, 8 तथा 11

(स) *आपोक्लिम*: भाव 3, 6, 9 तथा 12

(द) *त्रिकोण*: भाव 1, 5 तथा 9
ये जन्मपत्री के सबसे मंगलकारी भाव होते हैं। रोग तथा स्वास्थ्य के लिए भी ये भाव महत्त्वपूर्ण होते हैं।

(य) *आयुःस्थान*: आठवां तथा तीसरा (आठवें से आठवां)
आयु के प्रतिनिधि होने के कारण अप्रत्यक्ष रूप से मृत्यु के सूचक हैं।

(र) *मारक स्थान*: दूसरा तथा सातवां भाव

(ल) *उपचय स्थान* : 3, 6, 10, 11वां भाव
दसवें भाव के अतिरिक्त प्रायः अन्य को प्रतिकूल माना जाता है।

(व) *त्रिक स्थान* : 6, 8, 12वां भाव
ये भाव विशेष रूप से स्वास्थ्य के लिए हानिकर हैं।

कुण्डली के बारह भाव शरीर के विभिन्न अंगों को इंगित करते हैं। इसके विषय में आंशिक रूप से पिछले अध्याय, *'चिकित्सा-ज्योतिषः एक परिचय'*, में बताया जा चुका है। विस्तृत वर्णन आगे आने वाले अध्यायों में किया जाएगा।

राशियां

भचक्र को बारह भागों में बांटा गया है। प्रत्येक भाग 30 अंश का होता है जिसे राशि कहा जाता है। इनके नाम, सीमाएं तथा चिह्न सारणी संख्या 2.1 में दर्शाए गए हैं

सारणी 2.1

राशियां	*अंग्रेजी नाम*	*विस्तार (अंश)*	*चिह्न*
1. मेष	Aries	0 - 30	♈
2. वृष	Taurus	30 - 60	♉
3. मिथुन	Gemini	60 - 90	♊
4. कर्क	Cancer	90 - 120	♋
5. सिंह	Leo	120 - 150	♌
6. कन्या	Virgo	150 - 180	♍
7. तुला	Libra	180 - 210	♎
8. वृश्चिक	Scorpio	210 - 240	♏
9. धनु	Sagittarius	240 - 270	♐
10. मकर	Capricorn	270 - 300	♑
11. कुम्भ	Aquarius	300 - 330	♒
12. मीन	Pisces	330 - 360	♓

राशियों की कुछ विशेषताएं

1. *अशुभ/पुरुष*: सभी विषम राशियां, जैसे 1, 3, 5, 7, 9, 11
2. *शुभ/स्त्री*: सभी सम राशियां, जैसे 2, 4, 6, 8, 10, 12
3. चर *राशियां*: 1, 4, 7, 10 राशियां। ये परिवर्तन को दर्शाती हैं। इन राशियों से संबंधित रोग छोटी अवधि के होते हैं तथा शीघ्र ही अच्छी या बुरी दशा में परिवर्तित हो जाते हैं।
4. *स्थिर राशियां*: 2, 5, 8, 11 राशियां। इन राशियों से संबंधित रोग दीर्घकालिक अथवा असाध्य होते हैं।
5. *द्विस्वभाव राशियां*: 3, 6, 9, 12 राशियां। इनमें चर तथा स्थिर दोनों प्रकार की विशेषताएं होती हैं।
6. *प्रमुख प्रवृत्ति*:

   (अ) अग्नि तत्त्व - 1, 5, 9 राशियां। यह रोग से मुक्ति के लिए सर्वोत्तम होती हैं। अपितु ये अधिक दुर्घटना उन्मुख होती हैं।

   (ब) पृथ्वी तत्त्व - 2, 6, 10 राशियां। अगले क्रम में ये उत्तम हैं।

   (स) वायु तत्त्व - 3, 7, 11 राशियां।

   (द) जल तत्त्व - 4, 8, 12 राशियां। रोग के प्रति इनकी प्रतिरोधक शक्ति कम होती है।

भचक्र की बारह राशियां कुण्डली के बारह भावों की तरह ही शरीर के विभिन्न अंगों का प्रतिनिधित्व करती हैं। इसकी जानकारी अन्यत्र दी गई है।

कुण्डली/जन्मपत्री की रचना

भारतवर्ष में कुण्डली की रचना निम्नलिखित प्रकार से की जाती है।

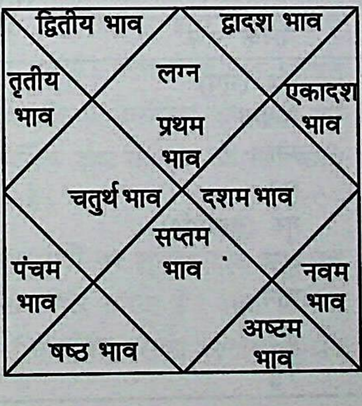

(i) *उत्तर भारतीय शैली*: यहां भाव स्थिर रहते हैं। चार केन्द्र (1, 4, 7, 10 भाव) आकृति में समचतुर्भुज की तरह तथा शेष भाव त्रिकोण की तरह होते हैं। सबसे ऊपर चतुर्भुज में लग्न लिख दिया जाता है। शेष राशियों को घड़ी की विपरीत दिशा

में क्रम से लिख दिया जाता है। अब ग्रहों को उनकी यथोचित राशियों में स्थापित कर दिया जाता है।

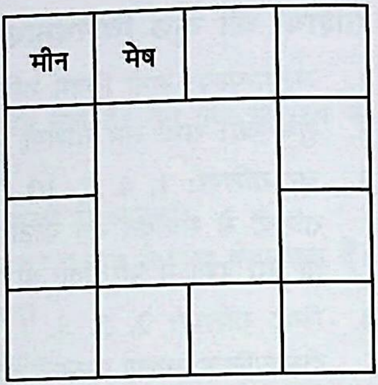

(ii) *दक्षिण भारतीय शैली* : इसमें राशियां स्थिर रहती है। जन्म के समय उदित होने वाली राशि को प्रथम भाव या लग्न रूप में चिह्नित कर दिया जाता है। शेष भावों की गणना घड़ी की सुई की दिशा में की जाती है।

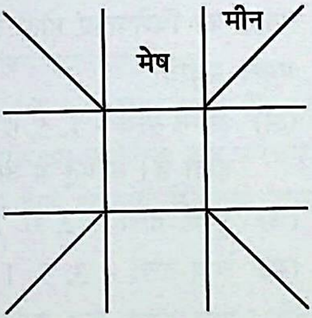

(iii) *पूर्व भारतीय (बांग्ला, उड़िया) शैली* : यहां पर भी राशियां स्थिर होती हैं तथा लग्न को चिह्नित करना पड़ता है। लग्न जन्म समय पर उदय कालिक राशि होती है। राशियां तथा भावों को घड़ी की सुई की विपरीत दिशा में गिना जाता है।

ग्रह

वैदिक ज्योतिष में मुख्यतः नौ ग्रहों का प्रयोग होता है। सारणी सं. 2.2 ग्रहों के वैदिक तथा अंग्रेजी नाम व चिह्न प्रदर्शित करती है।

सारणी 2.2

वैदिक नाम	*अंग्रेजी नाम*	*चिह्न*
रवि (सूर्य)	Sun	☉
चन्द्रमा	Moon	☽
मंगल	Mars	♂
बुध	Mercury	☿
गुरु (बृहस्पति)	Jupiter	♃
शुक्र	Venus	♀
शनि	Saturn	♄
राहु	Rahu (Dragon's head)	☊
केतु	Ketu (Dragon's tail)	☋

खगोल विद्या के दृष्टिकोण से सूर्य व चन्द्र प्रकाशमान पिण्ड हैं। राहु व केतु की भौतिक अवस्था न होकर वे छाया ग्रह हैं। इनके अतिरिक्त बहुत से उपग्रह बिना भौतिक स्वरूप के हैं जिनका वर्णन वैदिक ज्योतिष में मिलता है। इनका चिकित्सा ज्योतिष में विशेष उपयोग है। इनमें से गुलिक का वर्णन अन्यत्र किया गया है। उपग्रहों की विशिष्ट भूमिकाओं के स्पष्टीकरण के लिए अधिक शोध की आवश्यकता है।

यहां पर यह निर्दिष्ट किया जाता है कि वास्तव में चिकित्सा ज्योतिष, ज्योतिष की अन्य शाखाओं की तरह भावों, राशियों तथा ग्रहों द्वारा प्रदर्शित बलों को समझने का गहन कार्य है। इनको दशाओं के साथ जोड़कर समझना सफल भविष्यवाणी के लिए अत्यावश्यक है। हालांकि व्यवहार में अन्य अनेक तथ्यों का भी विचार करना आवश्यक होता है। जहां पर ज्योतिषी का निर्णय-कौशल दृष्टिगत होता है।

(i) *ग्रहों का स्वामित्व*: राहु-केतु के अतिरिक्त सात ग्रह भचक्र की बारह राशियों के स्वामी होते हैं। सूर्य तथा चन्द्र दोनों एक-एक राशि के स्वामी हैं जबकि अन्य ग्रह दो-दो राशियों के स्वामी हैं। प्रत्येक ग्रह का स्वामित्व नीचे दर्शाया गया है।

- सूर्य सिंह राशि के स्वामी हैं।
- चन्द्र कर्क राशि के स्वामी हैं।
- मंगल मेष तथा वृश्चिक राशियों के स्वामी हैं।
- बुध मिथुन तथा कन्या राशियों के स्वामी हैं।
- गुरु धनु तथा मीन राशियों के स्वामी हैं।
- शुक्र वृष तथा तुला राशियों के स्वामी हैं।
- शनि मकर तथा कुम्भ राशियों के स्वामी हैं।

(ii) *शुभ तथा पाप ग्रह* : गुरु, बुध, शुक्र तथा चन्द्र नैसर्गिक शुभ ग्रह हैं। सूर्य, मंगल, शनि, राहु व केतु नैसर्गिक पाप ग्रह हैं। क्षीण चन्द्र तथा पीड़ित बुध भी पापत्व से युक्त होते हैं। रोगोत्पत्ति में नैसर्गिक पाप ग्रहों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है जबकि नैसर्गिक शुभ ग्रह रोग से रक्षा करते हैं तथा रोगमुक्त होने में सहायक होते हैं।

नैसर्गिक शुभ या अशुभ होने के अतिरिक्त ग्रहों का शुभत्व तथा अशुभत्व उनके द्वारा भावों के आधिपत्य पर भी निर्भर करता है। अतः विभिन्न लग्नों के लिए शुभ तथा पाप ग्रह भिन्न-भिन्न होंगे। इसका उल्लेख अन्यत्र किया गया है।

(iii) *उच्च, नीच तथा मूलत्रिकोण राशियां :* ग्रह यदि अपनी उच्च राशि या मूल त्रिकोण राशि में होते हैं तो वे बली तथा अनुकूल होते हैं। उच्च राशि से छः राशि या 180 अंश दूर उस ग्रह की नीच राशि होती है। स्पष्टता के लिए सारणी 2.3 देखें।

सारणी 2.3

ग्रहों की उच्च, नीच तथा मूल त्रिकोण राशियां

ग्रह	*उच्च राशि*		*नीच राशि*		*मूल त्रिकोण*	
सूर्य	मेष	10	तुला	10	सिंह	0–20
चन्द्र	वृष	3	वृश्चिक	3	वृष	4–20
मंगल	मकर	28	कर्क	28	मेष	0–12
बुध	कन्या	15	मीन	15	कन्या	16–20
गुरु	कर्क	5	मकर	5	धनु	0–10
शुक्र	मीन	27	कन्या	27	तुला	0–15
शनि	तुला	20	मेष	20	कुम्भ	0–20

(iv) *ग्रहों का परस्पर संबंध :* ग्रह अपनी प्रकृति के अनुसार अन्य ग्रहों के लिए मित्र, शत्रु या सम होते हैं। ग्रहों का परस्पर संबंध ज्ञात करने के लिए आचार्य वराहमिहिर, सत्याचार्य के दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं। इनके अनुसार किसी भी ग्रह की उच्च राशि का स्वामी तथा उसकी मूलत्रिकोण राशि से 2, 12, 5, 9, 4 तथा 8वें स्थानों के स्वामी इस ग्रह के मित्र होते हैं। इस दृष्टिकोण के अनुसार ग्रहों के नैसर्गिक परस्पर संबंध को तालिका 2.4 में दर्शाया गया है।

सारणी 2.4

ग्रहों का नैसर्गिक परस्पर संबंध

ग्रह	*मित्र*	*शत्रु*	*सम*
सूर्य	चन्द्र, मंगल, गुरु	शुक्र, शनि	बुध
चन्द्र	सूर्य, बुध	–	मंगल, गुरु, शुक्र, शनि
मंगल	सूर्य, चन्द्र, गुरु	बुध	शुक्र, शनि
बुध	सूर्य, शुक्र	चन्द्र	मंगल, गुरु, शनि
गुरु	सूर्य, चन्द्र, मंगल	बुध, शुक्र	शनि
शुक्र	बुध, शनि	सूर्य, चन्द्र	मंगल, गुरु
शनि	बुध, शुक्र	सूर्य, चन्द्र, मंगल	गुरु

(v) *ग्रहदृष्टि* : ग्रह जिन भावों या ग्रहों को देखते हैं उन पर अपना प्रभाव डालते हैं। सभी ग्रह अपनी स्थिति से सातवें भाव तथा उसमें स्थित ग्रह को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। पृथ्वी से बाहरी कक्षा के ग्रहों (मंगल, गुरु तथा शनि) को विशेष दृष्टियां प्रदान की गई हैं। अतः मंगल अपने स्थान से चौथे तथा आठवें भाव को, गुरु पांचवें तथा नवें स्थान को और शनि तीसरे तथा दसवें स्थान को भी पूर्ण दृष्टियों से देखते हैं। शेष ग्रह अपनी एक-चौथाई दृष्टि तीसरे तथा दसवें स्थान पर, आधी दृष्टि पांचवें तथा नवें स्थान पर एवं तीन-चौथाई दृष्टि चौथे तथा आठवें भाव पर डालते हैं।

(vi) *ग्रहों का अस्त तथा वक्री होना* : ग्रह जब सूर्य के समीप आ जाते हैं तो वे अपनी शक्ति तथा चेतना को खो देते हैं। अस्त ग्रह अपनी शुभता को खो देता है तथा प्रतिकूल फल देता है। भ्रमण करते हुए ग्रह जब विपरीत दिशा में चलते हुए प्रतीत होते हैं तो वे वक्री कहलाते हैं। सूर्य तथा चन्द्रमा कभी वक्री नहीं होते जबकि राहु व केतु प्रायः सदा वक्री ही रहते हैं। वक्री ग्रह आकस्मिक फल प्रकट करते हैं तथा स्वास्थ्य के लिए सामान्यतः प्रतिकूल होते हैं।

ग्रहों के द्वारा प्रदर्शित शारीरिक अंग तथा रोग का वर्णन आगे यथावसर करेंगे।

नक्षत्र

भचक्र को 27 बराबर भागों में बांटा गया है जिसमें प्रत्येक भाग का विस्तार 13°20' है। इस एक भाग को नक्षत्र कहते हैं। नौ-नौ नक्षत्रों के तीन समूह बनते हैं जिनके स्वामी क्रम से केतु, शुक्र, सूर्य, चन्द्र, मंगल, राहु, गुरु, शनि और बुध हैं। यह विचार विंशोत्तरी दशा का आधार है जो घटनाओं का समय ज्ञात करने के लिए अति उत्तम तथा व्यापक रूप से प्रयोग की जाने वाली दशा पद्धति है।

सारणी 2.5 में विभिन्न नक्षत्रों तथा उनके स्वामियों को, तथा उनका राशियों से संबंध दिखाया गया है।

वर्ग विचार

ज्योतिषीय विश्लेषण करने के लिए महर्षि पाराशर ने सोलह वर्गों के प्रयोग का समर्थन किया है। चिकित्सा ज्योतिष के अध्ययन के लिए हमें इनमें से विशेषतया पांच की ही आवश्यकता होती है।

सारणी 2.5

राशि, नक्षत्र तथा नक्षत्र स्वामी

राशि	नक्षत्र	विस्तार रा.	अ.	क.	चरण	स्वामी
1. मेष	1. अश्विनी	0	13	20	4	केतु
	2. भरणी	0	26	40	4	शुक्र
	3. कृत्तिका	1	0	0	1	सूर्य
2. वृष	3. कृत्तिका	1	10	0	3	सूर्य
	4. रोहिणी	1	23	20	4	चन्द्र
	5. मृगशिरा	2	0	0	2	मंगल
3. मिथुन	5. मृगशिरा	2	6	40	2	मंगल
	6. आर्द्रा	2	20	0	4	राहु
	7. पुनर्वसु	3	0	0	3	गुरु
4. कर्क	7. पुनर्वसु	3	3	20	1	गुरु
	8. पुष्य	3	16	40	4	शनि
	9. आश्लेशा	4	0	0	4	बुध
5. सिंह	10. मघा	4	13	20	4	केतु
	11. पूर्वाफाल्गुनी	4	26	40	4	शुक्र
	12. उत्तराफाल्गुनी	5	0	0	1	सूर्य
6. कन्या	12. उत्तराफाल्गुनी	5	10	0	3	सूर्य
	13. हस्त	5	23	20	4	चन्द्र
	14. चित्रा	6	0	0	2	मंगल
7. तुला	14. चित्रा	6	6	40	2	मंगल
	15. स्वाति	6	20	0	4	राहु
	16. विशाखा	7	0	0	3	गुरु
8. वृश्चिक	16. विशाखा	7	3	20	1	गुरु
	17. अनुराधा	7	16	40	4	शनि
	18. ज्येष्ठा	8	0	0	4	बुध
9. धनु	19. मूल	8	13	20	4	केतु
	20. पूर्वाषाढ़	8	26	40	4	शुक्र
	211 उत्तराषाढ़	9	0	0	1	सूर्य
10. मकर	21. उत्तराषाढ़	9	10	0	3	सूर्य
	22. श्रवण	9	23	20	4	चन्द्र
	23. धनिष्ठा	10	0	0	2	मंगल
11. कुम्भ	23. धनिष्ठा	10	6	40	2	मंगल
	24. शतभिषा	10	20	0	4	राहु
	25. पूर्वाभाद्रपद	11	0	0	3	गुरु
12. मीन	25. पूर्वाभाद्रपद	11	3	20	1	गुरु
	26. उत्तराभाद्रपद	11	16	40	4	शनि
	27. रेवती	12	0	0	4	बुध

1. *जन्म कुण्डली :* यह मूल जन्म कुण्डली या जन्म लग्न होता है। सभी वर्ग कुण्डलियां इसी जन्म कुण्डली के सूक्ष्म विभाजन होते हैं।

2. *नवांश कुण्डली :* यह सबसे महत्त्वपूर्ण वर्ग है। प्रत्येक राशि को 3°20' के नौ बराबर भागों में बांट दिया गया है। चर राशियों (1, 4, 7, 10) का पहला नवांश उसी राशि से प्रारम्भ होकर शेष यथाक्रम आगे बढ़ते हैं। स्थिर राशियों (2, 5, 8, 11) का पहला नवांश अपने से नवें से प्रारम्भ होता है। द्विस्वभाव राशियों (3, 6, 9, 12) में पहला नवांश उस राशि से पांचवें से प्रारम्भ होता है। ऐसा बताया जाता है कि जब लग्न कुण्डली तथा नवांश कुण्डली के परिणामों में अन्तर हो तो नवांश कुण्डली द्वारा इंगित फलों को ही अधिक महत्त्व देना चाहिए। सारणी 2.6 विभिन्न राशियों के नवांश दर्शाती है।

सारणी 2.6

नवांश वर्ग

राशि → नवांश		1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
1.	3°20'	1	10	7	4	1	10	7	4	1	10	7	4
2.	6°40'	2	11	8	5	2	11	8	5	2	11	8	5
3.	10°00'	3	12	9	6	3	12	9	6	3	12	9	6
4.	13°20'	4	1	10	7	4	1	10	7	4	1	10	7
5.	16°40'	5	2	11	8	5	2	11	8	5	2	11	8
6.	20°00'	6	3	12	9	6	3	12	9	6	3	12	9
7.	23°20'	7	4	1	10	7	4	1	10	7	4	1	10
8.	26°40'	8	5	2	11	8	5	2	11	8	5	2	11
9.	30°00'	9	6	3	12	9	6	3	12	9	6	3	12

3. *द्रेष्काण कुण्डली :* द्रेष्काण का चिकित्सा-ज्योतिष में विशेष महत्त्व है। प्रत्येक राशि को 10-10 अंश के तीन भागों में बांटा गया है। पहला भाग स्वयं उसी राशि का, दूसरा भाग उससे पांचवीं का, तीसरा भाग पहले से नवीं राशि का होता है। द्रेष्काण के लिए सारणी 2.7 देखें।

सारणी 2.7

द्रेष्काण वर्ग

राशि →		1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
↓ द्रेष्काण													
प्रथम	0°-10°	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
द्वितीय	10°-20°	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4
तृतीय	20°-30°	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8

4. *द्वादशांश कुण्डली*: सामान्यतः द्वादशांश का विश्लेषण जातक के माता-पिता के विषय में जानने के लिए किया जाता है। चिकित्सा ज्योतिष में भी इसका विशेष महत्त्व है। प्रत्येक राशि के बारह भाग किए गए हैं और प्रत्येक भाग 2°30' का होता है। किसी भी राशि का पहला द्वादशांश वहीं से प्रारम्भ होकर यथाक्रम चलता है। द्वादशांश के लिए सारणी 2.8 देखें।

सारणी 2.8

द्वादशांश वर्ग

राशि →	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
↓ द्वादशांश												
1. 0°00' - 2°30'	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
2. 2°30' - 5°00'	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1
3. 5°00' - 7°30'	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2
4. 7°30' -10°00'	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3
5. 10°00' -12°30'	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4
6. 12°30' -15°00'	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5
7. 15°00' -17°30'	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6
8. 17°30' -20°00'	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7
9. 20°00' -22°30'	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8
10. 22°30' -25°00'	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9
11. 25°00' -27°30'	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
12. 27°30' -30°00'	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11

5. *त्रिंशांश कुण्डली* : इस कुण्डली को प्रायः जन्मपत्री द्वारा इंगित प्रतिकूल प्रभावों का निर्णय करने के लिए प्रयोग किया जाता है। विषम राशियों

के त्रिंशांश में प्रथम 5 अंश मंगल के, दूसरे 5 अंश शनि के, अगले 8 अंश गुरु के, अगले 7 अंश बुध के तथा अन्तिम 5 अंश शुक्र के होते हैं। सम राशियों में यह क्रम विपरीत होता है। यहां पर प्रथम 5 अंश शुक्र से, अगले 7 अंश बुध से, अगले 8 अंश गुरु से, अगले 5 अंश शनि से तथा अन्तिम 5 अंश मंगल से संबंधित होते हैं। सूर्य व चन्द्रमा किसी भी त्रिंशांश के स्वामी नहीं होते। स्पष्टीकरण के लिए सारणी 2.9 देखें।

सारणी 2.9

त्रिंशांश वर्ग

	विषम राशियां (1, 3, 5, 7, 9, 11)		सम राशियां (2, 4, 6, 8, 10, 12)	
त्रिंशांश	*अंश*	*स्वामी*	*अंश*	*स्वामी*
1.	0 - 5	मंगल	0 - 5	शुक्र
2.	5 - 10	शनि	5 - 12	बुध
3.	10 - 18	गुरु	12 - 20	गुरु
4.	18 - 25	बुध	20 - 25	शनि
5.	25 - 30	शुक्र	25 - 30	मंगल

अन्य वर्ग कुण्डलियों को भी चिकित्सा-ज्योतिष में प्रयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए सप्तमांश कुण्डली का प्रयोग किसी की संतान के विषय में जानने के लिए, द्रेष्काण कुण्डली सहोदर के विषय में तथा द्वादशांश कुण्डली का जातक के माता-पिता के विषय में जानने के लिए प्रयोग किया जाता है। ऐसी स्थिति में विशिष्ट कारक (जैसे संतान के लिए गुरु, सहोदर के लिए मंगल, पिता के लिए सूर्य, माता के लिए चन्द्रमा इत्यादि) की इन वर्ग कुण्डलियों के विश्लेषण में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

दशाएं

वैदिक ज्योतिष में घटनाओं का समय ज्ञात करने के लिए दशाएं एक अद्वितीय प्रणाली हैं। पाराशरी तथा जैमिनि पद्धतियों में अनेक दशाओं का वर्णन है। हमारे उद्देश्य के लिए हम यहां दो प्रकार की पाराशरी दशाओं का प्रयोग करेंगे। ये दोनों दशाएं नक्षत्रों पर आधारित हैं।

(1) *विंशोत्तरी दशा* : यह 120 वर्ष का चक्र होता है। संसार के अधिकांश ज्योतिषी इसी दशा का प्रयोग करते हैं।

(2) *योगिनी दशा*: इसकी पूर्ण अवधि 36 वर्ष की है। विंशोत्तरी दशा के द्वारा इंगित फलों की पुष्टि करने के लिए इसका प्रयोग किया जाना चाहिए। योगिनी दशा भारत में प्रयोग की जाने वाली दशाओं में दूसरी सबसे प्रचलित दशा है।

1. *विंशोत्तरी दशा* : इस दशा में नौ ग्रहों का एक विशिष्ट क्रम तथा उनकी अवधि निर्धारित है। ये इस प्रकार है- सूर्य 6 वर्ष के लिए, चन्द्रमा 10 वर्ष के लिए, मंगल 7 वर्ष, राहु 18 वर्ष, गुरु 16 वर्ष, शनि 19 वर्ष, बुध 17 वर्ष, केतु 7 वर्ष तथा शुक्र 20 वर्ष के लिए। जन्म के समय चन्द्रमा का नक्षत्र उस समय चलने वाली दशा को इंगित करता है। विभिन्न नक्षत्रों के स्वामी पहले से ही सारणी 2.5 में दिए जा चुके हैं। जन्म के समय चन्द्रमा के नक्षत्र शेष से ही विंशोत्तरी दशा शेष की गणना की जाती है। चिकित्सा ज्योतिष में रोग या किसी संबंधित घटना का समय ज्ञात करने के लिए महादशा, अन्तर्दशा तथा प्रत्यन्तर्दशा की गणना की जानी चाहिए।
2. *योगिनी दशा* : आठ योगिनियों, उनके स्वामियों तथा उनके दशा काल के लिए सारणी 2.10 देखें।

सारणी 2.10

योगिनी दशा

क्र.सं.	*योगिनी दशा*	*स्वामी*	*दशा वर्ष*
1.	मंगला	चन्द्रमा	1 वर्ष
2.	पिंगला	सूर्य	2 वर्ष
3.	धान्या	गुरु	3 वर्ष
4.	भ्रामरी	मंगल	4 वर्ष
5.	भद्रिका	बुध	5 वर्ष
6.	उल्का	शनि	6 वर्ष
7.	सिद्धा	शुक्र	7 वर्ष
8.	संकटा	राहु/केतु	8 वर्ष
		योग	**36 वर्ष**

योगिनी दशा भी जन्म समय के चन्द्रमा के नक्षत्र पर आधारित होती है। जन्म के समय चन्द्रमा की नक्षत्र संख्या में 3 जोड़कर 8 का भाग दें। शेषांक

से ऊपर दिए क्रम से जन्म के समय चलने वाली योगिनी दशा ज्ञात हो जाएगी। विंशोत्तरी दशा की तरह ही चन्द्रमा के नक्षत्र शेष से योगिनी दशा शेष ज्ञात होगी। योगिनी दशा में महादशा तथा अन्तर्दशा की गणना ही पर्याप्त होती है। सारणी 2.11 में योगिनी दशा तथा उससे संबंधित नक्षत्र दिए गए हैं।

सारणी 2.11

नक्षत्र तथा योगिनी दशाएं

क्रम सं.	*योगिनी दशा*	*नक्षत्र*
1.	मंगला	आर्द्रा, चित्रा, श्रवण
2.	पिंगला	पुनर्वसु, स्वाती, धनिष्ठा
3.	धान्या	पुष्य, विशाखा, शतभिषा
4.	भ्रामरी	आश्लेषा, अनुराधा, पूर्वाभाद्रपद, अश्विनी
5.	भद्रिका	मघा, ज्येष्ठा, उत्तराभाद्रपद, भरणी
6.	उल्का	पूर्वाफाल्गुनी, मूल, रेवती, कृत्तिका
7.	सिद्धा	उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, रोहिणी
8.	संकटा	हस्त, उत्तराषाढ़, मृगशिरा

सारणी 2.12, चन्द्रमा के अंश (चन्द्र स्पष्ट) से जन्म के समय चल रही योगिनी दशा बताती है।

सारणी 2.12

चन्द्रमा के अंशों (चन्द्र स्पष्ट) से योगिनी दशा का ज्ञान

चन्द्र के अंश	*राशि*	*दशा*	*राशि*	*दशा*	*राशि*	*दशा*
0°00' - 13°20'	मेष	भ्रामरी	सिंह	भद्रिका	धनु	उल्का
13°20' - 26°40'		भद्रिका		उल्का		सिद्धा
26°40' - 30°00'		उल्का		सिद्धा		संकटा
0°00' - 10°00'	वृष	उल्का	कन्या	सिद्धा	मकर	संकटा
10°00' - 23°20'		सिद्धा		संकटा		मंगला
23°20' - 30°00'		संकटा		मंगला		पिंगला
0°00' - 6°40'	मिथुन	संकटा	तुला	मंगला	कुम्भ	पिंगला
6°40' - 20°00'		मंगला		पिंगला		धान्या
20°00' - 30°00'		पिंगला		धान्या		भ्रामरी
0°00' - 3°20'	कर्क	पिंगला	वृश्चिक	धान्या	मीन	भ्रामरी
3°20' - 16°40'		धान्या		भ्रामरी		भद्रिका
16°40' - 30°00'		भ्रामरी		भद्रिका		उल्का

सारणी 2.13 एक दृष्टि में विभिन्न योगिनी महादशाओं में अन्तर्दशाओं की प्रकृति को दर्शाती है (*श्रीरणवीर ज्योतिर्महानिबन्ध* पर आधारित)।

सारणी 2.13

योगिनी महादशाओं में विभिन्न अन्तर्दशाओं की प्रकृति

महादशा (म.द.)	अन्तर्दशा (अं.द.)		
	शुभ	*अशुभ*	*सम*
1. मंगला	मंगला, धान्या भद्रिका, सिद्धा	पिंगला, भ्रामरी, उल्का, संकटा	–
2. पिंगला	मंगला, पिंगला, धान्या, भद्रिका	भ्रामरी, उल्का, संकटा	सिद्धा
3. धान्या	मंगला, धान्या, भद्रिका, सिद्धा	पिंगला, भ्रामरी, उल्का, संकटा	–
4. भ्रामरी	मंगला, धान्या, सिद्धा	पिंगला, भ्रामरी, उल्का, संकटा	भद्रिका
5. भद्रिका	मंगला, पिंगला, धान्या भद्रिका, सिद्धा	उल्का, संकटा	भ्रामरी
6. उल्का	–	पिंगला, धान्या, भ्रामरी, भद्रिका, उल्का, सिद्धा, संकटा	मंगला
7. सिद्धा	मंगला, धान्या, भद्रिका, सिद्धा	पिंगला, भ्रामरी उल्का, संकटा	–
8. संकटा	सिद्धा	मंगला, पिंगला, धान्या भ्रामरी, उल्का, संकटा	भद्रिका

योगिनी दशा के विस्तृत अध्ययन के लिए पाठक अंग्रेजी पुस्तक (श्री राजीव झंजी तथा श्री एन. के. शर्मा कृत) '*एप्लीकेशन्स ऑफ योगिनी दशा*' *(Applications of Yogini Dasha)* देखें।

आयुर्वेद के त्रिदोष

आयुर्वेद के अनुसार स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए तीन प्रकार की प्रकृत्ति का संतुलन बनाए रखना आवश्यक होता है। इन तीन प्रकृतियों या त्रिदोषों में किसी भी प्रकार का असंतुलन रोग पैदा क़रता है। यह तीन दोष हैं– वात, पित्त

तथा कफ। रोग की आयुर्वेदिक विचारधारा विभिन्न व्याधियों को इन्हीं तीनों के असंतुलन के कारण से होने का समर्थन करती है। वात तत्त्व से वायुजनित रोग, नाड़ी मंडल विकार, जोड़ों में दर्द आदि होते हैं। पित्त तत्त्व का संबंध ऊष्मा, सूजन, ज्वर, यकृत तथा पित्त की थैली से संबंधित समस्याओं आदि से है। कफ का संबंध श्वास के रोग, शीत, दमा आदि से है। ज्योतिषीय दृष्टि से विभिन्न ग्रहों से संबंधित उनकी प्रकृत्ति नीचे दी गई है।

1. सूर्य : पित्त
2. चन्द्र : कफ (तथा वात)
3. मंगल : पित्त
4. बुध : तीनों (वात, पित्त, कफ)
5. गुरु : कफ
6. शुक्र : वात तथा कफ (दोनों की अधिकता)
7. शनि : वात

तृतीय अध्याय

शुभाशुभ ग्रह

असाधुः साधुतामेति साधुर्भवति दारुणः।
अरिश्च मित्रं भवति मित्रं चापि प्रदुष्यति।।

कभी अधर्मी कृपालु हो जाते हैं तथा कृपालु अत्यन्त कठोर हो जाते हैं, शत्रु मित्र हो जाते हैं और कभी मित्र शत्रु हो जाते हैं।

–महाभारत, शान्तिपर्व (राजधर्म) अ. 80 श्लोक 8

क्रूर ग्रहों के प्रभाव से व्याधि उत्पन्न होती है जबकि स्वास्थ्य तथा उसकी सुरक्षा सौम्य ग्रहों से होती है। यह निष्कर्ष बहुत सरल प्रतीत होता है। कोई ग्रह शुभ ग्रह की भांति अथवा पाप ग्रह की भांति फल करेगा यह निश्चित करना सदा सरल नहीं होता। ऋषियों ने जन्मपत्रिका में ग्रहों की प्रकृति निश्चित करने के लिए अनेक नियमों का उल्लेख किया है। इन नियमों का विवरण आगे दिया जाएगा। यद्यपि प्रारम्भ में ही पाठक को सावधान करना संगत होगा कि इन नियमों के प्रयोग में अत्यधिक लचीलेपन की आवश्यकता है। दृष्टिकोण में किसी भी प्रकार की हठधर्मिता भविष्यवाणी को असफल कर सकती हैं।

शुभ तथा अशुभ ग्रह अपने फल अपनी-अपनी दशा में देते हैं। अतः घटनाओं का समय ज्ञात करने में दशा सहायक होती है।

नैसर्गिक पाप तथा शुभ ग्रह

ग्रह का पाप अथवा शुभ होना उसकी नैसर्गिक प्रकृति पर निर्भर करता है। अतः गुरु, शुक्र, बढ़ती कला का चन्द्रमा तथा शुभ संयुक्त बुध शुभ ग्रह हैं। इसी प्रकार सूर्य, मंगल, शनि, राहु, केतु, क्षीण चन्द्रमा तथा पीड़ित बुध पाप ग्रह हैं। चन्द्रमा तथा बुध स्वाभाविक रूप से दुर्बल हैं। यद्यपि चन्द्रमा मृदु तथा भद्र ग्रह

है परन्तु सर्य के अधिक समीप आ जाने से पापी हो जाता है। बुध सरलता से प्रभावित हो जाता है। शुभ ग्रह के प्रभाव में यह शुभ ग्रह की भांति तथा पापग्रह के प्रभाव में पाप ग्रह की भांति व्यवहार करता है। राहु तथा केतु भी शुभ ग्रह की भांति व्यवहार कर सकते है यदि वे गुरु या बुध की राशियों में स्थित हों।

विभिन्न लग्नों के लिए शुभ तथा अशुभ ग्रह

पराशर के सिद्धान्त

ग्रहों का शुभ तथा अशुभ होना इस बात पर निर्भर करता है कि वे किस भाव के स्वामी हैं। स्पष्ट है कि लग्न के बदलने से भावेश बदल जाएंगे। दूसरे शब्दों में, किसी भी लग्न के लिए कुछ ग्रह शुभ तथा अन्य पाप या सम होंगे। यह निर्णय ऊपर वर्णित नैसर्गिक प्रकृति पर आश्रित नहीं है। लग्न जातक के शरीर तथा स्वास्थ्य को इंगित करता है। स्पष्टत: किसी लग्न के लिए प्रतिकूल ग्रह जातक के स्वास्थ्य को प्रतिकूलतया प्रभावित करेंगे जबकि शुभ ग्रह स्वास्थ्य की रक्षा करेंगे। इस संबंध में महर्षि पराशर द्वारा अपने प्रसिद्ध 'बृहत् पाराशर होराशास्त्र' में मानक नियम इस प्रकार दिए गए हैं:

नियम – भाग I

1. शुभ ग्रह यदि केन्द्र (1, 4, 7 तथा 10 भाव) के स्वामी हों तो वे अपनी शुभता छोड़ देते हैं।
2. पाप ग्रह यदि केन्द्र के स्वामी हों तो वे अपना पापत्व छोड़ देते हैं।

   नोट:

   (i) नैसर्गिक शुभ ग्रह चन्द्रमा, बुध, गुरु तथा शुक्र हैं; नैसर्गिक पाप ग्रह सूर्य, मंगल, शनि, राहु तथा केतु हैं।

   (ii) केन्द्र का स्वामी होना ग्रहों की नैसर्गिक प्रकृति को उदासीन करता है। अत: शुभ ग्रह शुभ फल करने का अपना सामर्थ्य खो देते हैं जबकि पाप ग्रह हानि पहुंचाने का सामर्थ्य खो देते हैं।

   (ii) केवल केन्द्र के स्वामी होने के कारण शुभ ग्रह पाप ग्रह में या पाप ग्रह शुभ ग्रह में परिवर्तित नहीं हो जाते।
3. त्रिकोण (1, 5, तथा 9 भाव) के स्वामी सदैव शुभ फल करते है चाहे वे नैसर्गिक रूप से शुभ हों या पाप।

नोट: लग्नेश केन्द्र तथा त्रिकोण दोनों का स्वामी है। अतः यह सदा शुभप्रद होता है।

4. तीसरे, छठे तथा ग्यारहवें भाव के स्वामी (त्रिषडायेश) सदा पापी होते हैं।
5. दूसरे, आठवें तथा बारहवें भाव के स्वामी समता का व्यवहार करते हैं। ये ग्रह अपनी स्थिति तथा युति के अनुसार फल देते हैं।

   नोट: दूसरे, आठवें तथा बारहवें भाव के स्वामी आसानी से प्रभावित होने वाले सम ग्रह हैं।

नियम – भाग II

कुण्डली के बारह भावों को चार वर्गों में बांटा गया है (1) केन्द्र (2) त्रिकोण (3) त्रिषडाय (3, 6, 11) समूह तथा (4) 2, 8, 12 समूह। प्रत्येक समूह के विभिन्न भावेशों का सापेक्ष बल इस प्रकार है।

1. केन्द्र के स्वामियों में से, चतुर्थेश लग्नेश से अधिक बली, सप्तमेश चतुर्थेश से अधिक बली तथा दशमेश सप्तमेश से अधिक बली होता है।
2. त्रिकोण के स्वामियों में, पंचमेश लग्नेश से अधिक बली होता है, जबकि नवमेश पंचमेश से अधिक बली होता है।
3. 3, 6, 11 समूह में, षष्ठेश तृतीयेश से अधिक बली तथा एकादशेश षष्ठेश से अधिक बली होता है।
4. 2, 8, 12 समूह में, द्वादशेश द्वितीयेश से अधिक बली तथा अष्टमेश द्वादशेश से अधिक बली होता है।

नियम – भाग III

यद्यपि अष्टम भाव का स्वामी ऊपर उदासीन या सम कहा गया है परन्तु इसमें अशुभता करने की विशेष प्रवृत्ति होती है। अष्टम भाव बाधा, प्रतिबन्ध, असफलता, षडयंत्र, व्याधियों, मृत्यु तथा मृत्युतुल्य कष्ट का प्रतिनिधित्व करता है। अष्टम भाव का विचार करते समय निम्नलिखित बिन्दुओं का स्मरण कर लेना चाहिए।

1. अष्टम भाव नवें (भाग्य) भाव से बारहवां है, अतः यह भाग्य की हानि का सूचक है। इसी कारण इसका स्वामी सदैव पापी होता है।

   नोट:

   (i) लग्न से द्वादश भाव क्षति का है। अतः किसी भी भाव से बारहवां भाव उस भाव की हानि का होता है। क्योंकि नवां भाव

भाग्य, धर्म, पुण्य कार्य, धार्मिक उन्मुखता, पिता आदि का होता है अतः इससे बारहवां (अर्थात् लग्न से आठवां) इन सबकी हानि को इंगित करता है। भाग्य की हानि सबसे बड़ी हानि होती है।

(ii) यदि अष्टमेश लग्नेश भी हो तो लग्नेश होने के कारण उसकी शुभता प्रभावी रहती है। इस स्थिति में अष्टमेश होते हुए भी वह शुभता का व्यवहार करता है, यदि वह विशेष रूप से पीड़ित या अशुभ भावों में न हो।

2. अष्टमेश यदि तृतीयेश या एकादशेश भी हो तो और भी अधिक पापी हो जाता है।

नोट:

(i) मीन लग्न के लिए शुक्र तृतीयेश तथा अष्टमेश होने के कारण हानिकारक होता है।

(ii) कन्या लग्न के लिए मंगल तृतीय तथा अष्टम भावों का स्वामी होने के कारण प्रतिकूल होता है।

(iii) वृष लग्न के लिए गुरु अष्टम तथा एकादश भावों का स्वामी होने के कारण प्रतिकूल होता है।

(iv) वृश्चिक लग्न के लिए बुध अष्टम तथा एकादश भावों का स्वामी होने के कारण अशुभ होता है।

3. अष्टमेश यदि साथ ही त्रिकोण का स्वामी भी हो तो वह शुभ हो जाता है।

नोट:

(i) गुरु तथा बुध क्रमशः सिंह तथा कुम्भ लग्न के लिए पंचम तथा अष्टम भावों के स्वामी होने के कारण शुभता का व्यवहार करते हैं।

(ii) मिथुन लग्न के लिए, शनि अष्टमेश तथा नवमेश (त्रिकोण का स्वामी) होने के कारण पूर्ण रूप से शुभ नहीं होता तथा "भावार्थ रत्नाकर" के अनुसार केवल मिश्रित फल ही देता है।

4. सूर्य व चन्द्र को अष्टमेश होने का दोष नहीं लगता।

नोट:

धनु लग्न के लिए चन्द्रमा तथा मकर लग्न के लिए सूर्य अष्टमेश होता है। महर्षि पराशर के अनुसार अष्टमेश होने पर सूर्य व चन्द्र पीड़ित

नहीं होते। हमारे विचार में यह नियम, विशेषतः चिकित्सा ज्योतिष में खरा नहीं उतरता।

नियम – भाग IV

1. जब कोई ग्रह केन्द्र तथा त्रिकोण दोनों का स्वामी हो जाता है तो यह विशेष रूप से लाभकारी हो जाता है और इसे "राजयोग कारक" (अत्यधिक लाभ करने वाला) कहते हैं। यदि यह केन्द्र या त्रिकोण में स्थित हो तो अतिरिक्त लाभ देता है।

   नोट:

   (i) केन्द्र तथा त्रिकोण के स्वामी होने के कारण कर्क तथा सिंह लग्न के लिए मंगल, मकर तथा कुम्भ लग्न के लिए शुक्र, वृष तथा तुला लग्न के लिए शनि राजयोग कारक हो जाते हैं।

   (ii) वृष लग्न के लिए नवमेश तथा दशमेश (क्रमशः त्रिकोणेश तथा केन्द्रेश) होने के बावजूद शनि के शुभत्व की क्षमता पर कुछ लोग संदेह करते हैं। इसका कारण, वृष जैसे स्थिर लग्न के लिए नवें भाव के स्वामी को बाधक माना जाता है। यह मत पाराशर का नहीं है।

2. केवल केन्द्र का स्वामी होना ही पाप ग्रह को शुभ ग्रह में नहीं बदल देता। पूर्णतः पापत्व त्यागने के लिए त्रिकोण का स्वामी होना भी आवश्यक है।

   नोट:

   मेष लग्न के लिए दशमेश तथा एकादशेश होने पर, वृश्चिक लग्न के लिए तृतीयेश तथा चतुर्थेश होने पर, सिंह लग्न के लिए षष्ठेश तथा सप्तमेश होने पर भी शनि पापी ही रहता है यद्यपि प्रत्येक मामले में यह केन्द्र का स्वामी है।

3. केन्द्राधिपत्य दोष (केन्द्रों का स्वामी होने का दोष) शुभ ग्रहों के लिए चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र में उत्तरोत्तर बढ़ता है।

4. पूर्ण चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र इसी क्रम में उत्तरोत्तर शुभ होते हैं।

5. क्षीण चन्द्र, सूर्य, शनि, और मंगल इसी क्रम में उत्तरोत्तर अशुभ होते हैं।

नियम – भाग V (राजयोग)

जब केन्द्र का स्वामी ग्रह त्रिकोण के स्वामी से किसी भी प्रकार से संबंध स्थापित करे तो राजयोग (या अतिशुभ योग) उत्पन्न करता है। कुण्डली में शुभ योग क्रूर ग्रहों के प्रभावों को नष्ट करते हैं तथा रोगमुक्त करते हुए शुभफल देते हैं। किन्हीं दो भावेशों का संबंध निम्नलिखित किसी भी प्रकार से हो सकता है।

1. एक ही भाव में स्थित होने पर (युति द्वारा)
2. परस्पर दृष्टि से
3. स्थान परिवर्तन द्वारा
4. यदि इनमें से एक ग्रह दूसरे के भाव में हो तथा उस दूसरे के द्वारा दृष्ट हो।

   नोट:

   यदि उपर्युक्त किसी भी प्रकार से केन्द्र के स्वामी त्रिकोण के स्वामी से संबंधित हों तो भी वे राजयोग नहीं बनाते यदि वे पाप स्थानों (जैसे 3, 6, 11 भाव) के भी स्वामी हों।

नियम – भाग VI (राहु व केतु)

1. राहु व केतु का फल उस भाव से प्रभावित होता है जिसमें वे स्थित होते हैं तथा वे उस ग्रह (अथवा भावेश) की तरह से भी फल करते हैं जिससे वह युति करते हैं।
2. राहु व केतु निम्नलिखित स्थितियों में राजयोग कारक हो जाते हैं:
   (i) यदि वे केन्द्र में हों तथा त्रिकोण के स्वामी से संयुक्त हों; या
   (ii) यदि वे त्रिकोण में हों तथा केन्द्र के स्वामी से संयुक्त हों।
3. राहु शनि की तरह तथा केतु मंगल की तरह भी फल देते हैं।

त्रिक स्थान तथा उनके स्वामी

छठे, आठवें तथा बारहवें भावों को त्रिक भाव कहा जाता है। ये भाव, इनके स्वामी तथा इनसे युति करने वाले अन्य ग्रह प्रतिकूल फल देते हैं। परन्तु ये विशेषतः स्वास्थ्य की दृष्टि से प्रतिकूल फल करते हैं। छठा भाव तथा

षष्ठेश अन्य विषयों के साथ-साथ रोग तथा दुर्घटना को भी इंगित करते हैं। अष्टम भाव तथा अष्टमेश दीर्घकालिक रोग, असाध्य रोग या मृत्यु को इंगित करते हैं। द्वादश भाव तथा इसका स्वामी पीड़ा तथा अस्पताल में भर्ती होने को इंगित करते हैं। इन भावों या इनके स्वामियों से युक्त ग्रहों की दशाओं को रोग निर्णय करते समय सावधानीपूर्वक ध्यान में रखना चाहिए।

मारक ग्रह

यह पहले ही बताया जा चुका है कि किसी भी भाव से द्वादश भाव उस भाव की हानि को दर्शाता है। अष्टम भाव आयुस्थान है। अष्टम से अष्टम अर्थात तृतीय स्थान भी वैकल्पिक आयुस्थान है। अष्टम से द्वादश, सप्तम भाव तथा तृतीय से द्वादश, द्वितीय भाव होते हैं। अतः द्वितीय तथा सप्तम भाव के स्वामी आयु की हानि, दूसरे शब्दों में मृत्यु, को दर्शाते हैं। मारक, जैसा कि इनका नाम है, अपनी महादशा अथवा अन्तर्दशा में सदैव मृत्यु नहीं देते। परन्तु वे स्वास्थ्य को अवश्य क्षुब्ध कर देते हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से इनकी दशाओं पर ध्यान देना चाहिए।

संस्कृत के शास्त्रीय ग्रन्थ अपेक्षाकृत कठोर शब्दों का प्रयोग करते हैं। मारक का अर्थ है "मारने वाला"। मृत्यु का समय जानने के लिए जबकि मारक ग्रह की दशाएं महत्त्वपूर्ण होती हैं परन्तु सदैव उनका अर्थ मृत्यु ही नहीं समझना चाहिए। ज्योतिष के बताए गए नियमों की दृढ़ या कठोर प्रयुक्ति ही ज्योतिषियों की अधिकतर असफलता का कारण है। इसमें लचीलापन लाने की आवश्यकता है।

विभिन्न लग्नों से ग्रहों का संबंध

उपरिलिखित नियमों के आधार पर विभिन्न लग्नों के लिए ग्रहों की प्रवृत्ति को सारणी रूप में लिखना अब संगत होगा।

क्र. सं.	*लग्न*	*शुभ ग्रह*	*पाप ग्रह*	*मारक*	*योग कारक*
1.	मेष	सूर्य, गुरु	बुध, शुक्र, शनि	शुक्र	–

(i) केवल गुरु तथा शनि (नवमेश तथा दशमेश) की युति राजयोग नहीं देती।

(ii) गुरु यदि पाप युक्त हो तो पापी हो जाता है।

(iii) लग्नेश होने के कारण मंगल शुभता का ही व्यवहार करता है।

क्र. सं.	लग्न	शुभ ग्रह	पाप ग्रह	मारक	योग कारक
2.	वृष	सूर्य, शनि	चन्द्र, गुरु, शुक्र	मंगल (चन्द्र, गुरु, शुक्र)	शनि

(i) बुध आंशिक शुभ है।

(ii) वृष लग्न के लिए शुक्र भी अति शुभ नहीं है।

3.	मिथुन	शुक्र	सूर्य, मंगल, गुरु	चन्द्र	–

(i) शनि (नवमेश) तथा गुरु (सप्तमेश तथा दशमेश) की युति राजयोग नहीं देती।

(ii) शुभ ग्रह गुरु लग्न के अतिरिक्त दो अन्य केन्द्रों का स्वामी है। अतः इसे केन्द्राधिपत्य दोष लगता है। इस प्रकार का दोष केवल बुध व गुरु को ही लगता है।

(iii) बुध सम है। शनि मिश्रित फल देता है।

4.	कर्क	चन्द्र, मंगल, गुरु	बुध, शुक्र	शनि	मंगल

(i) सूर्य ग्रहयुति के अनुसार शुभता अथवा अशुभता का व्यवहार करता है।

5.	सिंह	सूर्य, मंगल, गुरु	बुध, शुक्र, शनि	शनि	मंगल

(i) गुरु (पंचमेश) तथा शुक्र (दशमेश) की युति राजयोग नहीं देती है।

(ii) द्वादशेश चन्द्र युति के आधार पर ही फल देता है।

6.	कन्या	बुध, शुक्र	चन्द्र, मंगल, गुरु	शुक्र	–

(i) नवमेश शुक्र तथा दशमेश एवं लग्नेश बुध की युति राजयोग कारक है।

(ii) द्वादशेश सूर्य युति पर आधारित फल देता है।

(iii) लग्नेश तथा दशमेश (सबसे शक्तिशाली केन्द्र) बुध शुभ हो जाता है जबकि गुरु (चतुर्थेश व सप्तमेश) को केन्द्राधिपत्य दोष लग जाता है।

क्र. सं.	लग्न	शुभ ग्रह	पाप ग्रह	मारक	योग कारक
7.	तुला	बुध, शनि	सूर्य, मंगल, गुरु	मंगल	शनि

(i) शुक्र सम है।

(ii) चन्द्र (दशमेश) तथा बुध (नवमेश) की युति राजयोग कारक है।

8.	वृश्चिक	चन्द्र, गुरु	बुध, शुक्र, शनि	शुक्र	–

(i) मंगल सम है (देखिए वृष लग्न के लिए शुक्र)।

(ii) सूर्य-चन्द्र (क्रमशः दशमेश तथा नवमेश) युति राजयोग कारक है।

9.	धनु	सूर्य, मंगल	शुक्र	शुक्र, शनि	–

(i) गुरु तथा चन्द्र सम हैं।

(ii) सूर्य-बुध (नवमेश तथा दशमेश) की युति राजयोग कारक है।

10.	मकर	बुध, शुक्र	चन्द्र, मंगल, गुरु	मंगल (तथा अन्य पाप ग्रह)	शुक्र

(i) सूर्य सम है।

(ii) शनि लग्नेश भी है अतः द्वितीयेश होने पर भी मारक नहीं है।

11.	कुम्भ	शुक्र, शनि	चन्द्र, मंगल, गुरु	सूर्य, मंगल, गुरु	शुक्र

(i) बुध उदासीन है। सम्भवतः हानिकारक कम शुभकारक अधिक है।

12.	मीन	चन्द्र, मंगल, गुरु	सूर्य, बुध, शुक्र, शनि	बुध, शनि	–

(i) मंगल द्वितीयेश होने पर भी मारक नहीं है (देखिए कन्या लग्न के लिए शुक्र)।

(ii) नवमेश मंगल तथा दशमेश एवं लग्नेश गुरु राजयोग कारक हैं।

(iii) कन्या लग्न के लिए गुरु तथा बुध की भूमिका की तुलना उपरि मीन लग्न के लिए गुरु तथ बुध की भूमिका से करें।

इस सारणी के आधार पर किसी जन्मपत्रिका के लिए शुभ तथा अशुभ ग्रहों का निर्णय तथा अच्छे स्वास्थ्य, रोग तथा रोग से मुक्ति का समय ज्ञात किया जाता है।

गुलिक

गुलिक एक उपग्रह है जो शनि का ही प्रतिनिधित्व करता है। इसका कोई भौतिक अस्तित्व नहीं है फिर भी यह अति पाप ग्रह की भांति व्यवहार करता है। गुलिक को ही (शनि अथवा मन्द का पुत्र होने के कारण) मान्दि भी कहते हैं।

गुलिक की स्थिति की गणना से पूर्व यह बताना आवश्यक है कि वैदिक ज्योतिष शास्त्र के अनुसार चौबीस घंटे का एक दिन सूर्योदय से अगले सूर्योदय तक (न कि मध्यरात्रि से अगली मध्यरात्रि तक) का होता है। अतः सूर्योदय से सूर्यास्त तक के मध्य होने वाला जन्म दिवा काल का जन्म कहलाएगा तथा रात्रि काल का जन्म सूर्यास्त से सूर्योदय के मध्य। एक दिन 24 घंटे के स्थान पर 60 घटी का माना जाता है जो कि हमारी पुरातन प्रणाली के अनुसार है। अतः एक घंटा 2.5 घटी के बराबर या एक घटी 24 मिनट के बराबर होती है। पुनः विभाजन करने पर एक घटी, 60 पल (विघटी) के बराबर तथा एक पल 24 सेकिन्ड के बराबर होता है। एक पल को पुनः 60 विपल (प्रत्येक 0.4 सेकिन्ड के बराबर) में विभाजित किया जा सकता है।

इस प्रकार

एक घटी = 24 मिनट

एक पल = 24 सेकेंड

एक विपल = 0.4 सेकेंड

घंटों को 2.5 से गुणा करके घटी में तथा घटी को 2.5 से भाग करके घंटों में बदला जा सकता है।

गुलिक की गणना निम्नलिखित क्रम से की जाती है।

1. दिनमान (यदि दिवा जन्म हो) अथवा रात्रिमान (यदि रात्रि में जन्म हो) के आठ बराबर खण्ड करें।

2. प्रत्येक खण्ड किसी ग्रह से संबंध रखता है। दिवा काल में जन्म हो तो दिवास्वामी से आरम्भ करें (जैसे रविवार के लिए सूर्य, सोमवार के लिए चन्द्रमा, मंगलवार के लिए मंगल... आदि)। यदि रात्रिकाल में जन्म हो तो उससे पांचवे से आरम्भ करें (जैसे रविवार के लिए गुरु, सोमवार के लिए शुक्र, मंगलवार के लिए शनि... आदि)। आठवां खण्ड बिना स्वामी का होगा।

3. शनि के खण्ड का नाम ही गुलिक है। जिस समय पर शनि का खण्ड शुरू होता है उस समय के लग्न की गणना करें। यह गुलिक के राश्यंशादि होंगे।

गुलिक का भिन्न-भिन्न भावों में फल

अन्य क्रूर ग्रहों की तरह गुलिक भी 3, 6, 10 और 11 भावों में अनुकूल फल प्रदान करता है। अन्य भावों में यह अशुभत्व का ही सूचक है।

चिकित्सा ज्योतिष से संबंधित गुलिक का बारह भावों में फल इस प्रकार हैं।

प्रथम भाव : रोगी, कामी, अति दुःखी, विकृत नेत्र

द्वितीय भाव : विकृत, कलह प्रिय

तृतीय भाव : घमण्डी, क्रोधी, भयहीन, स्वस्थ

चतुर्थ भाव : रोगी, वात और पित्त रोग से पीड़ित

पंचम भाव : अल्पबुद्धि, वीर्यहीन, अल्पायु

षष्ठ भाव : पुष्ट देह, उत्साही, स्थिर

सप्तम भाव : दुर्बल देह, अल्पबुद्धि

अष्टम भाव : चेहरे और नेत्रों में विकार, तीव्र रोष व्यक्त करने वाला

नवम भाव : दुर्बल देह, अनेक कष्टयुक्त, मन्दबुद्धि

दशम भाव : स्वस्थ, योग धर्मरत

एकादश भाव : छोटा शरीर, स्वस्थ

द्वादश भाव : आलसी, अंगहीन, कुरूप

विभिन्न प्रतिकूल घटक

अभी तक जितना बताया जा चुका है उसके आधार पर अच्छा फलादेश किया जाना संभव है। किसी कुण्डली का, रोग के विषय में, परीक्षण करते समय कुछ कम प्रसिद्ध घटकों का विचार भी अवश्य कर लेना चाहिए।

इनकी दशा-अन्तर्दशा रोगकारी हो सकती हैं (मृत्यु भी संभव है यदि अन्य घटक भी ऐसा सूचित करते हों), अतः इनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

1. बाईसवां द्रेष्काण : बाईसवां द्रेष्काण वह द्रेष्काण है जो लग्न से ठीक सात भाव दूर होता है। यह लग्न तुल्य अंशों में अष्टम भाव में स्थित होता

है। अष्टम भाव की राशि में लग्न के अंश स्थापित करके द्रेष्काण ज्ञात करें। इस द्रेष्काण राशि का स्वामी तथा इस द्रेष्काण में स्थित ग्रह पापी होते हैं। ये रोग एवं मृत्यु देने की क्षमता रखते हैं। यदि द्रेष्काण कुण्डली बनाई जाए तो इसका आठवां भाव ही 22वां द्रेष्काण होता है। इस भाव का स्वामी तथा इसमें स्थित ग्रह पापी, रोगकारक अथवा मृत्युकारक सिद्ध होते हैं।

2. चौंसठवां नवांश : 22वें द्रेष्काण की गणना लग्न से तथा 64वें नवांश की गणना चन्द्रमा से की जाती है। यह सदा चन्द्रमा से ठीक सात भाव की दूरी पर स्थित होता है। चन्द्रमा से आठवें भाव की राशि पर चन्द्रमा के अंश स्थापित करें और उस राशि का नवांश ज्ञात करें। उस नवांश का स्वामी ही चौंसठवें नवांश का स्वामी होता है जो स्वयं तथा इस नवांश में स्थित ग्रहों सहित पाप फल कारक है। सामान्य नवांश कुण्डली में चन्द्रमा से चतुर्थ भाव का स्वामी ही 64वें नवांश का स्वामी होता है। यह स्वामी तथा इससे युक्त ग्रह एवं इस नवांश में स्थित ग्रह सभी पाप ग्रह की भांति फल देते हैं एवं रोग अथवा मृत्यु कारक होते हैं।

3. सर्प द्रेष्काण : कर्क राशि का दूसरा तथा तीसरा द्रेष्काण, वृश्चिक राशि का पहला व दूसरा द्रेष्काण एवं मीन राशि का तीसरा द्रेष्काण, सर्प द्रेष्काण कहलाते हैं। यदि अन्य स्थितियां भी प्रतिकूल हों तो इन द्रेष्काणों में स्थित ग्रह अपनी दशा-अंतर्दशा में स्वास्थ्य को खराब करते हैं।

चतुर्थ अध्याय

राशि, भाव एवं शरीर के अंग

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चंद्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः।।

वह ही अग्नि, वह ही आदित्य (सूर्य), वही वायु, वही चन्द्र, वही शुक्र, वही ब्रह्म, वही जल और वही स्वयं प्रजापति है।

–यजुर्वेद 32:1

रोग का स्थान ज्ञात करने के योग्य होने के लिए यह समझना आवश्यक है कि शरीर के विभिन्न अंग जन्मपत्री में किस प्रकार से निरूपित होते हैं। दुर्भाग्य से शास्त्रीय ग्रन्थ इस दिशा में अल्प सूचनाएं ही प्रदान करते हैं। व्यवहार में सामान्यत: अधिक विवरण की आवश्यकता होती है। यहां तक कि यदि उचित रीति से प्रयोग की जाएं तो वे सूचनाएं आगे शोध के लिए प्रगति का मार्ग भी प्रशस्त कर सकती हैं। इस अध्याय में उन विशेष मूल नियमों को बताया गया है जो रोग का स्थान निश्चित करने में सहायक होते हैं तथा अगले अध्याय में दिए गए नियमों के साथ रोग की प्रकृति निश्चित करने में भी निर्णायक भूमिका निभाते हैं।

कालपुरुष विचार

कालपुरुष शब्द का प्रयोग प्राय: ज्योतिष में होता है। समस्त भचक्र को आवृत्त करते हुए एक अलौकिक मानव की कल्पना की गई है जिसे कालपुरुष कहा गया है। भचक्र की विभिन्न राशियां उस कालपुरुष के शरीर पर स्थित होती हैं। जो राशि कालपुरुष के जिस अंग पर पड़ती है, वह राशि उसी अंग का प्रतिनिधित्व करती हैं। प्रथम अध्याय के प्रारम्भ में हमने बताया गया था कि वामन पुराण के अनुसार भचक्र की विभिन्न राशियां भगवान शिव के शरीर

को किस प्रकार इंगित करती हैं। भगवान शिव का शरीर वहां कालपुरुष का प्रतिनिधित्व करता है। अधिकांश ज्योतिष ग्रन्थ मुख्य रूप से थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ वामन पुराण में बताए गए वर्णन से सहमत हैं। उदाहरण के लिए वराहमिहिर कालपुरुष के शारीरिक अंगों को भचक्र की विभिन्न राशियों में, तालिका 4.1 के अनुसार बांटते हैं।

सारणी 4.1

कालपुरुष के शारीरिक अंग

क्र. सं.	*राशि*	*शारीरिक अंग*
1.	मेष	सिर
2.	वृष	चेहरा
3.	मिथुन	कंधे, गर्दन तथा स्तनमध्य
4.	कर्क	हृदय
5.	सिंह	पेट (ऊपरी उदर)
6.	कन्या	नाभि क्षेत्र (कमर और आंतें)
7.	तुला	निचला उदर
8.	वृश्चिक	बाहरी जननांग (गुप्तांग)
9.	धनु	जांघें
10.	मकर	दोनों घुटने
11.	कुम्भ	टांगें
12.	मीन	पैर

यह देखा जा सकता है कि थोड़ा विवाद इन मुख्य भागों में है। मुख्य अन्तर यह है कि वराहमिहिर के अनुसार हृदय का क्षेत्र कालपुरुष का चौथा भाव है जो कि कर्क राशि है जबकि वामनपुराण के अनुसार यह कालपुरुष का पांचवां भाव है जो कि सिंह राशि है। वराहमिहिर द्वारा किया गया विभाजन आसान है। इसमें भचक्र की प्रारम्भिक चार राशियां कालपुरुष के सिर से डायफ्राम तक, अगली चार राशियां डायफ्राम से पेरिनियम (गुदान्त भाग) तक (जो उदर, बस्ति प्रदेश तथा गुप्तांग का प्रतिनिधित्व करते हैं) जबकि अन्तिम चार राशियां कूल्हे के जोड़ से निचले अंगों का प्रतिनिधित्व करती हैं। किन्तु हृदय रोगों के हमारे वर्तमान ज्ञान के अनुसार जब हम पृथक-पृथक भावों (न कि राशियों) पर विचार करते हैं तो हृदय रोगों के लिए पांचवें भाव का विचार ही उपयुक्त प्रतीत होता है।

भावों का कारकत्व

चिकित्सा-ज्योतिष के प्रसंग में कुण्डली के भावों के कारकत्व का विचार करना अब संगत होगा। यह ध्यान देना चाहिए कि शरीर का दायां भाग कुण्डली के प्रथम से सप्तम भाव तक तथा बायां भाग सप्तम से प्रथम भाव तक प्रदर्शित होता है।

प्रथम भाव : सिर, मस्तिष्क, सामान्यतः शरीर, बाल, रूप, त्वचा, निद्रा, रोग से छुटकारा, आयु, बुढ़ापा तथा कार्य करने की योग्यता।

द्वितीय भाव: चेहरा, आंखें (दायीं आंख), दांत, जिह्वा, मुख, मुख के भीतरी भाग, नाक, वाणी, नाखून, मन की स्थिरता।

तृतीय भाव : कान (दायां कान), गला, गर्दन, कंधे, भुजाएं, श्वसन प्रणाली, भोजन नलिका, हंसिया, अंगुष्ठ से प्रथम अंगुली तक का भाग, स्वप्न, मानसिक अस्थिरता, शारीरिक स्वस्थता तथा विकास।

चतुर्थ भाव : छाती (वक्षःस्थल), फेफड़े, हृदय (एक मतानुसार), स्तन, वक्षःस्थल की रक्त वाहिनियां, डायफ्राम, प्रबल तथा प्रभावशाली औषधि।

पंचम भाव : हृदय, ऊपरी उदर तथा उसके अवयव जैसे आमाशय, यकृत (जिगर), पित्त की थैली, तिल्ली, अग्न्याशय, पक्वाशय, मन, विचार, गर्भावस्था, नाभि।

छठा भाव: छोटी आंत, आन्त्रपेशी, अपेन्डिक्स (आन्त्रपुच्छ), बड़ी आंत का कुछ भाग, गुर्दा, ऊपरी मूत्र प्रणाली, व्याधि, अस्वस्थता, घाव, मानसिक पीड़ा, पागलपन, कफजनित रोग, क्षयरोग, गिल्टियां, छाले वाले रोग (छोटी माता!), नेत्र रोग, विष, आमाशयी नासूर (व्रण)।

सप्तम भाव: बड़ी आंत तथा मलाशय, निचला मूत्र क्षेत्र (निचली मूत्र प्रणाली तथा मूत्राशय), गर्भाशय, अण्डाशय तथा वृषण, शिश्न ग्रन्थि, वीर्य थैली, मूत्रनली, गुदामार्ग, वीर्य, मैथुन।

अष्टम भाव: बाहरी जननांग, पेरिनियम, गुदा द्वार, बाह्य यौनांग, अंगों की हानि (अंग भंग), चेहरे के कष्ट, दीर्घकालिक या असाध्य रोग, आयु, तीव्र मानसिक वेदना ऊरुसन्धि।

नवम भाव: कूल्हा, जांघ की रक्त वाहिनियां, पोषण।

दशम भाव: घुटने, घुटने की चक्की, घुटने के जोड़ का पिछला रिक्त भाग।

एकादश भाव: टांगें, बायां कान, वैकल्पिक रोग स्थान (छठे से छठा होने के कारण), आरोग्य प्राप्ति।

द्वादश भाव: पैर, बायीं आंख, निद्रा में बाधा, मानसिक असन्तुलन, शारीरिक व्याधियां, अस्पताल में भर्ती होना, दोषपूर्ण अंग, मृत्यु।

द्रेष्काण तथा शरीर के अंग

रोग का स्थान निश्चित करने में द्रेष्काण की भूमिका महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। इस विषय को अच्छी प्रकार से नहीं समझा गया है। परन्तु वास्तव में चिकित्सा-ज्योतिष के सभी ग्रन्थ शरीर में रोग का स्थान निर्धारण करने में द्रेष्काण की विशेष भूमिका पर बल देते हैं।

तीन द्रेष्काण शरीर के तीन भागों का प्रतिनिधित्व करते है। पहला भाग सिर से मुंह तक; दूसरा गर्दन से नाभि तक; तीसरा बस्ति से पैर तक। ऐसा कहा गया है कि जब कुण्डली में प्रथम द्रेष्काण उदित होता है तो कुण्डली के सभी भाव सिर से मुख तक (प्रथम खण्ड) के अंगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। जब लग्न में द्वितीय द्रेष्काण उदित होता है तब गर्दन से नाभि तक के शरीर के अंग (द्वितीय खण्ड) प्रतिरूपित होते हैं। इसी प्रकार तृतीय द्रेष्काण के उदित होने पर बस्ति प्रदेश से आगे पैरों तक (तृतीय खण्ड) के शरीर के अंग कुण्डली के बारह भावों से निरूपित होते है। शरीर के दाहिनी ओर के अंग कुण्डली के भाव संख्या 2 से 6 तथा बांई ओर के अंग भाव संख्या 8 से 12 द्वारा निरुपित होते हैं।

वराहमिहिर तथा अन्य ग्रंथकारों के अनुसार कुण्डली में पहला, दूसरा व तीसरा द्रेष्काण उदित होने पर कुण्डली के विभिन्न भावों द्वारा निरूपित शरीर के अंग तालिका 4.2 में दर्शाए गए हैं।

तालिका 4.2: द्रेष्काण तथा शरीर के अंग

लग्न में उदित द्रेष्काण पर आधारित

भाव	*पहला द्रेष्काण*	*दूसरा द्रेष्काण*	*तीसरा द्रेष्काण*
1.	सिर	गर्दन	बस्ति
2.	दायीं आंख	दायां कन्धा	जननांग
3.	दायां कान	दायीं बाजू	दायां वृषण
4.	दायीं नासिका	शरीर का दायां हिस्सा	दायीं जांघ
5.	दायां गाल	हृदय का दायां भाग	दायां घुटना

भाव	पहला द्रेष्काण	दूसरा द्रेष्काण	तीसरा द्रेष्काण
6.	दायां जबड़ा	दायां फेफड़ा तथा स्तन	दायीं पिंडली
7.	मुख	नाभि	टांग तथा पैर
8.	बायां जबड़ा	बायां फेफड़ा तथा स्तन	बायीं पिंडली
9.	बायां गाल	हृदय का बायां भाग	बायां घुटना
10.	बायीं नासिका	शरीर का बायां भाग	बायीं जांघ
11.	बायां कान	बायीं बाजू	बायां वृषण
12.	बायीं आंख	बायां कन्धा	गुदा

जिस समय पाप ग्रह किसी विशेष द्रेष्काण में हों तो वे वहां पर घाव या व्रण पैदा करते हैं। यदि उसी द्रेष्काण में शुभ ग्रह भी हों तो वे वहां पर धब्बा, निशान, तिल या मस्सा पैदा करते हैं। वराहमिहिर अपने 'बृहज्जातक' में कहते हैं: यदि कोई ग्रह घाव, व्रण या मस्सा दे सकता है तो उसके अपने भाव में या शनि से युक्त होने पर वह घाव, व्रण या मस्सा जन्म से ही होता है; अन्यथा यह बाद में होता है। यदि पाप प्रभाव पैदा करने वाला ग्रह चन्द्रमा हो तो घाव किसी जानवर के सींगों से या किसी (उत्तेजित करने वाले) द्रव से हो सकता है; यदि यह ग्रह मंगल हो तो अग्नि, शस्त्र, विष या सर्पदंश से घाव होता है; यदि वही ग्रह बुध हो तो ऊंचाई से गिरने के कारण चोट लगती है; सूर्य से चतुष्पद जानवर अथवा लकड़ी के टुकड़े से घाव होता है; यदि इसका कारण शनि है तो पत्थर या किसी वायु रोग से घाव होता है। यदि बली चन्द्रमा, अपीड़ित बुध, गुरु या शुक्र किसी द्रेष्काण में हों तो उस द्रेष्काण द्वारा प्रदर्शित शारीरिक अंग पर कोई घाव या निशान नहीं होता।

नक्षत्र तथा शरीर के अंग

जिस प्रकार शरीर के विभिन्न अंग भचक्र की बारह राशियों से प्रदर्शित होते हैं उसी प्रकार वे सत्ताईस नक्षत्रों से भी प्रदर्शित होते हैं। यद्यपि अधिकार क्षेत्र वाले नक्षत्रों का क्रम, राशियों के क्रम की भांति, यथाक्रम नहीं है। इस विषय पर सर्वोत्तम वर्णन पुनः 'वामन पुराण' में संवाद के रूप में भगवान विष्णु के शरीर को लेकर है।

वामनपुराण के अनुसार ऋषि नारद, ऋषि पुलस्त्य से 'लक्ष्मीपति वासुदेव' (भगवान विष्णु) के नक्षत्र शरीर का वर्णन करने का आग्रह करते हैं। ऋषि पुलस्त्य ने ऋषि नारद को इस प्रकार कृतार्थ किया।

भगवान विष्णु का नक्षत्र शरीर

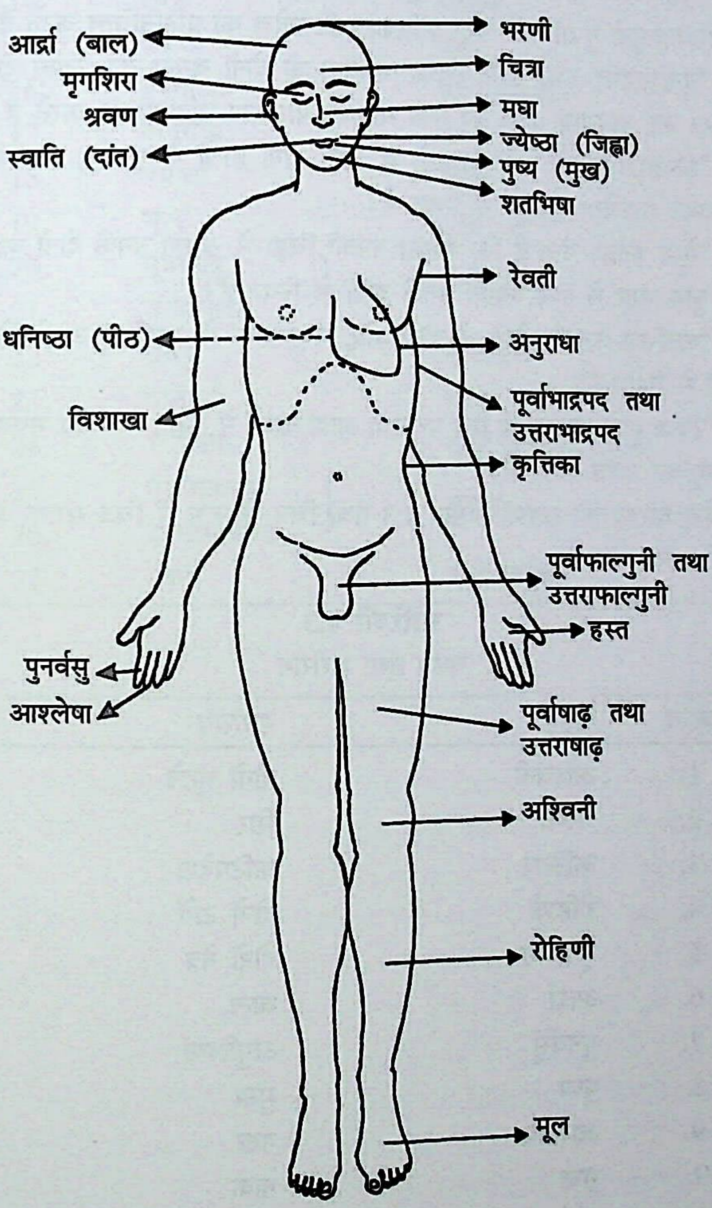

चित्र 4.1

"मूल नक्षत्र विष्णु जी के दोनों पैरों का, रोहिणीं दोनों टांगों का तथा अश्विनी दोनों घुटनों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

"पूर्वाषाढ़ तथा उत्तराषाढ़ विष्णु जी की दोनों जांघों का, पूर्वाफाल्गुनी तथा उत्तराफाल्गुनी गुप्तांग का तथा कृत्तिका कटि प्रदेश का प्रतिनिधित्व करते हैं।

"पूर्वाभाद्रपद तथा उत्तराभाद्रपद भगवान के दोनों बगल का, रेवती दोनों कांख का, अनुराधा हृदय का तथा धनिष्ठा पीठ का प्रतिनिधित्व करते हैं।

"विशाखा उनके दोनों बाजुओं में, हस्त दोनों हाथों में पुनर्वसु अंगुलियों में तथा आश्लेषा नाखूनों में स्थित हैं।

"ऐसा बताया गया है कि ज्येष्ठा उनकी जिह्वा में, श्रवण उनके दोनों कानों में, पुष्य मुख में तथा स्वाति उनके दांतों में स्थित हैं।

"शतभिषा उनकी ठोढ़ी के दोनों ओर, मघा नाक में, मृगशिरा उनके दोनों नेत्रों में स्थित हैं।

"चित्रा माथे पर, भरणी सिर पर तथा आर्द्रा बालों में स्थित हैं। यही भगवान विष्णु का नक्षत्र शरीर है।"

इस धारणा को सारणी संख्या 4.3 तथा चित्र के रूप में चित्र संख्या 4.1 में दिखाया गया है।

सारिणी 4.3

नक्षत्र तथा शरीरांग

क्र. सं.	*नक्षत्र*	*शरीरांग*
1.	अश्विनी	दोनों घुटने
2.	भरणी	सिर
3.	कृत्तिका	कटिप्रदेश
4.	रोहिणी	दोनों टांगें
5.	मृगशिरा	दोनों नेत्र
6.	आर्द्रा	बाल
7.	पुनर्वसु	अंगुलियां
8.	पुष्य	मुख
9.	आश्लेषा	नख
10.	मघा	नाक
11.	पूर्वाफाल्गुनी	गुप्तांग
12.	उत्तराफाल्गुनी	गुप्तांग

क्र. सं.	नक्षत्र	शरीरांग
13.	हस्त	दोनों हाथ
14.	चित्रा	मस्तक
15.	स्वाती	दांत
16.	विशाखा	दोनों भुजाएं
17.	अनुराधा	हृदय, वक्षस्थल
18.	ज्येष्ठा	जिह्वा
19.	मूल	दोनों पैर
20.	पूर्वाषाढ़	दोनों जांघें
21.	उत्तराषाढ़	
22.	श्रवण	दोनों कान
23.	धनिष्ठा	पीठ
24.	शतभिषा	ठोढ़ी के दोनों पार्श्व
25.	पूर्वाभाद्रपद	बगल
26.	उत्तराभाद्रपद	
27.	रेवती	दोनों कांख

पंचम अध्याय

ग्रहों के कारकत्व

विसर्गादानविक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा।
धारयन्ति जगद्देहं कफपित्तानिलास्तथा।।

जैसे ब्रह्माण्ड को चन्द्र तथा सूर्य एवं वायु ने त्याग, आकर्षण तथा परिभ्रमण की अपनी प्रक्रियाओं से जीवन्त रखा हुआ है, वैसे ही कफ, पित्त, वात ने शरीर को भी धारण किया हुआ है।

–धन्वन्तरि

जैसे भचक्र की भिन्न-भिन्न राशियों तथा नक्षत्रों का अधिकार क्षेत्र शरीर के विभिन्न अंगों पर होता है ठीक उसी प्रकार भिन्न-भिन्न ग्रह भी शरीर के विभिन्न अंगों से संबंधित होते हैं। इसके अतिरिक्त वे कुछ रोगों को अपनी स्वाभाविक प्रकृति के अनुसार इंगित करते हैं। अतः भावों, राशियों, नक्षत्रों तथा ग्रहों एवं विशिष्ट समय पर चल रही दशाओं के व्यापक विचार के बाद शरीर पर रोग का स्थान एवं प्रकृति, निदान तथा रोग का संभावित समय एवं परिणाम ज्ञात करना संभव हो जाता है।

चिकित्सा-ज्योतिष में विभिन्न ग्रहों के कारकत्व यहां पर संक्षिप्त रूप से दिए गए हैं। कारकत्व की यह सूची किसी भी प्रकार से पूर्ण नहीं कही जा सकती। तथा कुछ ऐसे क्षेत्र भी हैं जहां पर हमारा ज्ञान नगण्य है। कहीं से तो शुरुआत करनी ही होगी और उचित रीति से यहां पर की भी गई है। यहां पर ग्रहों के जो कारकत्व दिए गए हैं वे मुख्यतः दो शास्त्रीय ग्रन्थों पर आधारित हैं : मंत्रेश्वर द्वारा फलित ज्योतिष पर लिखी गई पुस्तक "फलदीपिका" और केरल का प्रसिद्ध ग्रन्थ "प्रश्नमार्ग" (जो प्राथमिक रूप से प्रश्न शास्त्र के लिए है परन्तु इसके नियमों का जातक-शास्त्र में भी व्यापक उपयोग है)।

सूर्य

इसकी पित्त प्रकृति है। इसका बलाबल किसी व्यक्ति के सामान्य स्वास्थ्य को प्रतिबिम्बित करता है। इनका अधिकार क्षेत्र हृदय, पेट, अस्थि तथा दाहिनी आंख है। चिकित्सीय क्षेत्र में सूर्य के अधिकार क्षेत्र में सिरदर्द, गंजापन, अति चिड़चिड़ापन, ज्वर, दर्द, जलना, पित्त की सूजन से होने वाले रोग (जैसे यकृत तथा पित्त की थैली के कुछ रोग), हृदय रोग, नेत्र रोग, पेट की बीमारियां, अस्थि रोग, कुछ त्वचा रोग, गिरने से तथा शस्त्र से चोट, विषपान, रक्त संचार में गड़बड़ी, मिरगी, कुष्ठ रोग, और चौपायों, चोरों तथा सरीसृपों से भय आदि हैं।

चन्द्रमा

इसकी मुख्य प्रकृति कफ है परन्तु इसमें कुछ तत्त्व वात का भी है। इसका बलाबल किसी व्यक्ति के मन की स्थिरता तथा पुष्टता को प्रतिबिम्बित करता है। मन के प्रतिनिधित्व के अतिरिक्त इसका अधिकार क्षेत्र शरीर में बहने वाले द्रव, रक्त तथा बायी आंख है। यह मानसिक रोग संबंधी समस्याएं, मानसिक विचलन, भावात्मक अशान्ति, घबड़ाना, अतिनिद्रा तथा सामान्य जड़ता का प्रतिनिधित्व करता है।

कफ संबधी रोग, क्षय रोग, पार्श्व शूल (फुप्फुस के आवरण में शोथ), जलोदर रोग, अजीर्ण, अतिसार, रक्ताल्पता, शरीर में तरल पदार्थों का इकट्ठा होना, रक्त विषाक्तता, कंप ज्वर, ज्वर पूर्व कंपकंपी, कुछ त्वचा रोग, कामला (पीलिया), जल तथा जलीय जन्तुओं से भय, पशुओं के सींगों से होने वाले घाव, इत्यादि का प्रतिनिधित्व चन्द्रमा करते हैं। चन्द्रमा तथा मंगल मिलकर स्त्रियों के माहवारी चक्र को नियंत्रित करते हैं। स्त्रियों की माहवारी में गड़बड़ी तथा स्त्रियों की प्रजनन प्रणाली के रोग चन्द्रमा के कारण होते है। स्त्रियों के स्तनरोग तथा दूध के बहाव का पता भी चन्द्रमा से लगाया जाता है।

मंगल

मंगल की पित्त प्रकृति है। यह आक्रामक तथा ऊर्जावान हैं। कुण्डली में मंगल की स्थिति जातक के स्वास्थ्य, तेज एवं चेतना की प्रबलता को प्रतिबिम्बित करती है। इसका अधिकार क्षेत्र है: सिर, अस्थि मज्जा, पित्त, हीमोग्लोबिन (रक्त में लाल कणिकाएं), कोशिकाएं, एण्डोमीट्रियम (गर्भाशय की अन्तःदीवार) अर्थात् वह उर्वरा स्थान जहां "बीज" प्रत्यारोपण से शिशु बनता है। मंगल दुर्घटना, चोट, शल्य क्रिया, जल जाना (सूर्य के प्रभाव में विशेष रूप से),

रक्त विकार, तन्तुओं की फटन, उच्च रक्त चाप, पित्त-जन्य सूजन तथा उसके कारण होने वाला ज्वर, पित्ताशय की पथरी, शस्त्र से चोट, विषाक्तता, ऊष्मा के कारण होने वाले रोग, अत्यधिक प्यास, फफोले सहित बुखार, मानसिक विचलन (विशेष रूप से आक्रामक प्रकार का), नेत्र तथा प्लीहा (तिल्ली) विकार, मिरगी, त्वचा पर खुजली, हड्डी टूटना, अर्श (बवासीर), गर्भाशय के रोग, प्रसव तथा गर्भपात का कारक है। सिर में चोट, लड़ाई में चोट तथा गर्दन से ऊपर के रोग भी मंगल इंगित करता हैं।

बुध

बुध के स्वभाव में तीनों प्रकार की प्रवृत्ति है वात, पित्त, कफ। बुध का संबंध जातक की बुद्धि से है। कुण्डली में इनकी स्थिति तर्क तथा विवेक के सामर्थ्य को इंगित करती है। प्रतिकूल बुध, पापी चन्द्रमा के साथ मिलकर किसी की विचारधारा को व्यग्र कर सकता है। तथा किसी मानसिक विचलन का कारण भी बन सकता है। इसका अधिकार क्षेत्र त्वचा, गला, नाक, फेफड़ा तथा अग्रमस्तिष्क पर (शरीर की उच्च क्रियाओं से संबंधित) है। यह मानसिक विचलन, धैर्यहीनता, मानसिक अस्थिरता, मानसिक जटिलता, अभद्र भाषा, दोषपूर्ण वाणी, कटु स्वभाव, चक्कर आना, त्वचा रोग, श्वेत कुष्ठ, नपुंसकता, कुछ नेत्र रोग, नाक-कान-गले का रोग, बहरापन, अचानक गिरना तथा दुःस्वप्न को इंगित करता है।

गुरु

गुरु की कफ प्रकृति है। अत्यधिक शुभ ग्रह होने के कारण यह जातक को रोग से बचाता है तथा कुण्डली में अनेक पाप प्रभावों को नष्ट करता है। इसका अधिकार क्षेत्र यकृत, पित्त की थैली, तिल्ली, अग्न्याश्य का कुछ भाग, कान तथा शरीर में चर्बी पर है। गुरु, यकृत विकार, पित्त की थैली के रोग, तिल्ली के रोग, मोटापा, रक्ताल्पता, ज्वर, मूर्छा, कर्ण रोग, मधुमेह इत्यादि को इंगित करता है। मन्दगामी ग्रह होने के कारण इसके द्वारा होने वाले रोग प्रायः दीर्घकालिक होते हैं। गुरु आलस्य का भी कारक है।

शुक्र

शुक्र में वात तथा कफ की अधिकता होती है। यह किसी व्यक्ति की यौन क्रियाओं को नियंत्रित करता है। यदि अधिक पीड़ित हो तथा अशुभ स्थान में हो तो विकार तथा मैथुन संबंधी रोग होते हैं। इसका अधिकार क्षेत्र चेहरा,

दृष्टि, वीर्य, जननांग, मूत्र प्रणाली, अश्रुगन्थि इत्यादि पर है। यह आन्त्र, आन्त्रपुच्छ तथा अग्न्याशय के कुछ भाग का भी कारक है।

यह एक जलीय ग्रह है और इसका संबंध शरीर की हारमोनल प्रणाली (hormonal system) से है। शुक्र यौन विकार, जननांग के रोग तथा मूत्र प्रणाली, चेहरे के रोग, नेत्र रोग, मोतिया बिन्द, अश्रुगन्थि के रोग, श्वेत कुष्ठ रोग, मैथुन जनित रोग, मधुमेह, जहरबाद, मूत्र मार्ग का संकुचित होना, गुर्दे तथा मूत्र थैली में पथरी, आलस्य, थकान तथा निस्तेज होना, मोतीझरा, आन्त्रपुच्छ विकार (अपैन्डिसाइटिस) एवं 'हारमोन' (hormone) संबंधी विकारों को इंगित करता है।

शनि

शनि की मुख्यतः वात तथा कुछ कफ प्रकृति है। यह बहुत धीरे चलने वाला ग्रह है और इस कारण इससे होने वाले रोग असाध्य या दीर्घ कालिक होते हैं। शनि का अधिकार क्षेत्र टांगे, पैर, नाड़ी, बड़ी आंत का अन्तिम भाग, लसिका (Lymph) वाहिनी तथा गुदा है। यह दीर्घकालिकता, असाध्यता, उन्माद, पक्षाघात, पागलपन, गिल्टी संबंधी रोग, फीलपांव, कैंसर (कर्कट रोग), अदृष्ट खतरे, अति परिश्रम, थकान, टांग तथा पैर के रोग व चोट, अवसाद तथा खिन्नता के कारण मानसिक अव्यवस्था, पेट के रोग, पेड़ के गिरने तथा पत्थर से चोट आदि को इंगित करता है।

राहु

कार्य को मन्दगति से करना, फूहड़पन, हिचकी, उन्माद, अदृष्ट भय, कुष्ठ, शक्तिहीनता, अर्शरोग, दीर्घकालिक व्रण तथा छाले, असाध्य रोग, विषाक्तता, सर्प दंश, तथा पैरों के रोग को राहु इंगित करता है। चन्द्रमा के साथ मिलकर राहु विभिन्न प्रकार के भय देता है। शनि के सदृश होने के कारण यह रोगों की दीर्घकालिकता तथा असाध्यता का भी द्योतक है।

केतु

राहु के द्वारा इंगित सभी रोग केतु से भी लेने चाहिए। इसके अतिरिक्त इससे होने वाले रोग हैं- अनिश्चित कारण वाले, महामारी, छाले युक्त ज्वर, जहरीले संक्रमण से होने वाले संक्रामक रोग, आन्त्रकृमि, बहरापन, दोषपूर्ण वाणी, रोग निदान में त्रुटि। मंगल के सदृश होने के कारण केतु शल्यक्रिया को भी इंगित करता है।

षष्ठ अध्याय

बालारिष्ट योग

मनोदेहसमुत्थाभ्यां दुःखाभ्यामर्दितं जगत्।

जगत् के सभी प्राणियों को शारीरिक और मानसिक कष्ट होते हैं।

– महाभारत, आरण्यपर्व,
अ. 2 श्लोक 21

अरिष्ट का शाब्दिक अर्थ किसी भी प्रकार का दुःख, कष्ट या दुर्भाग्य होता है। ज्योतिष शास्त्र में बालारिष्ट योग उन ग्रह योगों का संकेत करते हैं जो नवजात शिशु को होने वाले कष्ट को सूचित करते हैं। नवजात शिशु के कष्ट या पीड़ा प्रायः शारीरिक ही होते हैं। अतः यह केवल शारीरिक अभिव्यक्ति द्वारा ही संकेतित होने के कारण स्वास्थ्य की दुर्बलता और कदाचित् शीघ्र मृत्यु के रूप में ही परिणत होते हैं।

बालारिष्ट अनिवार्यतः मृत्युपरक नहीं

ज्योतिषशास्त्र की लगभग सभी पुस्तकों में बालपन में कष्ट के योग दिए गए हैं। वहां इस उद्देश्य से बहुत से योगों का वर्णन मिलता है। शास्त्रों की भाषा का शब्दार्थ बहुत कठोर प्रतीत होता है। वास्तव में वहां बालारिष्ट योगों का अधिकतम सम्भाव्य अशुभ अर्थ प्रकट करने के लिए ही 'मृत्यु' शब्द का प्रयोग किया है। वहां तो खराब स्वास्थ्य, आरोग्य प्राप्ति में कठिनता, विकार की असाध्यता और अन्ततोगत्वा मृत्यु अर्थ को क्रमशः अभिव्यक्त करने का प्रयास ही किया गया है। बालारिष्ट योग में मृत्यु तभी होती है जब पाप ग्रहों का प्रभाव अत्यधिक हो। अतः शास्त्रों में दिए गए विभिन्न नियमों का शाब्दिक अर्थ नहीं लगाना चाहिएए उनका भाव समझना चाहिए।

बालपन में मृत्यु

वैदिक ज्योतिष का अस्तित्व जन्म तथा पुनर्जन्म के चक्र पर पूर्णतः आधारित है। वैदिक ज्योतिष के अनुसार कुछ भी केवल अकस्मात् ही घटित नहीं होता वरन् प्रत्येक के पीछे कारण अवश्य होता है। कर्म का सिद्धान्त है कि व्यक्ति की शारीरिक तथा मानसिक क्रियाएं उसके प्रारब्ध का निर्माण करती हैं। किसी बच्चे की जन्मपत्रिका और कुछ नहीं वरन् पूर्व जन्म में किए गए कर्मों के परिणाम का लेखा-जोखा है जो इस जन्म में कष्ट या आनन्द के रूप में भोगना है। इस प्रकार बालारिष्ट या बच्चे को कष्ट की जड़ें पिछले जन्मों में तथा उन जन्मों के कर्मों में होती हैं।

वैदिक ज्योतिष में अन्तःसम्बद्ध प्रारब्ध की भी धारणा है। जन्म के समय किसी को भी स्वेच्छा से माता-पिता, सहोदर, सामाजिक या आर्थिक वातावरण चुनने की छूट नहीं होती। व्यक्ति जो कुछ पाता है वह अपने कर्मों के कारण उसके योग्य होता है। अभागेपन पर सर्वशक्तिमान ईश्वर या प्रकृति को दोष देने का कोई औचित्य नहीं है। जैसे किसी घोल में एक ही प्रकार के घनत्व वाले कण, अपकेन्द्र बल लगाने से एक ही मंडल में आ जाते है, उसी प्रकार संबंधित प्रारब्ध वाले जन्तु एक दूसरे के समीप आ जाते हैं। ऐसा कहा गया है कि जब पिता के तीन पुत्रों की परस्पर राहु दशा चल रही हो तो यह समय पिता के लिए अशुभ (या मृत्यु समय) होता है। ऐसा यह बताने के लिए कहा गया है कि व्यक्ति तथा उसके निकट संबंधियों का प्रारब्ध परस्पर गुंथा होता है।

पूर्व जन्म या वर्तमान के बुरे कर्म या पापकर्म के कारण प्रतिकूल परिणाम घटित होते हैं। ऐसा बताया गया है कि नवजात को उसकी जन्मपत्री में प्रत्यक्ष कारण के बिना भी कष्ट या मृत्यु हो सकती हैं। शिशु 12 वर्ष की आयु तक इस प्रकार कष्ट पा सकता है:

(i) पहले 4 वर्षों में माता के पाप कर्मों के कारण

(ii) 4 से 8 वर्षों में पिता के पाप कर्मों के कारण

(iii) 8 से 12 वर्ष तक की आयु में स्वयं अपने पूर्व जन्मों के पाप कर्मों के कारण।

जब तक शिशु बारह वर्ष का न हो जाए तब तक उसकी जन्मपत्रिका का आयु विचार की दृष्टि से विश्लेषण न करने का समर्थन ऋषियों ने किया है। यद्यपि वे इस बात का भी समर्थन करते हैं कि शिशु की जन्मपत्री को इस दृष्टिकोण से देखा जाए कि यदि बालारिष्ट योग की उपस्थिति सुनिश्चित

हो जाए तो प्रतिकूल ग्रहों का उचित उपचार जैसे ग्रह शान्ति, ठीक समय पर की जा सके।

ज्योतिषीय नियम

1. *चन्द्र की भूमिका* : सभी ग्रन्थ एकमत हैं कि चन्द्र का बली या निर्बल होना तथा उसके पीड़ित या अपीड़ित होने का नवजात के स्वास्थ्य से संबंध है। बालारिष्ट के अधिकांश शास्त्रीय योग वास्तव में चन्द्र के विभिन्न प्रकार से पीड़ित होने को बालपन में मृत्यु का प्रबल कारण मानते हैं।
2. *लग्न तथा लग्नेश*: यह सुनिश्चित है कि दुर्बल लग्नेश एवं लग्न और लग्नेश पर पाप प्रभाव कुण्डली में विभिन्न प्रकार की पीड़ाओं को उत्पन्न करते हैं। यहां तक कि यदि लग्न या लग्नेश पीड़ित तथा दुर्बल हों तो साधारण पाप प्रभाव भी अर्थपूर्ण महत्त्व का हो जाता है।
3. *अष्टम भाव तथा अष्टमेश*: जन्मपत्री का अष्टम भाव आयु का सूचक होता है। अष्टम भाव तथा अष्टमेश पर शुभ प्रभाव नवजात को बचाने को तत्पर होते हैं। अष्टम भाव में पाप ग्रह अच्छे नहीं हैं यद्यपि शनि एक अपवाद है। शनि की अष्टम भाव में स्थिति सामान्यतः लम्बी आयु को सुनिश्चित करती है।
4. *केन्द्र में पाप ग्रह*: कुण्डली के चार केन्द्र (1, 4, 7, 10वां भाव) किसी घर के चार स्तम्भों की तरह होते हैं। इन भावों में पाप प्रभाव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। इन भावों में शुभ प्रभाव सामान्यतः जातक की कष्ट से रक्षा करता है। यद्यपि यह बाद में देखा जाएगा कि शुभ ग्रह यदि वक्री हों तो किसी प्रकार से सुरक्षा प्रदान नहीं करते बल्कि खराब स्वास्थ्य का कारण बनते हैं।
5. *दशा क्रम*: बालारिष्ट के शास्त्रीय योग कष्ट के होने के वास्तविक समय के विषय में अधिक स्पष्ट हैं। यद्यपि हम देखेंगे कि प्रायः प्रतिकूल दशा ही बुरा स्वास्थ्य या मृत्यु देती है।
6. *अशुभ गोचर*: कष्ट का समय, जन्मकुण्डली के संवेदनशील बिन्दुओं जैसे लग्न, लग्नेश, चन्द्र आदि पर से अशुभ गोचर से भी सम्बद्ध हो जाता है।

बालारिष्ट के शास्त्रीय योग

यह पहले ही निर्दिष्ट किया जा चुका है कि अरिष्ट के बहुत से योग ज्योतिष के ग्रन्थों में बताए गए हैं। उनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण योग पाराशर,

वराहमिहिर तथा सामान्यतः अनुपलब्ध श्री रणबीर ज्योतिर्महानिबन्ध से लिए गए हैं। पाठकों को पुनः सचेत किया जाता है कि इन योगों में मृत्यु का अर्थ अनिवार्य रूप से कष्ट या रोग ही ग्रहण करना चाहिए। इन योगों की मूल भाषा को बरकरार रखा गया है।

1. चन्द्र छठे, आठवें या बारहवें भाव में पाप ग्रहों से दृष्ट हो तो जन्म के बाद शीघ्र ही मृत्यु होती है।

   नोट: (i) जब इस चन्द्र को केवल शुभ ग्रह देखते हों तो आठ वर्ष की आयु में मृत्यु होती है।

   (ii) पाप ग्रहों तथा शुभ ग्रहों की सम्मिलित दृष्टि हो तो चार वर्ष तक की आयु में मृत्यु होती है।

   (iii) यदि चन्द्र उक्त भावों में अदृष्ट हो तो कष्ट नहीं होता है।

2. छठे, आठवें या बारहवें भाव में पाप दृष्ट वक्री शुभ ग्रह एक महीने के अन्दर मृत्यु प्रदान करते हैं।

   नोट: (अ) छठे या आठवें भाव में शुभ ग्रह अगर वक्री पाप ग्रह से दृष्ट हों तथा शुभ ग्रहों से अदृष्ट हों तो जन्म से एक माह के अन्दर मृत्यु देते हैं।

   (ब) लग्न किसी शुभ ग्रह से दृष्ट न हो तो जन्म से एक माह के अन्दर ही मृत्यु हो जाती है। यह एक बहुत ही साधारण योग है।

3. सूर्योदय या सूर्यास्त के समय, चन्द्र की होरा में या गण्डान्त (कर्क, वृश्चिक या मीन के अन्त में अथवा मेष, सिंह या धनु के प्रारम्भ में) जन्म हो और केन्द्रों में पाप ग्रह तथा चन्द्र हों, तो नवजात की मृत्यु की सूचना देते हैं।

   नोट: सायंकाल में, चन्द्र की होरा में जन्म हो और पाप ग्रह राश्यन्त (किसी राशि में 29 अंश या अधिक) में चन्द्र के साथ किसी केन्द्र में हों तो जन्म के बाद शीघ्र ही मृत्यु होती है।

4. लग्नेश किसी पाप ग्रह से ग्रह युद्ध में पराजित होकर सप्तम भाव में हो तो जन्म से एक माह के अन्दर मृत्यु होती है। सूर्य तथा चन्द्र को छोड़कर, कोई दो ग्रह यदि एक अंश के अन्दर स्थित हों तो ग्रह युद्ध समझा जाता है। दोनों में से अंशों में आगे गया ग्रह पराजित समझा जाता है।

5. चन्द्र तथा सभी पाप ग्रहों का केन्द्र में होना नवजात के लिए मृत्युकारक होता है।

नोट: (i) लग्न में दुर्बल चन्द्र तथा पाप ग्रह केन्द्र और अष्टम भाव में हों तो जन्म के बाद शीघ्र मृत्यु देते हैं।

(ii) पाप युक्त चन्द्र, शुभ ग्रहों से अदृष्ट होकर लग्न, सातवें, आठवें या बारहवें भाव में हो तो शीघ्र मृत्यु होती है।

(iii) दुर्बल चन्द्र, मेष, वृष तथा कर्क राशि के अतिरिक्त अन्य राशि में लग्न में हो तथा पाप दृष्ट हो, तो जन्म के बाद शीघ्र ही मृत्यु होती है।

6. कर्क या वृश्चिक लग्न हो तथा सभी पाप ग्रह भचक्र के पूर्वार्ध में (10 भाव से 4 भाव तक) हों तथा सभी शुभ ग्रह पश्चिमार्ध (4 भाव से 10 भाव तक) में हों तो जातक आयुरहित होता है।

नोट: इसे वज्रमुष्टि योग भी कहते है।

7. चन्द्र चौथे, सातवें या आठवें या लग्न में, पाप मध्यत्व में, शुभ ग्रहों से अदृष्ट हो तो शीघ्र मृत्यु होती है।

नोट: (अ) लग्न दो पाप ग्रहों के मध्यत्व में हो तथा पाप ग्रह 12, 6, 8 या 2 भाव में हों तो शीघ्र मृत्यु निश्चित है। अर्थात उदय लग्न के दोनों ओर तथा अस्तलग्न के दोनों ओर पाप ग्रह आयु की दृष्टि से बुरे हैं।

(ब) लग्न से दूसरे तथा बारहवें भाव में पाप ग्रह या लग्न से छठे–आठवें भाव में पाप ग्रह, शुभ ग्रहों से अदृष्ट हों तो छठे या आठवें माह में मृत्यु होती है।

8. लग्न में चन्द्र तथा सप्तम में पाप ग्रह शीघ्र मृत्यु देते हैं।

9. वक्री शनि मेष या वृश्चिक राशि में छठे, या आठवें या केन्द्र में हो तथा बली मंगल द्वारा दृष्ट हो तो जातक 2 वर्ष तक जीता है।

10. लग्न में चन्द्र, बारहवें भाव में शनि, नवें भाव में सूर्य और मंगल आठवें भाव में हो तथा गुरु शक्तिहीन हो तो जन्म के बाद शीघ्र मृत्यु होती है।

11. मंगल, शनि तथा सूर्य इकट्ठे छठे या आठवें भाव में हों तो यदि यम भी रक्षक हो तो भी एक माह के अन्दर निश्चित मृत्यु होती है।

12. यदि छठे या आठवें भाव में पाप ग्रह, अन्य पाप ग्रह से दृष्ट हों तो एक वर्ष के अन्दर मृत्यु होती है चाहे जातक ने अमृतपान ही क्यों न किया हो।

नोटः पूर्वोक्त योगों सहित इस योग का शब्दशः अर्थ ग्रहण नहीं करना चाहिए।

13. कर्क या सिंह राशि में शुक्र, छठे या बारहवें भाव में पाप ग्रहों से दृष्ट हो तो छः वर्ष की आयु होती है।

14. बुध कर्क राशि में छठे या आठवें भाव में चन्द्र से दृष्ट हो तो चार वर्ष की आयु होती है।

15. राहु केन्द्र में पाप ग्रहों से दृष्ट हो तो 10 वर्ष तक या 16 वर्ष तक की आयु में मृत्यु होती है।

16. लग्न में कोई पाप द्रेष्काण उदित हो, पाप युक्त या पाप दृष्ट हो तथा अपने स्वामी से अदृष्ट हो तो 7 वर्ष की आयु के अन्दर मृत्यु होती है।

    नोटः पाप द्रेष्काण इस प्रकार हैं :

    (अ) *सर्प द्रेष्काणः* कर्क का दूसरा तथा तीसरा, वृश्चिक का पहला तथा दूसरा, मीन का अन्तिम द्रेष्काण।

    (ब) *पाश द्रेष्काणः* वृष, सिंह तथा कुंभ का पहला, तुला का दूसरा व तीसरा, मकर का पहला व अन्तिम द्रेष्काण।

17. सूर्य या चन्द्र ग्रहण के समय जन्म हो (राहु-केतु अक्ष पर सूर्य व चन्द्र हों), तथा लग्न मंगल व शनि से दृष्ट हो तो जातक की एक पक्ष में मृत्यु होती है।

18. सभी ग्रह निर्बल हों तथा आपोक्लिम स्थानों में हों तो छः या दो माह में मृत्यु होती है।

19. क्षीण चन्द्र लग्न से बारहवें भाव में हो, सभी पाप ग्रह लग्न और आठवें भाव में हों, केन्द्र में शुभ ग्रह न हों तो जन्म के बाद शीघ्र मृत्यु होती है।

20 सूर्य, मंगल तथा शनि लग्न में हों तथा दुर्बल चन्द्र छठे या सातवें भाव में गुरु से दृष्ट हो तो 7 वर्ष में मृत्यु होती है।

21. पापी लग्नेश चन्द्र के नवांश में, चन्द्र से द्वादश भाव में, पाप ग्रहों से दृष्ट हो तो 9 वर्ष में मृत्यु होती है।

22. कुण्डली के दृश्यार्ध में शुभ ग्रह तथा अदृश्यार्ध में पापग्रह हों तथा राहु लग्न में हों तो 5 वर्ष में मृत्यु होती है।

    नोटः पीछे संख्या 6 में वज्रमुष्टि योग भी देखें।

23. सप्तम भाव में राहु, सूर्य तथा चन्द्र से दृष्ट और शुभ ग्रहों से अदृष्ट हो तो 12 वर्ष में मृत्यु होती है।

माता को कष्ट

1. शनि दशम भाव में, चन्द्र छठे भाव में और मंगल सातवें भाव में हो तो यह नवजात का अपनी माता के साथ मृत्यु का योग है।
2. लग्न में चन्द्र पाप मध्य में हो, पाप ग्रह सप्तम या अष्टम भाव में हों तो जातक की अपनी माता के साथ मृत्यु होती है।
3. चन्द्र तीन पाप ग्रहों से दृष्ट हो तो माता की मृत्यु का सूचक होता है।
4. चन्द्र किसी पाप ग्रह से सप्तम या अष्टम भाव में पाप ग्रह से युक्त तथा बली पाप ग्रह से दृष्ट हो तो माता की मृत्यु होती है।
5. उच्च या नीच राशि में सूर्य सप्तम भाव में हो तो नवजात माता के दूध से वंचित होकर बकरी के दूध पर जीता है।
6. लग्न, दूसरे, बारहवें तथा सातवें भाव में पाप ग्रह जातक के परिवार का नाश करते हैं।
7. दुर्बल चन्द्र से पांचवें या नवें स्थान में पाप ग्रह हों तो जातक के जन्म से छः माह के अन्दर माता की मृत्यु होती है।
8. ग्रहण काल में जन्म हो, लग्न में चन्द्र पाप युक्त हो तथा मंगल अष्टम भाव में हो तो जातक की माता के साथ शस्त्र से (अथवा शल्यक्रिया से) मृत्यु होती है।

पिता को कष्ट

1. शनि लग्न में हो, मंगल सातवें भाव में तथा चन्द्र छठे भाव में हो तो पिता की मृत्यु होती है।
2. गुरु लग्न में हो तथा सूर्य, शनि, मंगल और बुध दूसरे भाव में हों तो जातक के विवाह के समय पिता की मृत्यु होती है।
3. सूर्य पाप युक्त या पापकर्तरी योग में हो और पाप ग्रह सूर्य से सप्तम भाव में हों तो पिता की मृत्यु होती है।
4. दशम भाव में मंगल शत्रु राशि में हो तो पिता की मृत्यु का सूचक है।
5. सूर्य मंगल के नवांश में, शनि से दृष्ट हो तो जातक के जन्म से पूर्व उसका पिता घर छोड़ कर चला जाता है या उसकी मृत्यु हो जाती है।

6. राहु तथा गुरु लग्न में या चौथे या छठे भाव में हों तो जातक के 23वें वर्ष की आयु में पिता की मृत्यु होती है।
7. यदि सूर्य पाप युक्त या पाप दृष्ट या पापकर्तरी योग में हो तो जातक के पिता को कष्ट (अथवा मृत्यु!) होता है।
8. सूर्य से छठा तथा आठवां भाव पाप पीड़ित हो, तथा शुभ ग्रहों से अदृष्ट हो तो पिता को कष्ट होता है।

   नोट: जब इस प्रकार चन्द्र पीड़ित हो तो माता को कष्ट होता है।

अरिष्ट योगों के फलीभूत होने का समय

बालारिष्ट के बहुत से योगों में मृत्यु या कष्ट का समय निर्दिष्ट है। जहां पर यह निर्दिष्ट नहीं है वहां पर मृत्यु का समय इस प्रकार समझना चाहिए।

(i) पाप प्रभाव डालने वाले सबसे बली ग्रह पर जब गोचर का चन्द्र आए;

(ii) गोचर का चन्द्र जब जन्मकालिक चन्द्र पर से गुजरे;

(iii) लग्न पर चन्द्र का गोचर हो।

जब गोचर का चन्द्र स्वयं पीड़ित हो तो प्रतिकूल घटना घटित नहीं होती। ऋषि कहते हैं कि इन मामलों में मृत्यु एक वर्ष के अन्दर सम्भावित होती है।

बालारिष्ट: कुछ उदाहरण

कुण्डली संख्या 6.1

यह कुण्डली एक कन्या शिशु की है जिसकी मृत्यु उसके जन्म से आठ दिन

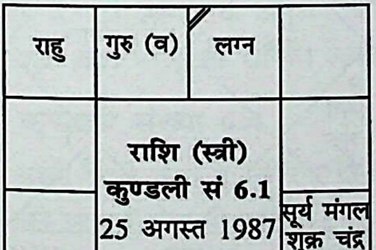

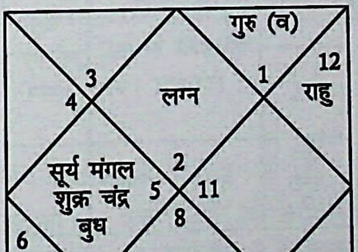

लग्न	19°13'	मंगल	07°33'	शुक्र	07°49'
सूर्य	07°23'	बुध	12°20'	शनि	20°53'
चन्द्र	10°26'	गुरु (व)	06°00'	राहु	08°53'

के अन्दर ही हो गई थी। चतुर्थ भाव में पांच ग्रह हैं जिसमें सूर्य, चन्द्र तथा लग्नेश शुक्र भी सम्मिलित हैं। सूर्य के अत्यधिक समीप होने के कारण सभी ग्रह अस्त हैं। लग्नेश शुक्र, सूर्य तथा मंगल के अंशों के बराबर है और मंगल के साथ ग्रह युद्ध में संलग्न है। यह प्रतिकूल योग चतुर्थ भाव में, शनि के द्वारा सप्तम भाव से तथा अष्टमेश वक्री गुरु से द्वादश भाव से दृष्ट है। अतः लग्नेश तथा चन्द्र पूर्ण रूप से नष्ट हैं।

कुण्डली संख्या 6.2

यहां केन्द्र में दो पाप ग्रह हैं। लग्नेश चतुर्थ भाव में दशम भाव स्थित वक्री मंगल से तथा द्वादश भाव स्थित वक्री अष्टमेश गुरु से दृष्ट है। चन्द्र पर कोई शुभ दृष्टि नहीं है। मंगल लग्न को भी देख रहा है। केन्द्र, लग्न तथा लग्नेश सभी अरक्षित है। इस शिशु को "टयूबरक्यूलस मेनिन्जाइटिस" हुआ और विंशोत्तरी दशा राहु-राहु-सूर्य तथा योगिनी दशा पिंगला-भद्रिका (सूर्य-बुध के अनुरूप) में मस्तिष्क से द्रव बाहर निकालने के लिए शल्यक्रिया (ventriculo-peritoneal shunt; वेन्ट्रीक्यूलो-पेरीटोनियल शंट) की आवश्यकता पड़ी। शल्यक्रिया के एक माह बाद 'मेनिन्जाइटिस' तथा 'शंट' में अवरोध के कारण इसकी मृत्यु हो गई। लग्नेश सूर्य पीड़ित है तथा वह विंशोत्तरी दशा एवं योगिनी दशा में अपनी भूमिका निभा रहा है।

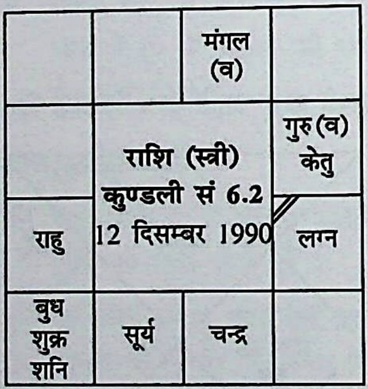

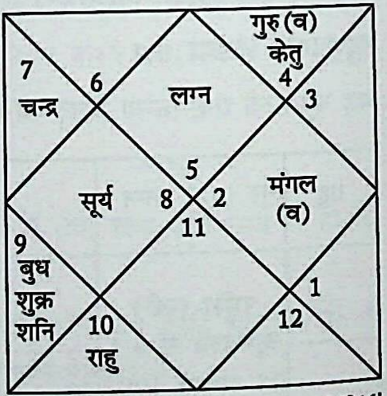

लग्न	00°59'	मंगल (व)	06°41'	शुक्र	06°46'
सूर्य	26°40'	बुध	15°52'	शनि	29°46'
चन्द्र	07°55'	गुरु (व)	19°36'	राहु	05°02'

कुण्डली संख्या 6.3

यह एक कन्या शिशु की कुण्डली है जिसके तालू में पूर्ण दरार थी। दूसरा भाव जो मुख के भीतरी भाग का प्रतिनिधित्व करता है वक्री पष्ठेश शनि के

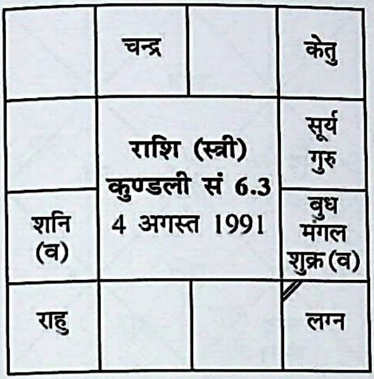

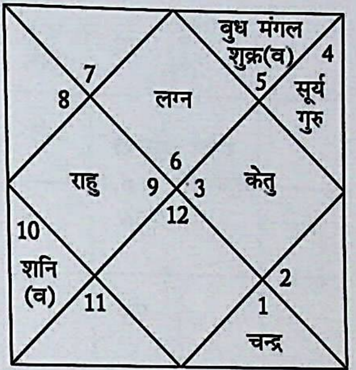

लग्न	21°12'	मंगल	18°28'	शुक्र (व)	13°26'
सूर्य	17°36'	बुध	11°34'	शनि (व)	09°09'
चन्द्र	27°04'	गुरु	27°46'	राहु	25°00'

द्वारा दृष्ट है जबकि द्वितीयेश शुक्र स्वयं वक्री होकर द्वादश भाव में लग्नेश बुध तथा अष्टमेश मंगल से युक्त है। चन्द्रमा की अष्टम भाव में स्थिति कुण्डली में बालारिष्ट योग की पुष्टि करती है। राहु-केतु अक्ष की चतुर्थ भाव में स्थिति तथा चतुर्थेश का सूर्य तथा वक्री शनि (षष्ठेश) से पीड़ित होना जन्म के समय माता को कष्ट का सूचक है। शल्यक्रिया द्वारा यह जन्म हुआ। जन्म के समय विंशोत्तरी दशा सूर्य-सूर्य-शनि थी। सूर्य द्वादशेश है तथा शनि षष्ठेश है। दोनों में परस्पर दृष्टि है। योगिनी दशा उल्का-उल्का (शनि-शनि के तुल्य) थी। विंशोत्तरी दशा सूर्य-मंगल-शुक्र में बच्ची की शोधक शल्य क्रिया अमेरिका में हुई। शुक्र यहां पर द्वितीयेश है, मंगल (शल्यक्रिया का द्योतक) से युक्त होकर द्वादश भाव (अस्पताल तथा विदेशी भूमि का सूचक) में है। इस समय के अनुरूप योगिनी दशा उल्का-सिद्धा (शनि-शुक्र) थी; शुक्र यहां भी मुख्य दायित्व अपने ऊपर ले रहा है।

कुण्डली संख्या 6.4

हमने पहले कहा है कि राहु केन्द्र में पाप दृष्ट हो तो 10 वर्ष या 16 वर्ष की आयु में मृत्यु हो जाती है। कुण्डली संख्या 6.4 एक लड़के की है जिसके दशम भाव में राहु है। पाप ग्रह मंगल तथा शनि इसे नहीं देखते हैं। परन्तु सूर्य इसे चौथे भाव से उतने ही अंशों पर होकर देख रहा है जितने अंशों पर स्वयं राहु है। (सूर्य तथा केतु 19 अंश पर संयुक्त हैं।) सूर्य अष्टमेश भी है। इस किशोर की मृत्यु ठीक सोलह वर्ष की आयु में हुई। चन्द्र छठे स्थान में मंगल के साथ बालारिष्ट का संकेत है।

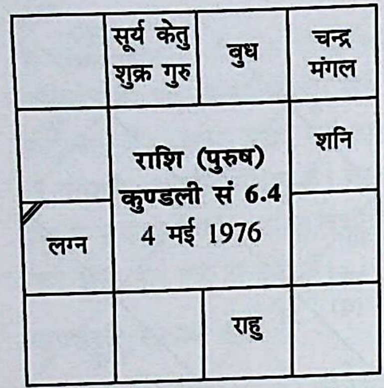

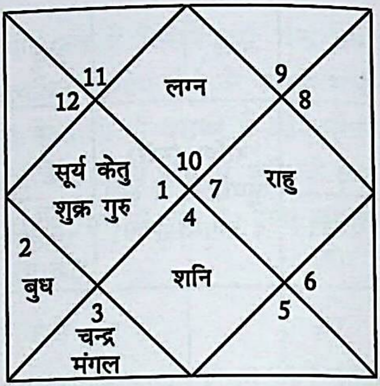

लग्न	21°20'	मंगल	29°31'	शुक्र	07°48'
सूर्य	19°58'	बुध	08°57'	शनि	03°43'
चन्द्र	09°04'	गुरु	15°34'	राहु	19°04'

'भावार्थ रत्नाकर' का एक नियम यह है कि जब द्वादशेश द्वितीयेश के साथ युक्त हो या द्वितीयेश से दृष्ट हो तो वह अपनी दशा में प्रबल मारक हो जाता है। जातक की मृत्यु गुरु-गुरु-शुक्र में हुई। गुरु द्वादशेश है तथा चतुर्थ भाव में, द्वितीयेश शनि से दृष्ट है। शुक्र भी शनि से दृष्ट है। योगिनी दशा उल्का-उल्का (शनि-शनि) थी। शनि द्वितीयेश है तथा मारक स्थान (सप्तम भाव) में है।

कुण्डली संख्या 6.5

यह बालारिष्ट का एक विशेष उदाहरण है। चन्द्र छठे स्थान में मंगल तथा राहु से युक्त है तथा पापी शनि से दृष्ट है। इस पर कोई शुभ दृष्टि नहीं है। लग्न दो पाप ग्रहों (शनि तथा सूर्य) तथा दो शुभ ग्रहों (गुरु तथा बुध) से दृष्ट

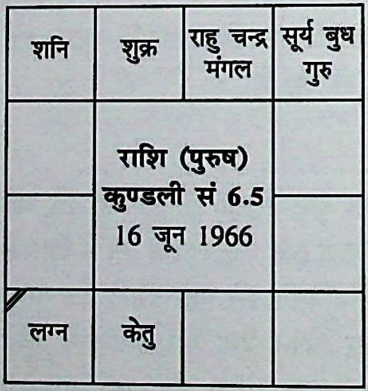

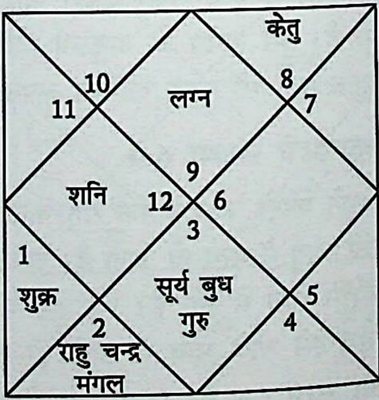

लग्न	22°36'	मंगल	19°46'	शुक्र	24°00'
सूर्य	01°36'	बुध	22°25'	शनि	05°47'
चन्द्र	03°14'	गुरु	15°26'	राहु	01°46'

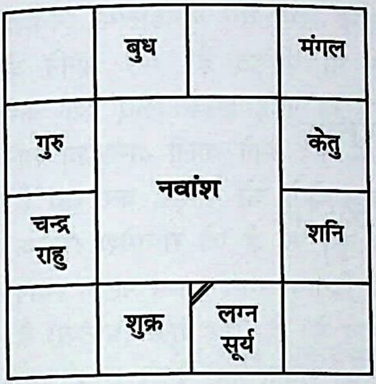

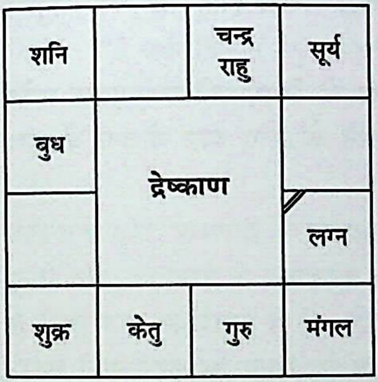

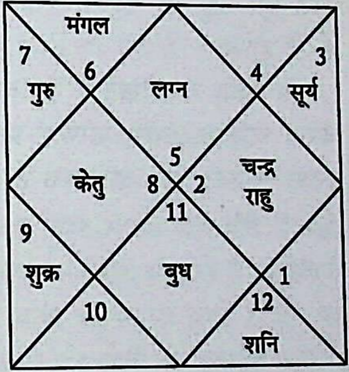

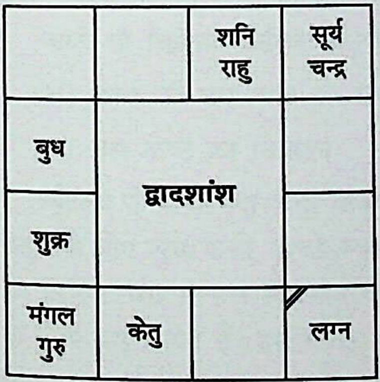

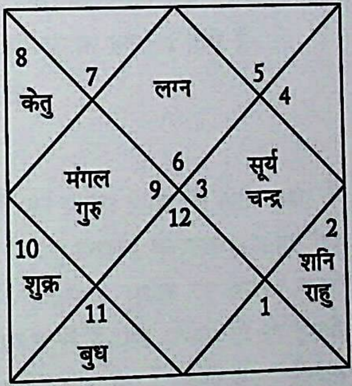

है। जन्म से 3 वर्ष पूर्ण होने पर जातक को अष्टमेश चन्द्र, जो छठे स्थान में अधिक पीड़ित है, की विंशोत्तरी दशा प्रारम्भ हुई।

चन्द्र–गुरु में शिशु को बायीं आंख में एक असाध्य 'कैंसर रोग' (retinoblastoma; रेटिनोब्लास्टोमा) हो गया। पाप ग्रह 6/12 अक्ष पर

हैं (नेत्र रोग वाले अध्याय में देखें)। चन्द्र सभी वर्ग कुण्डलियों (नवांश, द्रेष्काण, द्वादशांश) में पीड़ित है; गुरु भी पीड़ित है। यह जानने के लिए कि जातक को कोई राहत मिलेगी या नहीं, इसके लिए दशा क्रम महत्त्वपूर्ण होता है। गुरु की अन्तर्दशा के बाद आने वाली अन्तर्दशा शनि की है, जो पापी है तथा चन्द्र और लग्न दोनों को पीड़ित कर रहा है। सामान्य क्रम में उससे अगली अन्तर्दशा बुध की है जो सप्तमेश (मारक) होकर मारक स्थान में है तथा चन्द्र से भी द्वितीय स्थान (अन्य मारक स्थान) में स्थित है। इसके बाद केतु (बारहवें भाव में) है, फिर शुक्र (षष्ठेश) है। इस प्रकार दशाओं का क्रम किसी राहत का संकेत नहीं देता। इसकी मृत्यु चन्द्र-बुध-राहु, जो योगिनी दशा में संकटा-संकटा (राहु-राहु) के अनुरूप है, में हुई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बालारिष्ट के नियमों को ध्यानपूर्वक प्रयोग करना चाहिए। अचूक परिणाम प्राप्त करने के लिए दशा योजना के साथ इनका संयोजन परम आवश्यक है।

सप्तम अध्याय

अरिष्टभंग योग

उत वाप पिताऽसि न उत भ्रातोत नः सखा
सनो जीवात वै कृधि।

"हे सर्वशक्तिमान् प्रभु! आप पिता हैं, भ्राता तथा मित्र हैं। हमारी आयु को बढ़ाएं।

—*ऋग्वेद-10/186*

जहां एक ओर जन्मपत्री में जातक के लिए कष्ट सूचक योग होते हैं वहीं दूसरी ओर उस कष्ट के निराकरण के सूचक अन्य योग भी होते हैं। ज्योतिषी के लिए यह आवश्यक है कि जो तथ्य कष्ट को निरस्त करते हैं उन पर विचार किए बिना बुरे फलों की भविष्यवाणी कर लोगों को भयभीत न करे। अतः अरिष्टभंग कुण्डली के अध्ययन का एक आवश्यक अंग हो जाता है।

किसी भी विशिष्ट अरिष्टभंग योग में दो घटक अवश्य होते हैं:

(अ) कष्ट की उपस्थिति का संकेत; और

(ब) उस कष्ट का निवारण

ज्योतिष के ग्रन्थ सदा कड़ी वाक्य शैली का प्रयोग करते हैं। अरिष्टभंग के बहुत से योग शुभ फलों, अच्छे स्वास्थ्य, दीर्घायु इत्यादि के कारक बताए गए हैं। अरिष्ट भंग से हम विद्यमान कष्ट में गुणात्मक सुधार पर विचार करने के लिए प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार यदि कुण्डली में पाप प्रभाव हों तो इसके निराकरण का योग इस पाप प्रभाव को उदासीन कर देता है। क्या यह निश्चित रूप से अनुकूल परिणाम ही देगा, यह संदेहास्पद रहेगा।

यह पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है कि लग्न/लग्नेश, चन्द्र तथा केन्द्रों में विभिन्न प्रकार से पाप प्रभाव कष्ट देते हैं। आगे यह देखने में आएगा कि जब शुभ प्रभावों की प्रबलता हो तो कष्ट अन्तर्धान या विलीन हो जाते हैं।

अरिष्टभंग के शास्त्रीय योग

एक बार फिर इन शास्त्रीय योगों के मुख्य स्रोत 'पराशर' तथा 'वराहमिहिर' ही हैं। इसके अतिरिक्त कुछ योग 'श्री रणबीर ज्योतिर्महानिबन्ध' और 'मानसागरी' से लिए गए हैं। इन सभी योगों को शब्दशः प्रयोग न करके विवेकपूर्वक प्रयोग करना चाहिए। अच्छे परिणाम प्राप्त करने के लिए इन योगों का चल रही दशाओं के साथ संयोजन करना चाहिए।

1. लग्न में अकेला बली गुरु सभी पापों को नष्ट कर देता है।

   नोट: ग्रहों के पाप प्रभाव को दूर करने के लिए लग्न में बली गुरु को प्रबलतम घटक माना गया है। ऐसा कहा गया है कि लग्न में बुध एक हजार दोषों को दूर करता है। इसी स्थिति में शुक्र दस हजार दोषों को दूर करता है, तथा बृहस्पति लग्न में कुण्डली के एक लाख दोषों का नाश करता है।

2. बुध, गुरु और शुक्र में से कोई एक भी बली होकर किसी भी केन्द्र स्थान (1, 4, 7, 10 भाव) में हो तो सभी अरिष्टों.को नष्ट करता है।
3. केन्द्र में बली लग्नेश ग्रहों के पाप प्रभाव को दूर करता है।
4. बली लग्नेश केन्द्र में शुभ दृष्ट तथा पाप अदृष्ट हो तो सभी कष्टों को नष्ट करता है तथा सौभाग्य में निरन्तर उन्नति कराते हुए लम्बी आयु देता है।
5. चन्द्र छठे या आठवें स्थान में नवजात का रक्षक हो जाता है यदि कृष्ण पक्ष में दिन में (सूर्योदय से सूर्यास्त तक) जन्म हो या शुक्ल पक्ष में रात्रि (सूर्यास्त से सूर्योदय) में जन्म हो।
6. जन्म के समय सभी ग्रह शीर्षोदय राशियों (राशि 3, 5, 6, 7, 8 तथा 11) में स्थित हों तो अरिष्टभंग करते हैं।
7. राहु तीसरे या छठे या ग्यारहवें भाव में शुभ दृष्ट हो तो तुरन्त अरिष्टों को दूर कर देता है। यदि लग्न मेष, वृष या कर्क हो तथा उसमें राहु स्थित हो तो भी अरिष्ट ओझल हो जाते हैं।
8. पाप ग्रह शुभ वर्गों में (वर्ग कुण्डलियों में शुभ ग्रहों की राशियों में) उन शुभ ग्रहों से दृष्ट हों जो स्वयं शुभ वर्गों में हों: इस स्थिति में भी अरिष्टों का नाश होता है।

9. यदि लग्न में शुभ ग्रह की राशि हो, कुण्डली में शुभ ग्रह बलवान और पाप ग्रह दुर्बल हों तो अरिष्टभंग योग होता है।

10. चन्द्र यदि छठे या आठवें स्थान में भी हो परन्तु बुध, गुरु या शुक्र के द्रेष्काण में हो तो अरिष्टों का नाश करता है।

11. जब पाप ग्रह, शुभ ग्रहों से घिरे हों तथा शुभ ग्रह केन्द्रों या त्रिकोणों में हों तो पाप प्रभाव निरस्त हो जाता है।

12. लग्नेश लग्न में अन्य सभी ग्रहों से दृष्ट हो तो अरिष्ट नाशक होता है। इसी प्रकार पूर्ण चन्द्र अन्य सभी ग्रहों से दृष्ट हो तो वह पाप प्रभाव को भंग करता है।

13. छठे, सातवें या आठवें भावों में शुभ ग्रह पाप ग्रहों से संयुक्त न हों तो पाप प्रभाव दूर होता है।

नोट: यह शुभ *लग्नाधियोग* का निर्माण करता है जो प्रबल रक्षक होता है; यह योग *चन्द्राधियोग* के सदृश अति शुभ होता है।

14. बली लग्नेश एकादश या तीसरे भाव में या केन्द्र में हो तो पाप प्रभाव दूर होकर अच्छे स्वास्थ्य की सुनिश्चितता तथा दीर्घायु की वचनबद्धता देता है।

15. पूर्ण चन्द्र का शुभमध्यत्व (दोनों ओर शुभ ग्रह) पाप प्रभाव को दूर करता है। यदि यह चन्द्र शुक्र से दृष्ट हो तो विशेष रूप से शुभ हो जाता है।

16. तुला लग्न के लिए सूर्य बारहवें स्थान में सौ वर्ष की आयु सुनिश्चित करता है।

17. गुरु–मंगल युति या मंगल पर गुरु की दृष्टि से सभी पाप प्रभाव निरस्त होते हैं तथा यह योग जातक की माता के लिए अनुकूल होता है।

नोट: यह अति सामान्य योग है। इस योग में प्रयुक्त भाव (स्थान) तथा गुरु व मंगल के भावाधिपत्य को ध्यान में रखना आवश्यक है।

18. चतुर्थ या दशम भाव में पाप ग्रह शुभ ग्रहों के मध्य में हों और शुभ ग्रह केन्द्र या त्रिकोण में स्थित हों; यह स्थिति जातक के पित' के लिए सौभाग्यदायक होती है।

19. जब पूर्ण चन्द्र उच्च राशि में हो या अपनी राशि में हो, मित्र के वर्गों में हो या स्ववर्ग में हो तथा शुभ ग्रहों से दृष्ट तथा पाप ग्रहों से अदृष्ट हो तो प्रबलतम पाप प्रभाव भी दूर हो जाता है।

20. कर्क, धनु या मीन राशि में गुरु, लग्न, केन्द्र या त्रिकोण में हो तो पाप प्रभाव दूर करता है।
21. जब कुण्डली में बहुत से शुभ योग हों तो वे पाप प्रभाव को दूर करते हैं।

अरिष्टभंग: कुछ उदाहरण

कुण्डली संख्या 7.1

यहां चन्द्र तथा राहु अष्टम भाव में हैं। चन्द्र शुभ द्रेष्काण में नहीं है। परन्तु यह पूर्ण चन्द्र है। लग्नेश मंगल सूर्य, केतु तथा अष्टमेश बुध से युक्त है। यह बुध से एक अंश के भीतर है तथा ग्रह युद्ध में इससे पराजित है। अकेला बचाव पक्ष गुरु का मीन राशि में, पंचम भाव में बैठकर लग्न को देखना तथा चन्द्र से दशम भाव में स्थित होना (शुभ गजकेसरी योग) है। जातक को बाल्यावस्था में पोलियो हो गया और कूल्हे के जोड़ से नीचे दोनों टांगों में लकवा हो गया। यहां पर यह ध्यान देना चाहिए कि लग्न में अशुभ पाप द्रेष्काण (जैसाकि अरिष्ट अध्याय में बताया गया है) उदित हो रहा है परन्तु वह अपने स्वामी द्वारा दृष्ट है। यह शनि के द्वारा भी दृष्ट है (इसे देखने के लिए द्रेष्काण कुण्डली बनाएं)। ऐसा कहा जाता है कि यह पाप प्रभाव सामान्यत: जन्म से सातवें वर्ष में मृत्यु देता है। इसके स्थान पर लगभग इसी आयु में जातक को असाध्य अशक्तता हो गई। अत: इस प्रकार यहां पर पाप प्रभाव का आंशिक निराकरण हुआ। जैसाकि पहले ही बताया जा चुका है कि अरिष्टभंग गुणात्मक वृद्धि को ही सूचित करता है।

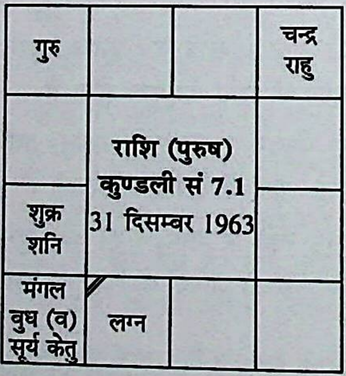

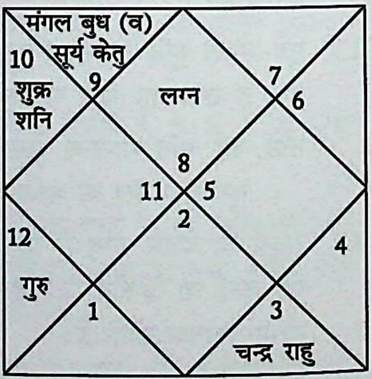

लग्न	08°56'	मंगल	26°17'	शुक्र	15°32'
सूर्य	15°11'	बुध (व)	25°23'	शनि	26°58'
चन्द्र	22°02'	गुरु	17°18'	राहु	17°56'

कुण्डली संख्या 7.2

पाप प्रभाव के लगभग पूर्ण निराकरण को कुण्डली संख्या 7.2 में प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। यहां चन्द्र अष्टम भाव में अष्टमेश शनि से दृष्ट है। शनि षष्ठ भाव में है। लग्नेश का तीसरे भाव में होना यद्यपि एक शुभ घटक है लेकिन यह सूर्य से युक्त तथा शनि से दृष्ट है। यहां चन्द्रमा शुभ शुक्र के द्रेष्काण में स्थित है। गुरु की दृष्टि मंगल तथा लग्न पर भी है। पाप प्रभाव का अतिप्रभावी निराकरण इस तथ्य द्वारा प्रकट है कि जातक का जन्म रात्रि के समय तथा शुक्ल पक्ष में हुआ था।

	मंगल केतु		लग्न
	राशि (पुरुष) कुण्डली सं 7.2 27 अगस्त 1958		शुक्र
चन्द्र			सूर्य बुध (व)
	शनि	गुरु राहु	

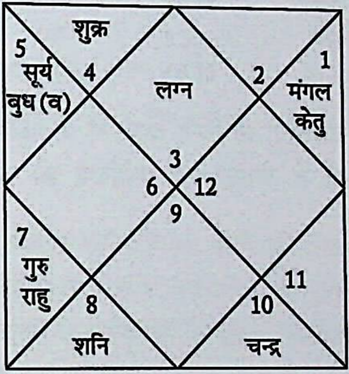

लग्न	26°00'	मंगल	27°19'	शुक्र	19°56'
सूर्य	09°50'	बुध (व)	04°01'	शनि	25°49'
चन्द्र	12°24'	गुरु	04°44'	राहु	00°14'

कुण्डली संख्या 7.3

इस कुण्डली में चन्द्र अष्टम भाव में, सूर्य के द्रेष्काण में, पाप ग्रहों तथा शुभ ग्रहों से अदृष्ट है। चन्द्र की अष्टम भाव में स्थिति, जो किसी भी ग्रह से दृष्ट नहीं है, सामान्यतः कोई कष्ट नहीं देती। साथ ही जन्म दिन के समय तथा कृष्ण पक्ष में है। अतः कोई पाप प्रभाव शेष नहीं रह जाता।

अतः यह ध्यातव्य है कि किसी भी कुण्डली में पाप प्रभाव के निरस्तीकरण का सावधानी से अध्ययन आवश्यक है। जब पाप प्रभाव अधिक हों तथा निरस्तीकरण अपर्याप्त हों तो कुछ प्रतिकूल परिणाम मिलेंगे तथापि मृत्यु नहीं होगी। जब पाप प्रभाव का पूर्ण या पर्याप्त निरस्तीकरण हो तो केवल मामूली स्वास्थ्य समस्या का सूचक होता है। जब पाप प्रभाव के निरस्तीकरण

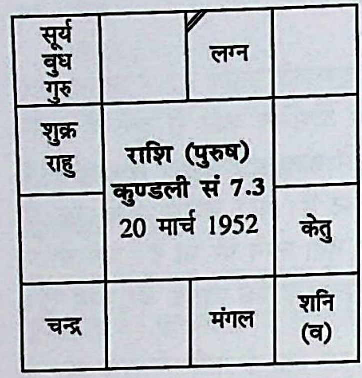

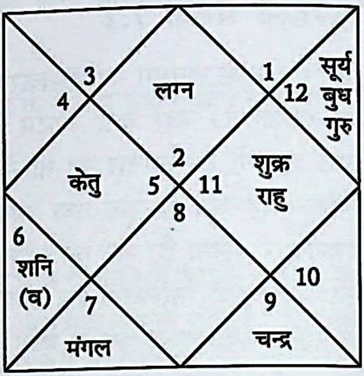

लग्न	28°29'	मंगल	25°07'	शुक्र	11°17'
सूर्य	06°22'	बुध	24°37'	शनि (व)	19°23'
चन्द्र	21°03'	गुरु	27°20'	राहु	07°04'

के योगों के बिना बहुत से प्रतिकूल पाप प्रभाव किसी कुण्डली में उपस्थित हों तो केवल तभी ज्योतिषी को कष्टकारक परिणाम कहना चाहिए।

अष्टम अध्याय

जन्मजात रोग

जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते।
तच्छान्तिरौषधैर्दानैर्जपहोमसुरार्चनैः।।

"पूर्व जन्मों में किए गए पाप कर्म इस जन्म में रोगों के रूप में पीड़ा पहुंचाते हैं। उन रोगों की शान्ति औषधियों से, दानादि से, प्रभु नाम स्मरण से, और देवताओं की पूजा-अर्चना से ही हो सकती है"।

–आयुर्वेद

चिकित्सकों के लिए जन्मजात बीमारियां विशेष अभिरुचिप्रद होती हैं। प्रायः इनमें तुरन्त तथा विशिष्ट चिकित्सा की आवश्यकता होती है। अपर्याप्त चिकित्सा रोगी को स्थायी हानि पहुंचा सकती है। इनमें से बहुत सी बीमारियां असाध्य या आंशिक रूप से साध्य हैं और उनका इलाज बहुत बड़ी चुनौती है।

ज्योतिषी के लिए यह एक अनछुआ क्षेत्र है। इस क्षेत्र में बहुत थोड़ा सा शोध हुआ है। किसी जन्मपत्री को पढ़ने तथा विश्लेषण करने के समय साधारणतः जातक की जन्म के समय की सेहत के विषय में ध्यान नहीं दिया जाता है। यह चूक प्रायः फलित ज्योतिष में ज्योतिषी के लिए उपहास का कारण बनती है। यहां पर उन विशेष नियमों को प्रस्तुत करने की कोशिश की है, जिनके आधार पर जन्मपत्रिका के अध्ययन से जन्मजात रोग का पता लगाना सम्भव होता है। रोग की साध्यता या असाध्यता के कुछ संकेत भी यहीं से उपलब्ध होगें। यहां इस बात पर जोर देना उचित होगा कि जन्मजात रोगों के विषय में यहां केवल कुछ मूल नियमों की व्याख्या ही की गई है और उन नियमों की सार्थकता वास्तविक रोगियों की कुण्डलियों पर दर्शाई गई है।

प्रासंगिक नियम

पिछले अध्यायों में बालारिष्ट तथा अरिष्टभंग योगों का वर्णन हम पहले ही कर चुके हैं। यदि वे नियम न्यायपूर्वक तथा लचीलेपन के साथ प्रयोग किए जाएं

तो परम मान्य हो सकेगें। इनके शब्दशः प्रयोग से साधारणतः असफल होने की पूर्ण आशा है। इस खण्ड में जन्म के समय चल रही दशा-अन्तर्दशा की भूमिका पर बल दिया गया है। दशाएं वैदिक ज्योतिष की एक अत्युन्नत प्रणाली हैं। उनका प्रयोग घटनाओं का समय ज्ञात करने के लिए किया जाता है। यह न्याय-संगत है कि यदि जन्म के समय प्रतिकूल दशा चल रही हो तो वह नवजात के लिए प्रतिकूल परिणाम देगी। यदि जन्म के समय प्रतिकूल दशा बुरे स्वास्थ्य या जन्म के समय रोग ग्रस्त होने की सूचक हो, तो बच्चा जन्म के समय से ही रोगग्रस्त होगा। इस प्रकार एक प्रतिकूल दशा जो जन्म के समय चल रही हो, वह साधारणतः जन्मजात रोग की सूचक होगी। यदि कोई प्रतिकूल दशा जन्म के कुछ समय बाद प्रारम्भ होती है तो बच्चा स्वस्थ पैदा होकर बाद में अस्वस्थ हो जाता है। यह तो जन्मजात रोग नहीं हुआ। जन्मजात रोग निश्चित करने में सहायक कुछ मुख्य नियम निम्नलिखित हैं:

(i) जन्म के समय नैसर्गिक पाप ग्रहों की महादशा तथा अन्तर्दशा।

(ii) जन्म के समय विशिष्ट लग्न के लिए अशुभ गहों की दशा।

नोट: अशुभ तथा शुभ ग्रहों की व्याख्या पहले हो चुकी है।

(iii) पाप युक्त ग्रहों की दशाएं।

(iv) लग्न या लग्नेश से युक्त ग्रहों की दशाएं; तथा उन ग्रहों की दशाएं जो प्रतिकूल भावों जैसे छठे, आठवें या बारहवें भाव से संबंधित हों।

(v) लग्न या लग्नेश की जन्मजात दुर्बलता।

(vi) चन्द्र का पीड़ित होना जिससे बालारिष्ट बनता है।

(vii) पाप प्रभाव को निरस्त करने वाले योगों की उपस्थिति या अनुपस्थिति।

नोट: जिनका विशेष महत्त्व है वे हैं: (1) प्रबल गुरु की लग्न, लग्नेश या चन्द्र पर दृष्टि; (2) केन्द्र में नैसर्गिक शुभ ग्रहों की उपस्थिति; और (3) केन्द्र में नैसर्गिक पाप ग्रहों की अनुपस्थिति।

आधान-काल एवं जन्मजात रोग

गर्भधारण के समय से गर्भ की स्थिति का ज्ञान सम्भव है। गर्भावस्था के दस मासों के स्वामी इस प्रकार हैं:

"शुक्रारजीवरविशशिसौरिबुधविलग्नपोडुपादित्याः"

अर्थात् शुक्र, मंगल, गुरु, सूर्य, चन्द्र, शनि, बुध, (आधान समय का) लग्नेश, चन्द्र तथा सूर्य।

गर्भकाल में जिस मास का स्वामी कलुषित या पीड़ित है, उस मास में गर्भपीड़ा अथवा गर्भपात सम्भव है। मासाधिप के अनुसार ही गर्भ की स्थिति समझनी चाहिए।

सामान्यत: गर्भाधान का समय निश्चित करना कठिन होता है। यह कार्य विद्वान् ज्योतिषी को बहुत सावधानी से करना चाहिए।

जन्मजात बीमारियां: कुछ उदाहरण

यहां दस जन्म लग्नों का वर्ग कुण्डलियों के बिना ही वर्णन किया गया है। ये दस उदाहरण पाप प्रभाव के बढ़ते हुए क्रम में रखे गए हैं। यहां जन्मकालीन विंशोत्तरी तथा योगिनी दशाओं का प्रयोग किया गया है। विंशोत्तरी दशा के मामले में महादशा, अन्तर्दशा तथा प्रत्यन्तर दशा की गणना की गई है जबकि योगिनी दशा के मामले में महादशा तथा अन्तर्दशा को ही पर्याप्त समझा है।

कुण्डली संख्या 8.1

जन्म के समय विंशोत्तरी दशा शनि-गुरु-चन्द्र थी। शनि द्वादशेश है। गुरु उच्च राशि में है परन्तु वक्री लग्नेश है तथा राहु-केतु-अक्ष पर है, जबकि चन्द्र अपने भाव में बली तथा लग्नेश के साथ राहु-केतु अक्ष पर स्थित है। मंगल महादशानाथ को देख रहा है और केतु अन्तर्दशानाथ तथा प्रत्यन्तर्दशानाथ से युक्त है।

जन्म के समय योगिनी दशा धान्या-पिंगला (गुरु-सूर्य) थी। सूर्य षष्ठेश है तथा अष्टमेश शुक्र से युक्त होकर मंगल से दृष्ट है। बली गुरु लग्न और सूर्य को देख रहा है तथा रोग से निवृत्ति का द्योतक है।

लग्न		मंगल (व)	
	राशि (स्त्री) कुण्डली सं 8.1 6 दिसम्बर 1990		चन्द्र गुरु (व) केतु
राहु			
बुध शनि	सूर्य शुक्र		

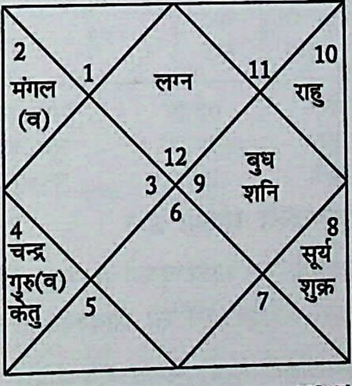

लग्न	16°14'	मंगल (व)	08°35'	शुक्र	28°47'
सूर्य	20°13'	बुध	11°13'	शनि	29°07'
चन्द्र	16°10'	गुरु (व)	19°19'	राहु	05°10'

जातक को "लम्बो-सेक्रल मेनिंगोमायलोसील" (lumbo-sacral meningo-myelocoele) नामक एक नितम्बदोषकारक रोग से कष्ट था जिसका उपचार एक साधारण सी शल्यक्रिया द्वारा किया गया।

कुण्डली संख्या 8.2

यह जातक जन्मजात हृदय रोग से पीड़ित हुआ और इसका उपचार बड़ी शल्यक्रिया के द्वारा सम्भव हुआ।

विंशोत्तरी दशा: शनि-चन्द्र-गुरु। शनि अष्टमेश है तथा अष्टम भाव में राहु-केतु अक्ष पर है। चन्द्र छठे स्थान में नीच राशि में सूर्य से युक्त तथा द्वादश भाव स्थित षष्ठेश वक्री मंगल से दृष्ट है। गुरु इस लग्न के लिए मारकेश है तथा वक्री है। शनि तथा गुरु केतु के प्रभाव में है जबकि मंगल की दृष्टि चन्द्र पर है।

योगिनी दशा: भ्रामरी-सिद्धा (मंगल-शुक्र)। मंगल षष्ठेश होकर द्वादश भाव में स्थित है तथा लग्नेश और चन्द्र एवं अन्तर्दशा-नाथ शुक्र को देख रहा है। शुक्र द्वादशेश भी है।

		मंगल (व)	लग्न
	राशि (स्त्री) कुण्डली सं 8.2 15 दिसम्बर 1990		गुरु (व) केतु
शनि राहु			
बुध (व) शुक्र	चन्द्र सूर्य		

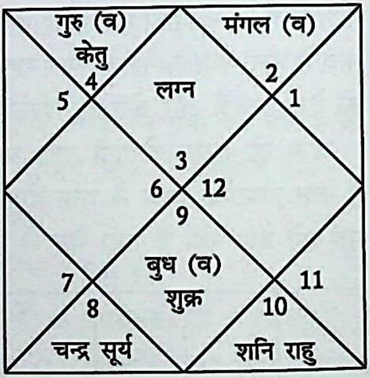

लग्न	01°28'	मंगल (व)	05°59'	शुक्र	10°16'
सूर्य	29°31'	बुध (व)	16°13'	शनि	00°04'
चन्द्र	11°20'	गुरु (व)	19°28'	राहु	04°42'

कुण्डली संख्या 8.3

जातक का बायां वृषण (अण्ड) नीचे उतरा हुआ नहीं था, जिसे शल्यक्रिया द्वारा निकाल देने की आवश्यकता हुई।

विंशोत्तरी दशा: मंगल-बुध-शुक्र। मंगल षष्ठेश होकर अष्टम भाव में है। बुध लग्नेश है तथा सप्तम भाव में राहु-केतु अक्ष पर स्थित होकर अष्टमेश शनि से दृष्ट है। द्वादशेश शुक्र भी सप्तम भाव में शनि से दृष्ट है।

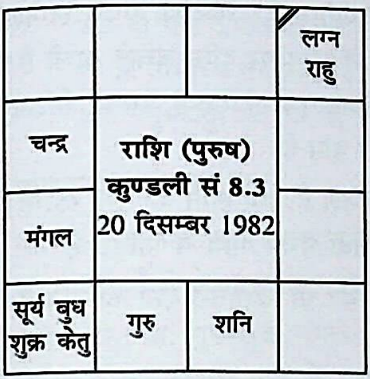

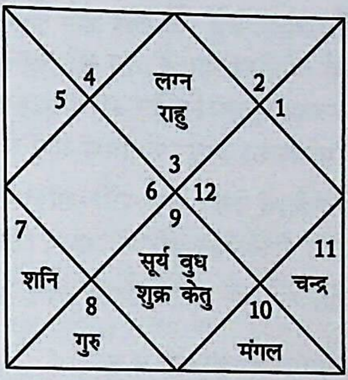

लग्न	23°02'	मंगल	14°25'	शुक्र	16°04'
सूर्य	04°43'	बुध	21°13'	शनि	08°24'
चन्द्र	00°34'	गुरु	05°15'	राहु	10°39'

योगिनी दशा: पिंगला-उल्का (सूर्य-शनि)। सूर्य सप्तम भाव में लग्नेश तथा द्वादशेश के साथ राहु-केतु अक्ष पर अष्टमेश शनि से दृष्ट है।

नोट: यहां पर यह ध्यान देने योग्य है कि मंगल तथा केतु शल्य चिकित्सा के सूचक हैं। इसके अतिरिक्त शनि शरीर के किसी अंग को बाहर निकालने या हटाने की सूचना देता है।

कुण्डली संख्या 8.4

इस कुण्डली का सबसे बड़ा दोष केन्द्र में पाप ग्रहों का होना तथा शुभ ग्रहों का न होना है। द्वादशेश लग्न में है, षष्ठेश चतुर्थ भाव में है तथा लग्न को देख रहा है जबकि अष्टमेश वक्री है तथा सप्तम भाव में बैठकर लग्न को देख रहा

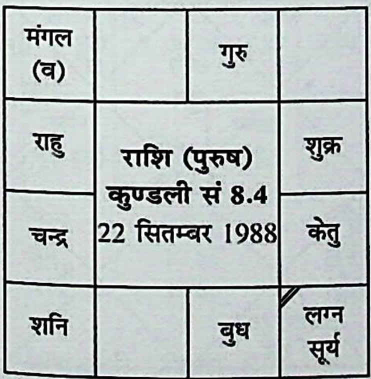

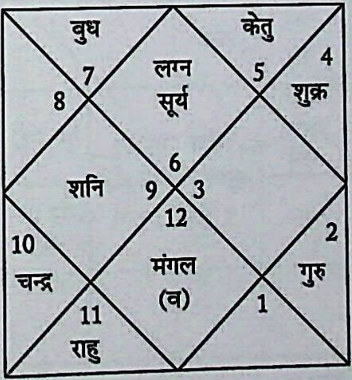

लग्न	03°38'	मंगल (व)	13°16'	शुक्र	22°20'
सूर्य	05°44'	बुध	01°10'	शनि	02°39'
चन्द्र	15°53'	गुरु	12°25'	राहु	20°20'

है। चन्द्र दोनों ओर पाप ग्रहों के होने से पीड़ित है। अष्टमेश मंगल लग्नेश को भी देख रहा है। गुरु की नवम भाव से लग्न पर दृष्टि बचाने वाली है। बच्चा 'डाऊंस सिंड्रोम' (Down's syndrome) से पीड़ित है, इसकी बौद्धिक (मानसिक) आयु वास्तविक आयु से काफी कम है।

विंशोत्तरी दशा: चन्द्र-शनि-शनि! शनि षष्ठेश है तथा लग्न को देख रहा है। चन्द्र एकादशेश होने के कारण पापी है तथा पंचम भाव में पीड़ित है।

योगिनी दशा: मंगला-उल्का (चन्द्र-शनि)। यह भी विंशोत्तरी दशा की तरह है।

कुण्डली संख्या 8.5

जातक "मसक्यूलर डिस्ट्राफी" (muscular dystrophy) से पीड़ित है जो सामान्यत: धीरे-धीरे बढ़ने वाला रोग है। सभी पाप ग्रह 6/12 अक्ष पर स्थित हैं। लग्नेश पंचम भाव में उच्च राशि में परन्तु वक्री है तथा अष्टमेश शुक्र द्वारा दृष्ट है। लग्न में नीच ग्रह स्थित है।

विंशोत्तरी दशा: केतु-चन्द्र-मंगल। केतु द्वादश भाव में मंगल तथा षष्ठेश के साथ है तथा वक्री द्वादशेश से दृष्ट है। चन्द्र मारक स्थान में है। मंगल बारहवें स्थान में, षष्ठेश के साथ है तथा द्वादशेश से दृष्ट है।

योगिनी दशा: भ्रामरी-उल्का (मंगल-शनि)। मंगल तथा शनि की भूमिका पहले ही बताई जा चुकी है।

नोट: बीमारी की तीव्रता साधारणत: पाप प्रभाव की तीव्रता पर निर्भर करती है। पीड़ाकारक घटक एक हो तो परिणामत: साध्य बीमारी होती है।

लग्न बुध	चन्द्र		
सूर्य मंगल केतु	राशि (पुरुष) कुण्डली सं 8.5 2 मार्च 1979		गुरु (व)
शुक्र			शनि (व) राहु

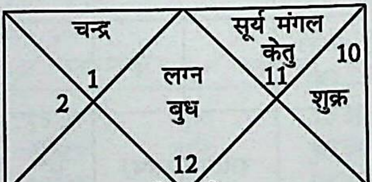

लग्न	25°02'	मंगल	08°12'	शुक्र	04°35'
सूर्य	17°23'	बुध	03°48'	शनि (व)	16°57'
चन्द्र	04°03'	गुरु (व)	06°20'	राहु	23°57'

जब दो पाप प्रभाव हों तो बीमारी कुछ तीव्र होती है। तीन पाप घटक हों तो असाध्य रोग होता है। मंगल यहां पर तीन प्रकार से पीड़ित है। यह राहु-केतु अक्ष पर है, सूर्य से युक्त है एवं शनि से दृष्ट है।

कुण्डली संख्या 8.6

यह एक सायनोटिक जन्मजात हृदय रोग (cyanotic congenital heart disease) का मामला है जिसे शल्यक्रिया के बाद आंशिक रूप से सुधारा जा सका था।

विंशोत्तरी दशा: गुरु-शुक्र-मंगल। वक्री गुरु लग्नेश होकर लग्न में है। शुक्र षष्ठेश होकर अष्टम भाव में सूर्य से युक्त है तथा शनि से दृष्ट है। मंगल द्वादशेश है तथा शनि से युक्त है।

योगिनी दशा: पिंगला-उल्का (सूर्य-शनि)। सूर्य अष्टम-भाव में षष्ठेश के साथ स्थित है तथा इस लग्न के लिए पापी शनि से, जो अन्तर्दशा स्वामी भी है, से दृष्ट है।

नोट: गुरु लग्नेश होकर लग्न में है परन्तु वक्री होने के कारण अपनी ही दशा में शिशु की रक्षा करने में समर्थ नहीं है। यह पापी शनि से भी दृष्ट है। केवल आंशिक आरोग्य-लाभ ही सम्भव है।

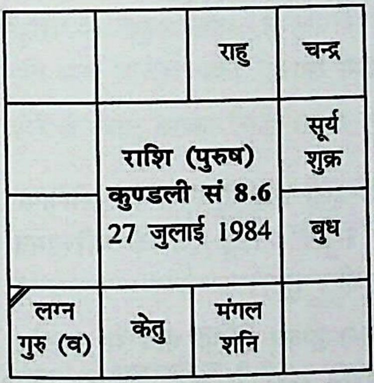

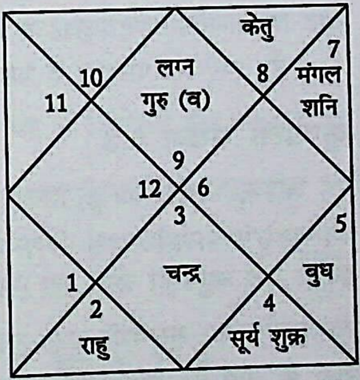

लग्न	08°32'	मंगल	26°22'	शुक्र	22°25'
सूर्य	10°58'	बुध	07°46'	शनि	16°15'
चन्द्र	27°16'	गुरु (व)	11°10'	राहु	09°51'

कुण्डली संख्या 8.7

यह स्त्री जातक, विटामिन डी की कमी के कारण, 'रीनल रिकेट्स' (renal rickets) रोग से पीड़ित है जिसका प्रभाव कंकाल तंत्र पर पड़ता है।

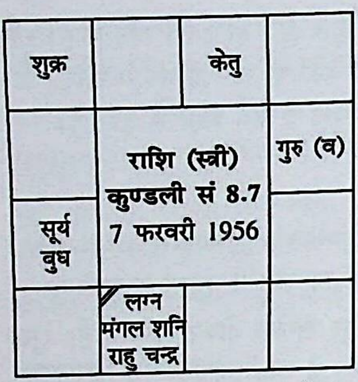

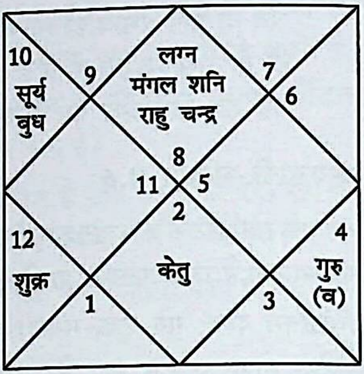

लग्न	15°30'	मंगल	22°21'	शुक्र	01°25'
सूर्य	23°49'	बुध	04°30'	शनि	08°34'
चन्द्र	28°50'	गुरु (व)	04°30'	राहु	22°09'

विंशोत्तरी दशा: बुध-शनि-शुक्र। बुध अष्टमेश है। पाप ग्रह शनि लग्न में राहु-केतु अक्ष पर, लग्नेश तथा षष्ठेश मंगल तथा नीच के चन्द्र के साथ है। शुक्र द्वादशेश है।

योगिनी दशा: भद्रिका-भ्रामरी (बुध-मंगल)। बुध का वर्णन पहले ही हो चुका है। लग्नेश एवं षष्ठेश मंगल लग्न में अत्यधिक पीड़ित है।

नोट: मंगल ठीक उन्हीं अंशों में है जिनमें राहु है, अतः अत्यधिक पीड़ित है। इसी का परिणाम है यह असाध्य रोग।

कुण्डली संख्या 8.8

यह जातक, कंकाल तंत्र के विकार "स्पोन्डिलो-इपीफीजियल-डिस्प्लेज़िया" (spondylo-epiphyseal dysplasia) से पीड़ित है जिसके परिणामतः इसका कद बहुत ही छोटा रहा (लगभग तीन फुट)।

विंशोत्तरी दशा: गुरु-शनि-राहु। गुरु लग्नेश होकर द्वादश भाव में अष्टमेश शुक्र के साथ है। शनि द्वादशेश है तथा छठे स्थान में वक्री है। राहु लग्न में है।

योगिनी दशा: भ्रामरी-उल्का (मंगल-शनि)। मंगल वक्री है तथा सप्तम भाव में केतु के साथ है तथा लग्न को देख रहा है। शनि का वर्णन ऊपर हो चुका है।

नोट: राहु लग्न के अंशों के बहुत समीप है।

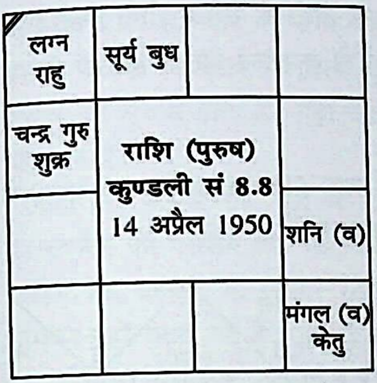

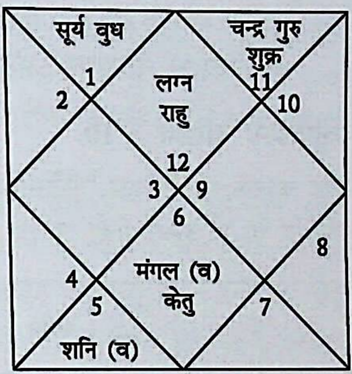

लग्न	16°16'	मंगल (व)	01°21'	शुक्र	14°00'
सूर्य	00°19'	बुध	17°00'	शनि (व)	20°11'
चन्द्र	23°26'	गुरु	06°35'	राहु	14°16'

कुण्डली संख्या 8.9

जातक विटामिन-डी प्रतिरोधी "रीनल रिकेट्स" (Vitamin D-resistant renal rickets) से पीड़ित है। दोनों गुर्दों में कैल्शियम एकत्र होने तथा उच्चरक्त चाप होने के कारण उपचार में जटिलताएं थीं।

विंशोत्तरी दशा: शुक्र-शनि-शुक्र। सप्तमेश तथा अष्टमेश शनि, चतुर्थ भाव में है तथा चतुर्थ भाव से लग्न को देख रहा है। शुक्र लग्न में अष्टमेश वक्री शनि तथा षष्ठेश वक्री गुरु से दृष्ट है।

योगिनी दशा: उल्का-सिद्धा (शनि-शुक्र)। यह भी विंशोत्तरी दशा की तरह है।

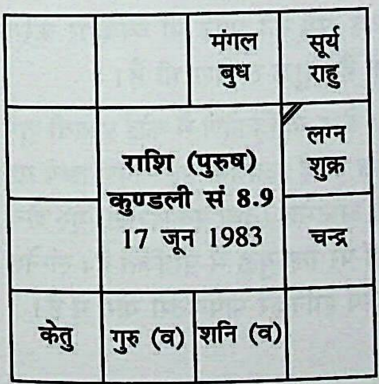

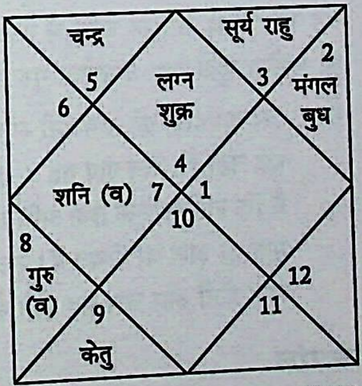

लग्न	15°53'	मंगल	28°08'	शुक्र	17°08'
सूर्य	01°47'	बुध	10°12'	शनि (व)	04°16'
चन्द्र	22°55'	गुरु (व)	09°59'	राहु	01°22'

नोट : द्वादश भाव में सूर्य का ठीक राहु के अंशों के बराबर होना इनके पिता के लिए भी कष्ट का संकेत है (देखें कुण्डली संख्या 8.8)।

कुण्डली संख्या 8.10

यह बालक रक्त विकार "थैलेसीमिया मेजर" (Thalassaemia major) से पीड़ित था जो इसके लिए अन्ततः प्राणघातक सिद्ध हुआ।

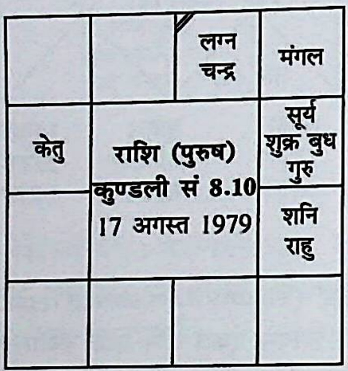

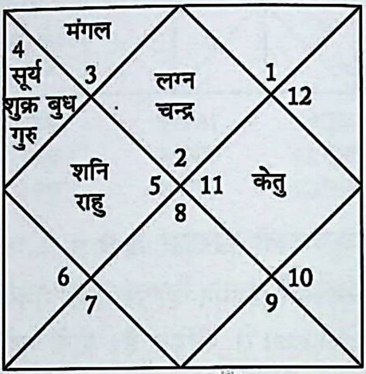

लग्न	17°38'	मंगल	11°22'	शुक्र	27°20'
सूर्य	29°44'	बुध	11°31'	शनि	20°37'
चन्द्र	23°44'	गुरु	27°12'	राहु	14°59'

विंशोत्तरी दशा: मंगल-मंगल-शनि। सप्तमेश तथा द्वादशेश मंगल मारक है तथा मारक स्थान में है। शनि राहु-केतु अक्ष पर है तथा लग्न को देख रहा है।

योगिनी दशा: संकटा-संकटा (राहु-राहु)। राहु, शनि की तरह व्यवहार करता है। यह चौथे भाव में सिंह राशि में है अतः यह सूर्य की भांति भी व्यवहार करेगा जो षष्ठेश शुक्र तथा अष्टमेश गुरु से युक्त है। शुक्र लग्नेश भी है।

नोट: इस कुण्डली की कमजोरी स्पष्ट है। केन्द्र या त्रिकोण में कोई प्रभावी शुभ ग्रह नहीं है। तीन पाप ग्रह 4-10 अक्ष पर हैं। अधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि लग्नेश शुक्र तथा अधिक पापी अष्टमेश (तथा एकादशेश) गुरु दोनों एक ही अंश पर स्थित हैं। शुक्र यहां पर ग्रह युद्ध में पराजित है। लग्नेश शुक्र दोनों ओर पाप ग्रह होने से विशेष हानिकर पापकर्तरी योग में है।

सारांश

जन्मजात रोग साधारणतः जन्म के समय चल रही उस पाप दशा में होते हैं जिसका सम्बन्ध छठे, आठवें, बारहवें भावों, लग्न तथा इनके स्वामियों

के साथ होता है। यदि लग्न या लग्नेश की जन्मजात दुर्बलता हो तो पाप प्रभाव पेचीदा हो जाता है। बली गुरु का चन्द्र या लग्न पर दृष्टि डालना बचाव का सूचक होता है। ग्रहों का वक्री होना सामान्यतः स्वास्थ्य के लिए प्रतिकूल है।

ग्रहों का परस्पर ग्रह युद्ध में सम्मिलित होना भी एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है। लग्नेश की पराजय एक महत्त्वपूर्ण घटक है। यहां पर यह स्मरण रखना चाहिए कि ग्रहयुद्ध के विचार में प्रकाशमान ग्रहों तथा राहु-केतु की कोई भूमिका नहीं बताई गई है फिर भी ग्रहों के बीच समीपता को महत्त्व अवश्य देना चाहिए। सूर्य, राहु तथा केतु से अत्यधिक समीपता किसी भी ग्रह तथा उसके कारकत्व को नष्ट कर सकती है तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से प्रतिकूल फल दे सकती है।

मंगल तथा केतु तथा कभी-कभी शनि यदि जन्म के समय दशानाथ से सम्बन्धित हों तो शल्य चिकित्सा को सूचित करते हैं। जब पाप प्रभाव कम तथा शुभ प्रभाव अधिक हो तो आरोग्य होता है। होने वाली घटनाओं को स्पष्टतया चित्रित करने के लिए यह आवश्यक है कि बालारिष्ट तथा अरिष्ट-भंग योगों को दशा-क्रम के साथ जोड़कर विचार किया जाए। किसी प्रतिकूल घटना की पुष्टि करने के लिए कम से कम दो दशाओं का प्रयोग किया जाना चाहिए। चिकित्सा ज्योतिष में भली-भांति सफल होने के लिए यह आवश्यक है कि शिशु के जन्म समय से ही दशा तथा दशा-क्रम का विचार किया जाए।

नवम अध्याय

आरोग्य विचार

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।

शस्त्र इसे (आत्मा को) काट नहीं सकता, अग्नि इसे जला नहीं सकती,
जल इसे गीला नहीं कर सकता और वायु इसे सुखा नहीं सकता।

–गीता II-23

चिकित्सा संबंधी एक प्रसिद्ध सिद्धान्त यह है कि जब कुछ व्यक्तियों को किसी संक्रामक रोग के प्रभाव में रखा जाए तो केवल कुछ व्यक्ति ही रोग से ग्रस्त होते हैं। तथा शेष प्रभावित नहीं होते। भीषण महामारी के समय अनेक व्यक्ति महामारी से अछूते रह जाते हैं। वंशानुगत रोगों के मामले में भी यह आवश्यक नहीं है कि माता-पिता की सभी संतानों को भी वही रोग हो। इसकी व्याख्या करने के लिए बहुत से चिकित्सकीय स्पष्टीकरण दिए गए हैं। सबसे योग्य स्पष्टीकरण संक्रामक रोग के प्रति वंशानुगत या जन्मजात प्रतिरोधकता है।

रोग के प्रति संवेदनशीलता हर व्यक्ति में अलग-अलग होती है। रोग के होने में केवल जीवाणु की प्रचण्डता ही महत्त्वपूर्ण नहीं होती वरन् शरीर में रोग के प्रति प्रतिरोधकता तथा शरीर में रोग के लिए उचित वातावरण भी कारण होते हैं। उदाहरण के लिए जो लोग किसी क्षयकारक रोग से, अपर्याप्त पोषण, अथवा मधुमेह रोग से पीड़ित होते हैं वे विभिन्न रोगों का आसानी से ग्रास बन जाते हैं। समुचित टीकाकरण द्वारा रोगों से सुरक्षित व्यक्ति आसानी से रोग ग्रहण नहीं करता। जन्मजात शारीरिक प्रतिरोधक शक्ति तथा जीवाणु के प्रजनन के लिए शरीर में उपयुक्त वातावरण का न होना, रोग से बचाव के महत्त्वपूर्ण घटक होते है। यही सिद्ध करने के लिए एक बार एक माइक्रोबायोलोजिस्ट ने हैज़ा के असंख्य जीवाणुओं को वैज्ञानिकों की उपस्थिति में पी लिया था लेकिन उसे हैज़ा नहीं हुआ।

चिकित्सा ज्योतिषियों को चिकित्सा विज्ञान के उदाहरणों को मस्तिष्क में रखना चाहिए। ज्योतिषीय संकेत ही किसी एक कुण्डली में अच्छे स्वास्थ्य को तथा दूसरी कुण्डली में बुरे स्वास्थ्य को दर्शाते हैं। 'स्वस्थ' कुण्डली में साधारण पाप दशा बिना ध्यान बंटाए व्यतीत हो जाती है तथा केवल अति पापी दशा प्रतिकूल सिद्ध होती है। अन्य कुण्डली में जो दुर्बल शरीर को इंगित करती है, साधारण पाप दशा या अशुभ गोचर स्वास्थ्य में बड़ा प्रतिकूल परिवर्तन कर सकते हैं। अतः एक ज्योतिषी के लिए कुण्डली में खराब स्वास्थ्य को ज्ञात करने के लिए जन्मजात प्रतिरोधकता देखना अति आवश्यक है।

अच्छे या बुरे स्वास्थ्य का निर्णय करने के विभिन्न तथ्य नीचे वर्णित हैं। यहां पर जो नियम दिए गए हैं, उन्हें वर्ग कुण्डलियों में भी लगाकर देखना चाहिए।

अच्छे स्वास्थ्य के सूचक

अच्छे स्वास्थ्य को दर्शाने वाले विभिन्न तथ्य निम्नलिखित हैं:

1. *बली लग्न*

   किसी भी जन्मपत्री में लग्न अकेला ही सबसे महत्त्वपूर्ण घटक होता है। ग्रह तो लग्न के ही अधीन होते हैं। लग्न व्यक्ति के स्वास्थ्य की स्थिति को इंगित करता है। निम्नलिखित अवस्थाओं में लग्न बली होता है:

   (i) *वर्गोत्तम*: जन्म लग्न तथा नवांश लग्न एक ही हो तो वर्गोत्तम लग्न कहलाता है। वर्गोत्तम होना विशेष बलदायक है।

   (ii) *शुभ ग्रहों की स्थिति*: लग्न में नैसर्गिक शुभ ग्रहों जैसे गुरु, शुक्र तथा अपीड़ित बुध की स्थिति अच्छे स्वास्थ्य को सूचित करती है। यदि नैसर्गिक शुभ ग्रह, शुभ भावों, जैसे त्रिकोण, के स्वामी भी हों तो और शुभ हो जाते हैं।

   (iii) *शुभ दृष्टि*: लग्न पर शुभ ग्रहों की दृष्टि अतिरिक्त वांछित घटक है।

   (iv) *लग्नेश की स्थिति*: कोई भी भाव अपने स्वामी की उपस्थिति से बली हो जाता है तथा उसके परिणाम उत्साहवर्धक होते हैं। लग्न स्वास्थ्य का सूचक है इसलिए लग्नेश की युति या दृष्टि से लग्न बली हो जाता है।

(v) *राजयोग*: राजयोग शुभ योग होते हैं। विभिन्न राजयोगों का प्रभाव योग बनाने वाले ग्रहों द्वारा अधिष्ठित भावों पर निर्भर करता है। जब कोई राजयोग लग्न में बन रहा हो तो यह लग्न को बल प्रदान कर स्वास्थ्य को उन्नत करता है।

2. *बली लग्नेश*

किसी भी भाव से जो प्रदर्शित होता है वही उसके स्वामी से भी होता है। किसी भाव के फल उत्तम होते हैं जब उसका स्वामी बली तथा शुभ स्थिति में हो। कोई ग्रह बली हो जाता है यदि–

(i) वह उच्च राशि में हो।

(ii) वर्गोत्तम हो अर्थात राशि व नवांश कुण्डली में एक ही राशि में हो।

(iii) अपनी राशि में हो।

(iv) मित्र राशि में हो।

(v) केन्द्र, त्रिकोण, दूसरे अथवा ग्यारहवें भाव में हो।

(vi) शुभ ग्रहों अथवा मित्र ग्रहों से युक्त अथवा दृष्ट हो।

(vii) राजयोग बना रहा हो।

3. *लग्न या लग्नेश का शुभ-मध्य होना*

लग्न या लग्नेश से दूसरे अथवा बारहवें स्थान में यदि शुभ ग्रह स्थित हों तो शुभ-मध्य योग होता है। यह स्वास्थ्य के लिए शुभता का सूचक है। कोई भी भाव या ग्रह शुभ ग्रहों के मध्य हो तो अच्छे फल देता है।

4. *अपीड़ित चन्द्र*

बली चन्द्र स्वास्थ्य तथा आयु के लिए अनुकूल होता है। पीड़ित चन्द्र से संबंधित अनेक अरिष्ट योगों का वर्णन पहले ही हो चुका है। बली अपीड़ित चन्द्र, उत्तम मानसिक स्वास्थ्य के लिए अच्छा है। चन्द्र के दोनों ओर शुभ दुरुधरा का होना अच्छे शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य का द्योतक होता है।

5. *3, 6, 11 भावों में पाप ग्रह*

प्रतिकूल भावों 3, 6 तथा 11 अर्थात् त्रिषडाय भावों को महर्षि पराशर ने अशुभ माना है। इन भावों में पाप ग्रहों का होना अच्छे स्वास्थ्य का सूचक होता है। इन भावों में पाप ग्रह शारीरिक शक्ति देते हैं, रोगों को नष्ट करते हैं तथा रोग प्रतिरोधकता बढ़ाते हैं।

6. *त्रिकोण में शुभ ग्रह*

त्रिकोण स्थान में शुभ ग्रह की स्थिति भी स्वास्थ्य के लिए अच्छी होती है।

7. *केन्द्र में शुभ ग्रह*

केन्द्र स्थान जन्मपत्री के स्तम्भ होते हैं। यद्यपि ज्योतिष के प्रसिद्ध आचार्यों ने शुभ ग्रहों के केन्द्रेश होने की प्रशंसा नहीं की है, लेकिन केन्द्र में उनकी स्थिति को अच्छे स्वास्थ्य के लिए वांछित बताया है। यहां पर यह स्पष्ट किया जाना आवश्यक है कि जब ये ग्रह वक्री हों तो रोग से कोई बचाव नहीं करते। इसके बदले वे रोगोत्पत्ति का कारण होते हैं।

8. *अष्टम भाव में शनि की स्थिति*

अष्टम स्थान आयु का स्थान है। शनि आयुःकारक ग्रह है। ज्योतिषीय नियम के अनुसार कोई कारक ग्रह यदि उस भाव में स्थित हो जिसका वह कारक है तो उस भाव के फलों को नष्ट करता है। उदाहरण के लिए पिता का कारक सूर्य नवें भाव (पितृ भाव) में स्थित होकर पिता के लिए हानिकर होता है। मातृ कारक चन्द्र चतुर्थ स्थान (मातृ स्थान) में माता के लिए अशुभ होता है। सहोदर का कारक मंगल तृतीय भाव (सहज भाव) में सहोदर के लिए विपरीत फल करेगा। परन्तु शनि अपवाद है। आयुःकारक शनि यदि अष्टम भाव में हो तो अच्छा स्वास्थ्य तथा लम्बी आयु देता है।

9. *राशियों की प्रकृति*

भचक्र की बारह राशियां अपनी प्रकृति के अनुसार या तो रोग का प्रतिरोध करती हैं या उन्हें निमन्त्रित करती हैं। अग्नि तत्त्व राशियां (1, 5, 9) रोग की उत्तम प्रतिरोधक हैं तथा पुनः शीघ्र स्वास्थ्य लाभ कराती हैं। अगले क्रम में पृथ्वी तत्त्व राशियां (2, 6, 10) हैं जो कुछ कम प्रतिरोधकता रखती है। वायु तत्त्व राशियां (3, 7, 11) अगले क्रम में हैं। जल तत्त्व राशियां (4, 8, 12) रोगों के प्रति संवेदनशील हैं। इनकी प्रतिरोधकता कम है तथा रोग होने पर धीमी गति से स्वास्थ्य लाभ कराती है।

10. *बली अष्टमेश*

बली अष्टमेश अच्छे स्वास्थ्य की पुष्टि करता है।

11. *बली आत्मकारक*

ज्योतिष शास्त्र की जैमिनि पद्धति में आत्म कारक ग्रह वह होता है

जिसने किसी भी राशि में अधिकतम अंश प्राप्त किए हों। बली तथा शुभस्थित आत्मकारक अच्छे स्वास्थ्य को दर्शाता है।

पाराशरी पद्धति में आत्मकारक के स्थान पर सूर्य को लिया जा सकता है। सूर्य ऊर्जा तथा चेतना का प्रतिनिधित्व करता है। यदि कुण्डली में सूर्य बली है तो सामान्यतः स्वास्थ्य अच्छा रहेगा।

12. *गुलिक की स्थिति*

गुलिक (मान्दि) शनि का पुत्र है तथा पिता से अधिक पापी माना गया है। अन्य पाप ग्रहों की भांति मान्दि भी 3, 6, 11 भावों में स्वास्थ्य के लिए अच्छा है (यदि यह लग्नेश व चन्द्र को पीड़ित न करे तो)।

13. *सर्वाष्टक वर्ग में 1 व 8 भाव*

अष्टकवर्ग रेखाओं के आधार पर विभिन्न भावों या ग्रहों का बलाबल ज्ञात करने की प्रणाली है। यह एक व्यापक प्रणाली है जिसका उपयोग दशाओं तथा गोचर के साथ अधिक सटीकता से किया जा सकता है। विभिन्न ग्रहों के योगदान से प्राप्त सर्वाष्टक वर्ग किसी भी भाव की कुल शक्ति रेखा के रूप में सूचित करता है। सर्वाष्टक वर्ग के अनुसार यदि लग्न तथा अष्टम भाव बली हों तो ये अच्छे स्वास्थ्य के सूचक हैं।

अच्छे स्वास्थ्य के लिए यह अनिवार्य नहीं कि उपरिलिखित सभी तत्त्व उपस्थित हों। स्पष्टतः इनमें से जितने तत्त्व अधिक उपस्थित होंगे उतना ही उत्तम स्वास्थ्य होगा।

अस्वस्थता के सूचक तत्त्व

अच्छे स्वास्थ्य को दर्शाने वाले योगों के ठीक विपरीत परिस्थिति बुरे स्वास्थ्य की सूचक होती हैं।

1. *दुर्बल लग्न*

निम्नलिखित परिस्थितियों में लग्न दुर्बल हो जाता है:

(i) पाप ग्रहों की उपस्थिति से।

(ii) प्रतिकूल भावेशों तथा नैसर्गिक पाप ग्रह दोनों की दृष्टि से।

(iii) लग्न में नीच ग्रह की उपस्थिति से।

(iv) लग्न में उपस्थित प्रतिकूल योगों से।

2. *दुर्बल लग्नेश*

लग्नेश दुर्बल हो जाता है यदि वह–

(i) नीच राशि में हो।

(ii) अस्त हो।

(iii) शत्रु राशि में हो।

(iv) प्रतिकूल भावों जैसे 6, 8, 12 में हो।

(v) पाप ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो।

3. *लग्न या लग्नेश पर पापकर्तरी योग।*

लग्न अथवा लग्नेश से दूसरे तथा बारहवें स्थान में स्थित पाप ग्रह स्वास्थ्य के लिए प्रतिकूल होते हैं। इसे पापकर्तरी योग कहते हैं।

4. *पीड़ित चन्द्र*

चन्द्र की दु:स्थिति, इसका नीच होना, पाप ग्रहों से पीड़ित होना, पाप दुरुधरा होना ये सभी स्वास्थ्य के लिए प्रतिकूल हैं।

5. *3, 6, 11 भावों में पाप ग्रहों का न होना*

इन भावों में पाप ग्रहों की अनुपस्थिति एक दुर्बल पक्ष है जिसका अन्य शुभ योगों से ही निरस्त होना सम्भव है।

6. *त्रिकोण में पाप ग्रह*

त्रिकोण में पाप ग्रहों की स्थिति वांछनीय नहीं है।

7. *केन्द्र में पाप ग्रह*

शुभ ग्रहों के विपरीत केन्द्र के स्वामी होकर नैसर्गिक पाप ग्रह अशुभ नहीं होते। परन्तु वे केन्द्र में स्थित होकर अशुभ फल ही देते हैं। यदि वे वक्री हों तो और भी अशुभ हो जाते हैं।

8. *अष्टम भाव में अशुभ ग्रह*

अष्टम भाव रोग की दीर्घकालिकता तथा असाध्यता से संबंधित है। अष्टम भाव में शनि को छोड़कर अतिरिक्त पापग्रह रोग की जटिलता को बढ़ाते हैं। शुभग्रह यथाशक्ति रोग का प्रतिकार करते हैं।

9. *दुर्बल अष्टमेश*

जैसे बली अष्टमेश स्वास्थ्य के लिए अच्छा है वैसे ही दुर्बल तथा पीड़ित अष्टमेश विपरीत फलदायक सिद्ध होता है।

10. *दुर्बल आत्मकारक*

    दुर्बल आत्मकारक या दुर्बल सूर्य अच्छा स्वास्थ्य नहीं देते।

11. *गुलिक की स्थिति*

    गुलिक जब केन्द्र या त्रिकोण में हो तो यह प्रतिकूल परिणाम देता है। लग्न, लग्नेश, सूर्य या चन्द्र से इसकी युति स्वास्थ्य के लिए अच्छे संकेत नहीं देती।

12. *सर्वाष्टक वर्ग में 1 तथा 8 भाव*

    सर्वाष्टक वर्ग में इन भावों का अपेक्षाकृत दुर्बल होना दुर्बल स्वास्थ्य का सूचक है।

यहां पर यह वताना अनिवार्य है कि केवल एक तथ्य के आधार पर बुरे स्वास्थ्य की भविष्यवणी नहीं करनी चाहिए। किसी रोग के प्रकट होने के लिए इनमें से कई की उपस्थिति अनिवार्य है। भविष्यवाणी के पहले प्रतिकूल घटकों की उपस्थिति को अच्छे स्वास्थ्य के घटकों के समकक्ष भली भांति जांच लेना चाहिए।

आरोग्य या पुनः स्वास्थ्य लाभ के संकेत

हम सभी कभी न कभी बुरे स्वास्थ्य से कष्ट पाते हैं। निम्नलिखित तथ्य सामान्यतः आरोग्य तथा पुनः स्वास्थ्य लाभ के संकेत देते हैं:

1. *बली लग्न*

   स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए लग्न अकेला ही परम आवश्यक घटक है। बली लग्न तथा लग्नेश रोग से पुनः स्वास्थ्य लाभ को सुनिश्चित करते हैं।

2. *बली षष्ठेश*

   षष्ठ भाव तथा षष्ठेश का बली होना अच्छे शारीरिक प्रतिरोध तथा रोग से पुनः स्वास्थ्य लाभ का वचन देता है।

3. *अनुकूल दशा*

   अनुकूल महादशा (म.द.) तथा अन्तर्दशा (अं.द.) रोग मुक्ति को सुनिश्चित करती है। आने वाली दशा का विचार महत्त्वपूर्ण है। यदि रोगकारक दशा चल रही हो तथा आने वाली दशा अनुकूल हो तो पुनः स्वास्थ्य लाभ को इंगित करती है। यदि आने वाली दशा प्रतिकूल हो तो यह स्वास्थ्य लाभ को नहीं वरन् जटिलता को दर्शाती है। जब एक के बाद

एक आने वाली दशाएं सभी प्रतिकूल हों तो पुनः स्वास्थ्य लाभ नहीं होता है।

4. *शुभ गोचर*

   यदि गोचर शुभ फलों को सूचित करता हो तो आरोग्य होता है।

5. *गुरु की दृष्टि*

   गुरु सर्वोत्तम तथा प्रबलतम नैसर्गिक शुभ ग्रह है। जब यह जन्म कुण्डली में या गोचर में दशा स्वामियों को देखता है तो यह पुनः स्वास्थ्य लाभ तथा अच्छे स्वास्थ्य के लिए अनुकूल होता है।

कुण्डली संख्या 9.1

यह कुण्डली "प्रोग्रेसिव मस्क्यूलर डिस्ट्रोफी" (progressive muscular dystrophy) के एक रोगी की है जिसे चलने में अथवा लेटकर फिर बैठने या उठने में कठिनाई होती है।

लग्नेश, जो अष्टमेश भी है, सप्तम भाव में सूर्य तथा षष्ठेश बुध के साथ स्थित है। पापी शनि इस युति को देख रहा है। सूर्य, मंगल तथा शनि, तीन नैसर्गिक पाप ग्रह केन्द्र में हैं। केन्द्र में जो दो शुभ ग्रह हैं उनमें से एक बुध वक्री तथा प्रतिकूल तृतीयेश तथा षष्ठेश है जबकि दूसरा गुरु द्वादशेश तथा नीच है।

जन्म के समय विंशोत्तरी दशा मंगल-शुक्र-गुरु थी जो जन्मजात रोग होने को सूचित करती है। मंगल (लग्नेश तथा) अष्टमेश है तथा षष्ठेश से युक्त होकर लग्न को देख रहा है। शुक्र (द्वितीयेश तथा सप्तमेश) मारक है तथा नीच

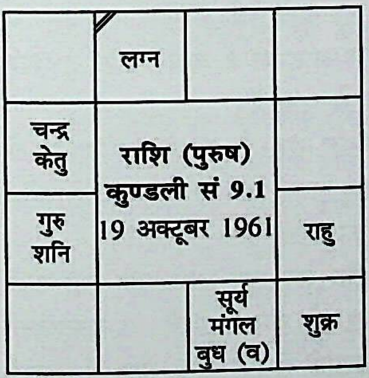

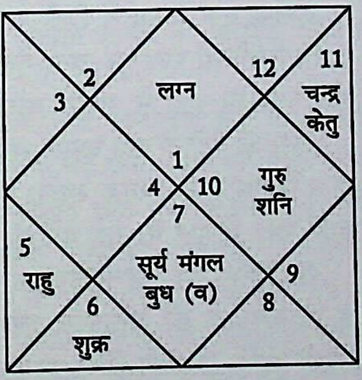

लग्न	29°35'	मंगल	18°49'	शुक्र	08°28'
सूर्य	02°37'	बुध (व)	09°44'	शनि	00°18'
चन्द्र	04°02'	गुरु	05°04'	राहु	02°06'

होकर षष्ठ भाव में है। गुरु द्वादशेश होकर नीच राशि में है तथा अन्य पाप ग्रह से युक्त है। चन्द्र केतु से पीड़ित है तथा नवांश नीच राशि में है।

जन्म के समय योगिनी दशा पिंगला-सिद्धा (सूर्य-शुक्र) थी। सूर्य सप्तम भाव में नीच है तथा षष्ठेश व अष्टमेश से युक्त है तथा शनि से दृष्ट है। शुक्र छठे स्थान में नीच है, जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

कुण्डली संख्या 9.2

तीन पाप ग्रह तथा द्वादशेश चन्द्र केन्द्र में स्थित हैं। लग्न पाप-मध्य में पीड़ित है। पापी वक्री शनि लग्न तथा चन्द्र को पीड़ित कर रहा है।

		केतु	शुक्र
चन्द्र शनि (व)	राशि (स्त्री) कुण्डली सं 9.2 8 जून, 1993		सूर्य बुध
			लग्न
	राहु		मंगल गुरु

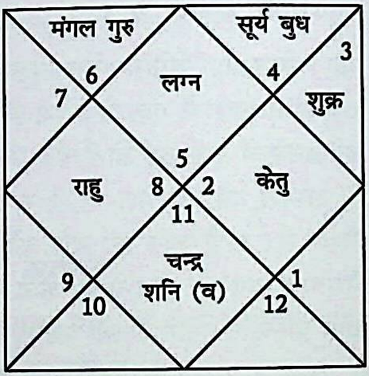

लग्न	11°32'	मंगल	02°30'	शुक्र	10°59'
सूर्य	19°52'	बुध	00°45'	शनि (व)	04°13'
चन्द्र	29°58'	गुरु	06°46'	राहु	16°06'

जातक एक कन्या है जिसे जन्म से ही दोनों नेत्रों में रोग है। जन्म के समय विंशोत्तरी दशा गुरु-चन्द्र-गुरु है। गुरु अष्टमेश है जबकि चन्द्र द्वादशेश होकर सप्तम भाव में, षष्ठेश वक्री शनि से युक्त है।

जन्म की योगिनी दशा भ्रामरी-संकटा (मंगल-राहु) है। मंगल अष्टमेश गुरु के साथ द्वितीय स्थान (मारक स्थान) में है। राहु चतुर्थ भाव में षष्ठेश व सप्तमेश वक्री शनि से दृष्ट है। राहु वैसे भी शनि का प्रतिनिधित्व करता है।

इस प्रकार यह कहना उपयुक्त होगा कि जब पाप दशा चल रही होती है तो कुण्डली की वंशानुगत दुर्बलता रोग को जन्म देती है। जन्मकुण्डली किसी व्यक्ति के लिए स्थिर वस्तुस्थिति दर्शाती है कि किस भाव में कितनी अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता है। दशा गतिशील घटक है जो इस वस्तुस्थिति के फलीभूत होने के समय का निर्णय करती है।

<u>दशम अध्याय</u>

रोगोत्पत्ति का समय एवं परिणाम

व्याधेरनिष्टसंस्पर्शाच्छ्रमादिष्टविवर्जनात्।
दुःखं चतुर्भिः शारीरं कारणैः सम्प्रवर्तते।।

'रोग का प्रकोप, शरीर में अनिष्ट अवाञ्छित संक्रमण, अत्यधिक परिश्रम एवं प्रकृति के विरुद्ध आचार – इन चार कारणों से शारीरिक कष्ट का उदय होता है।'

– महाभारत, आरण्यपर्व,
अ. 2 श्लोक 22

रोगों के प्रकोप की सम्भावित परिस्थितियों की पहचान और रोगोत्पत्ति हो जाने पर उसके परिणाम की दिशा व दशा का आकलन करना 'चिकित्सा ज्योतिष' का मुख्यतया विचारणीय श्रेत्र है। पृच्छक या परामर्श करने का इच्छुक अपने स्वास्थ्य के विषय में सजग हो, और रोगग्रस्त होने पर वह विद्यमान रोग के परिणाम को जानने को भी उत्सुक हो, यह बात बहुत स्वाभाविक है। चिकित्सक भी रोगपीड़ा की अनुमानित अवधि जानने की भरसक कोशिश करता है।

चिकित्सक का कार्यक्षेत्र रोग के प्रकोप की सम्भावना होने पर अथवा रोग हो जाने पर ही प्रारम्भ होता है, जबकि यह एक महत्त्वपूर्ण बात है कि चिकित्सा ज्योतिषी जीवन काल में सम्भावित रोगों की भविष्यवाणी बहुत समय पहले ही कर सकता है। इसी कारण चिकित्सा ज्योतिषी का कार्यक्षेत्र रोग के सम्भावित प्रकोप या रोगोत्पत्ति के साथ ही शुरू न होकर, उससे बहुत पहले, व्यक्ति के सर्वथा नीरोग रहने की दशा में भी आरम्भ हो सकता है। और यही बात उसके उत्तरदायित्व के दायरे को बहुत बड़ा कर देती है।

सामान्यतया रोगी या उसका कोई निकट सम्बन्धी चिकित्सक के पास आकर रोगविकार का विवरण प्रस्तुत करता है और चिकित्सक उसकी

शारीरिक परीक्षा के उपरान्त अपने किसी निष्कर्ष को पुख्ता करने के लिए जांच पड़ताल की प्रयोगशाला विधियों का भी कदाचित् अवलम्बन लेता है। तत्पश्चात् स्वास्थ्य लाभ के लिए औषध चिकित्सा और कभी-कभी शल्याक्रिया का मार्ग भी अपनाया जाता है।

इसके विपरीत चिकित्सा ज्योतिषी रोगोत्पत्ति की सम्भावनाओं के आकार ग्रहण करने से बहुत समय पूर्व व्यक्ति के सम्भावित रोगों की प्रारम्भिक पहचान करके, उनके प्रकोप का समय निर्देश भी ग्रहस्थिति व दशा आदि के माध्यम से कर सकता है। पृच्छक के रोगी होने की दशा में भी वह रोग के प्रकोप की सम्भावित अवधि, रोग का परिणाम तथा रोगपीड़ा का स्तर बता ही सकता है। हां, रोग की सही पहचान या निदान करके चिकित्सा ज्योतिषी इलाज नहीं करता है। यह कार्य तो चिकित्सक का ही होगा।

इस प्रकरण में ज्योतिषीय नियमों का विवेचन कुछ इस तरह से करने का प्रयत्न किया जा रहा है, ताकि एक ज्योतिषी, जातक के रोग की अवधि व परिणाम का कुछ विश्वसनीय आकलन कर सके। महर्षि पराशर द्वारा बताए गए रोगयोगों का विवरण देकर उनकी इयत्ता व आधुनिक परिप्रेक्ष्य में उपयोगिता को समझने हेतु रोगी जातकों की वास्तविक कुण्डलियों पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार किया गया है। रोग की सही डॉक्टरी पहचान करने की विधि पर बल न देते हुए, रोगों का विवरण भर प्रस्तुत कर दिया गया है। इससे पाठकों की रुचि विषय में बनी रहेगी। यह प्रकरण लेखक के शोधपरक लेख 'रोगः उत्पत्ति तथा परिणाम' का ही विस्तृत रूप है।

ज्योतिषीय विचारसरणी

वैदिक ज्योतिष इस सन्दर्भ में एक विशेष अनूठापन लिए हुए है। दशा, अन्तर्दशा और प्रत्यन्तर्दशादि के विचार से घटनाओं के घटित होने को विश्वसनीय ढंग से समयबद्ध किया जा सकता है। दशाओं के अनेक भेद होते हुए भी, भारतवर्ष में विंशोत्तरी और योगिनी दशाओं का प्रयोग बहुतायत से होता है।

यद्यपि किसी भी एक दशाभेद का कुशल प्रयोग परिणाम प्राप्त करने में निःसन्देह सहायक ही नहीं मार्गदर्शक भी होगा, फिर भी किसी एक तरीके से प्राप्त परिणामों की पुष्टि अन्य दशा पद्धति से कर लेना भी युक्ति-युक्त होगा। अब हम विचार पद्धति को क्रमशः समझेंगे।

1. विंशोत्तरी दशा

एक सौ बीस वर्षों को नौ ग्रहों या दशापतियों में एक निश्चित अनुपात में बांट देने के कारण इसका विंशोत्तरी नाम सार्थक है।

1. दशा के माध्यम से सूक्ष्मतर परिणाम प्राप्त करने के लिए हमें विंशोत्तरी दशा को दशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तर्दशा तक अवश्य निकाल लेना चाहिए। किसी घटना की सम्भावित समय सीमा महादशा में काफी बड़ी होती है, अतः महादशा द्वारा संकेतित परिणाम को ही क्रमशः अन्तर्दशा द्वारा अपेक्षाकृत छोटी समयावधि में समेटकर, प्रत्यन्तर्दशा द्वारा परिणाम घटित होने की सीमा को पुनः परिष्कृत करके सूक्ष्मतर बना लिया जाता है। आगे दशान्तर्दशा शब्द द्वारा इन तीनों को एक साथ समझना चाहिए।
2. वास्तव में रोग शरीर की प्राकृतिक अवस्था, कार्यप्रणाली एवं भीतरी व्यवस्था में उत्पन्न होने वाला विकार ही है। ज्योतिष में लग्न व लग्नेश को व्यक्ति के शरीर का प्रतिनिधि या नियामक कहा जाता है। अतः यह स्वाभाविक ही है कि लग्न तथा लग्नेश की राशि तथा स्थिति वर्ग कुण्डलियों में जातक के स्वास्थ्य, आरोग्य और शरीरसुख का संके दे।
3. महर्षि पराशर ने प्रत्येक लग्न के लिए कुछ अशुभ या पाप और मारक ग्रहों का उल्लेख किया है। अशुभ वर्ग में स्वभाविक पाप ग्रह और लग्न विशेष के लिए प्रतिकूल फलदायक ग्रहों का ग्रहण है। अतः जब प्रतिकूल फलदायी ग्रह या मारक ग्रह की दशान्तर्दशा आए तो उस दौरान शरीर कष्ट, रोगादि की सम्भावना हो सकती है। इन दशाओं में जातक की रोगग्रस्तता की सम्भावनाएं प्रबल होती हैं। अतः रोगविचार के सन्दर्भ में प्रतिकूल व मारक दोनों प्रकार के ग्रहों की दशा का विचार अवश्य करना चाहिए।
4. लग्न व लग्नेश शरीर के प्रतिनिधि होने के कारण, इन दोनों के साथ किसी भी प्रकार से दशानाथ का सम्बन्ध स्वास्थ्य के लिए यथावसर अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव पैदा करेगा। अतः प्रतिकूल या मारक ग्रहों का सम्बन्ध लग्न या लग्नेश से होने पर इनकी दशान्तर्दशा में शरीर पर अधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।
5. यह कुप्रभाव और अधिक उग्र हो जाएगा, जब लग्न व लग्नेश व दशेश

स्वयं भी पाप पीड़ित होंगे। दशेशों या शरीर के प्रतिनिध तत्त्वों (लग्न व लग्नेश) का सम्बन्ध यदि त्रिक भावों (6, 8, 12) या त्रिकेशों के साथ भी हो तो प्रतिकूल परिणाम कुछ और उग्र हो जाएंगे।

6. खर द्रेष्काण (22वां द्रेष्काण) और खर नवांश (64वां नवांश) में स्थित ग्रहों अथवा इनके स्वामी ग्रहों की दशान्तर्दशा भी शरीर के लिए घातक परिणाम देने वाली होती हैं।
7. लग्न, लग्नेश व दशेश यदि राहु-केतु से युक्त हों तो यह अतिरिक्त प्रतिकूल कारण होता है। जिस स्थान पर राहु हो, वहां से छः राशि आगे केतु होता है, अतः इनमें से किसी एक का योग होने पर राहु युक्त ग्रह पर केतु का प्रभाव आ ही जाता है। इस स्थिति को 'राहु-केतु अक्ष' भी कहते हैं। इस सन्दर्भ में राहु को शनि की तरह और केतु को मंगल की तरह भी समझना चाहिए।
8. लग्न, लग्नेश एवं दशेशों पर शुभयोग-दृष्टि होने पर उनका पाप प्रभाव कम हो जाता है।

2. योगिनी दशा

योगिनी दशा का चक्र छत्तीस वर्षों की होती है। सामान्यतः जीवनकाल में एक, दो या तीन बार दशा चक्र पुनरावृत्त होता है। रोगोत्पत्ति के विषय में ध्यातव्य है कि वह प्रथम, द्वितीय या तृतीय चक्र में कभी यथावसर प्रकट हो सकती है। योगिनी दशा के व्यावहारिक प्रयोग हेतु पाठकों को 'Applications of Yogini Dasha' नामक पुस्तक देखनी चाहिए।

1. योगिनी दशा में महादशा व अन्तर्दशा अवश्य देखनी चाहिए।
2. योगिनी के आठ दशेशों को आठ ग्रहों से सम्बद्ध किया गया है, क्योंकि राहु-केतु को यहां एक ही ग्रह के समान माना जाता है। अतः योगिनी दशान्तर्दशा को सम्बद्ध ग्रहों की दशान्तर्दशावत् समझकर निष्कर्ष निकालना चाहिए।
3. योगिनी दशा को ग्रहवत् समझकर, ग्रहों की शुभाशुभता का निर्णय विंशोत्तरी मतानुसार ही किया जाता है।

3. वर्ग चक्र

चिकित्सा सन्दर्भों में षड्वर्गों में से कम से कम राशि, द्रेष्काण, नवांश तथा द्वादशांश को अवश्य देखना चाहिए। इन वर्ग कुण्डलियों में लग्न, लग्नेश व

दशास्वामी की राश्यादि स्थिति का विचार अनिवार्य है। यदि सम्भव हो तो अन्य वर्ग चक्रों का भी अवलोकन करना चाहिए।

4. लग्न चक्र बल

लग्न व लग्नेश की शुभाशुभता व बलवत्ता के विवेक के साथ लग्न चक्र की समवेत शुभाशुभता का भी विचार करना चाहिए। इस प्रसंग में निम्नलिखित बिंदुओं पर विशेष रूप से ध्यान दें।

1. केन्द्र में बलवान शुभग्रह रोग के प्रतिरोधक का काम करते हैं, जबकि पाप ग्रह आरोग्य में कमी प्रदर्शित करते हैं।
2. पाप ग्रहों की 3, 6, 11 भावों में स्थिति प्रतिरोध, शारीरिक शक्ति एवं मनोबल की सुचारु स्थिति इंगित करती है।
3. केन्द्र में वक्री शुभग्रह प्राय: कोई विशेष सुरक्षा प्रदान नहीं करते, अपितु वे अपनी दशान्तर्दशा में व्यक्ति को रोगोन्मुख कर सकते हैं। केन्द्र में वक्री पापग्रह अधिक कुप्रभावी हो जाते हैं।

नोट: यहां हमारा तात्पर्य स्वाभाविक शुभ व पाप ग्रहों से है।

ज्योतिषीय नियमों को व्यवहार में कैसे लाएं:

उपर्युक्त नियमों को वास्तविक जन्म कुण्डलियों पर लागू करते समय इन बातों को ध्यान में रखना चाहिए।

1. वर्तमान दशान्तर्दशा के स्वामियों की शुभाशुभता लग्नानुसार करके, प्रत्येक लग्न के लिए उनकी कारकता या मारकता का निर्णय करें।
2. दशान्तर्दशाओं का लग्न व लग्नेश से सम्बन्ध निश्चय करें। एतदर्थ इन सूत्रों का अनुगमन करें–

   (i) लग्न में स्थित ग्रह की दशा।

   (ii) लग्न पर दृष्टि रखने वाले ग्रह की दशा।

   (iii) स्वयं लग्नेश की दशा।

   (iv) लग्नेश युक्त ग्रह की दशा।

   (v) लग्नेश से दृष्ट ग्रह की दशा।

   (vi) लग्नेश द्रष्टा ग्रह की दशा।

   पापी दशान्तर्दशानाथों में से कोई भी उक्त श्रेणी में पड़ता हो तो स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

3. नैसर्गिक पाप ग्रहों, त्रिक स्थानों व त्रिकेशों की युति, दृष्टि या राश्यादि परिवर्तन से निर्मित सम्बन्ध, जब लग्न, लग्नेश के साथ-साथ दशान्तर्दशापति पर भी हो तो आरोग्य या स्वास्थ्य के लिए प्रतिकूल स्थिति समझें।
4. राहु-केतु के योग का महत्त्व भी इस सन्दर्भ में काफी प्रभावी है। यह बात पहले भी कह चुके हैं। राहु-केतु जिस राशि में हों उस राशिपति के सदृश तो फल देते ही हैं, साथी ग्रहों का प्रभाव भी स्वयं प्रतिफलित करते हैं। राहु को शनिवत् व केतु की कुजवत् समझा जाता है।
5. वर्ग चक्रों में भी इस तरह दशानाथों के शुभाशुभत्व की परीक्षा करनी चाहिए-
   (i) दशानाथ यदि वर्ग चक्रों में प्रथम भावगत राशि या जन्म लग्नेश की अधिष्ठित राशि से राशिपतित्व आदि द्वारा कोई सम्बन्ध स्थापित करता हो तो जातक पर दशानाथ का शुभ या अशुभ प्रभाव अधिक होता है।
   (ii) वर्ग चक्रों में दशेश तथा लग्न व लग्नेश की पारस्परिक स्थिति। जैसे, दशेश का वर्गों में लग्न अथवा वर्ग लग्नेश से 6, 8, 12 भावों में होना।
   (iii) वर्गों में दशेश का स्वयं त्रिकभावेश होना या त्रिकेशों से संबंधित होना।
   (iv) पाप ग्रहों में मंगल व शनि की युति या दृष्टि प्रतिकूल प्रभावोत्पादक होती है तथा गुरु दृष्टि या योग कुप्रभाव को नियन्त्रित करता हैं।
   (v) दशेशों का राहु-केतु अक्ष से सम्बन्ध अतिरिक्त हानिकर होता है।
   (vi) दशेश का जन्म लग्न राशि से सम्बन्ध शुभ या अशुभ प्रभाव को घनीभूत करता है।
6. *सुरक्षा देने वाली स्थितियां*: जन्म लग्न चक्र का समवेत बल अधिक होने पर, साधारण अशुभ प्रभाव वाली दशाएं जातक को बहुत पीड़ित नहीं करती हैं। पूर्वोक्त लग्न चक्र फल में निसर्ग शुभग्रहों की केन्द्र-त्रिकोण में स्थिति व निसर्ग पाप ग्रहों की 3, 6, 11 भावों में स्थिति को विशेष महत्त्व देना चाहिए। वक्री होना ग्रह के फल को अनियमित तथा असन्तुलित करता है। अतः वक्री ग्रह की दशा की सावधानी से परीक्षा करनी चाहिए।
7. *दशाक्रम*: किसी प्रतिकूल दशा के तुरन्त बाद कोई शुभ दशान्तर्दशा आए तो प्रतिकूल दशा में उत्पन्न प्रतिकूल प्रभाव शान्त होना शुरू हो जाते हैं।

यदि अगली दशा भी प्रतिकूल प्रभाव वाली हो तो कुप्रभाव प्रायः पुख्ता होते जाते हैं और कभी-कभी अधिक विषम हो जाते हैं। लगातार कई प्रतिकूल दशान्तर्दशा आने पर कुप्रभावों की जटिलता बढ़ती जाती है और मृत्यु भी हो सकती है।

8. *विषम प्रभाव की सीमा*: लग्न, लग्नेश और दशापति पर पड़ने वाले कुप्रभावों या अशुभता के संयोग की मात्रा के आधार पर रोग आदि कुप्रभाव की व्यापकता व घातकता की सीमा का निश्चय करना चाहिए। दशा के दौरान प्रतिकूल गोचर भी हो तो रोगादि अधिक जटिल हो जाते हैं, जबकि शुभगोचर के दौरान कुप्रभाव सीमित हो जाता है और रोग यदि उत्पन्न न हुआ हो तो उसकी उत्पत्ति स्थगित हो जाती है।

उदाहरण प्रदर्शन

उक्त नियमों को अब वास्तविक उदाहरणों पर लागू किया जा रहा है। यहां कम जटिलता वाले उदाहरणों को पहले देखकर, बाद में अधिक जटिल या प्राणघात के उदाहरणों को परखा जाएगा।

कुण्डली संख्या 10.1

यह कुण्डली एक किशोर की है, जिसे पांच साल की अवस्था में बाएं अण्डकोष में पीड़ा व ऐंठन (Torsion of testis) थी। परीक्षण के उपरान्त गेंग्रीन (Gangrene) की सम्भावना को देखते हुए, डॉक्टरों ने 28 अप्रैल 1994 को इसके अण्डकोषों का ऑपरेशन किया।

केन्द्र में तीनों शुभग्रह बुध, गुरु, शुक्र व निसर्ग पापी व वक्री शनि स्थित हैं। छठे स्थान में गुरु से दृष्ट राहु स्थित है। कृष्ण पक्ष व दिन में जन्म होने से अष्टम में चन्द्रमा आरिष्टनाशक है। उच्चगत लग्नेश के साथ लग्न में ही स्थित नीच शुक्र का अशुभ प्रभाव सीमित हो रहा है। लग्न पर दृष्टि रखने वाला वक्री शनि स्वयं गुरु से दृष्ट है। सभी वर्ग चक्रों में लग्न पर शुभ प्रभाव अधिक है।

दशा विचार: सूर्य दशा में शुक्रान्तर में शुक्र का ही प्रत्यन्तर 25 अप्रैल 1994 से 25 जून 1994 तक था।

दशेश सूर्य स्वयं द्वादशेश होकर द्वादश भाव में ही केतु व मंगल के साथ है। द्वादश भाव अस्पताल में भर्ती होने का द्योतक है। नवांश में यही सूर्य

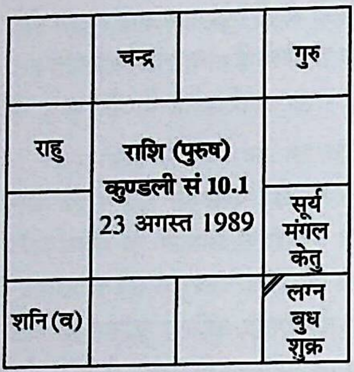

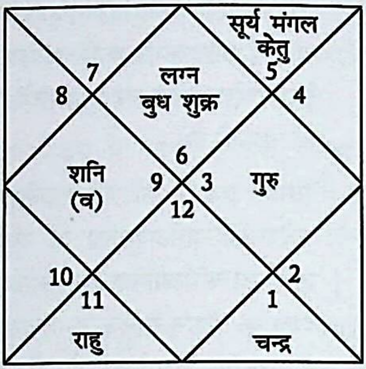

लग्न	02°50'	मंगल	18°39'	शुक्र	12°15'
सूर्य	06°14'	बुध	02°40'	शनि (व)	13°53'
चन्द्र	27°24'	गुरु	10°41'	राहु	02°05'

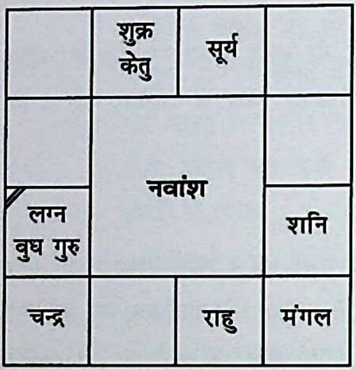

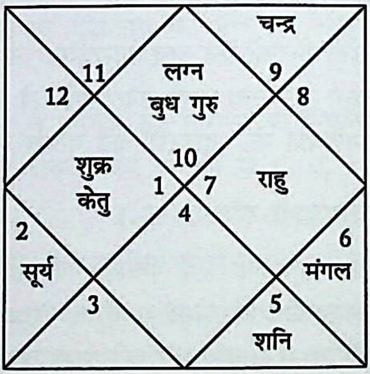

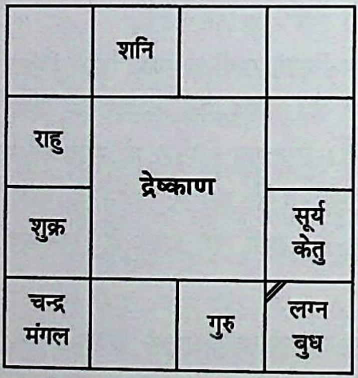

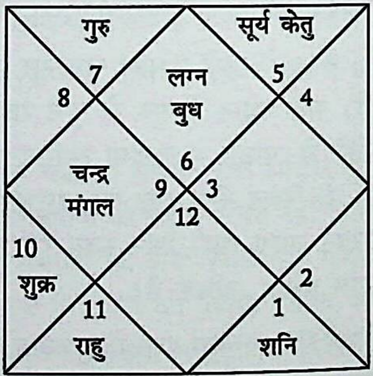

अष्टमेश होकर नवांश लग्नेश शनि से दृष्ट है। द्रेष्काण में सूर्य केतु के साथ द्वादश में है और द्वादशांश चक्र में सूर्य लग्न में नीचगत होकर पापी मंगल से दृष्ट है। अन्तर्दशेश शुक्र लग्न में लग्नेश के साथ बैठकर षष्ठेश शनि

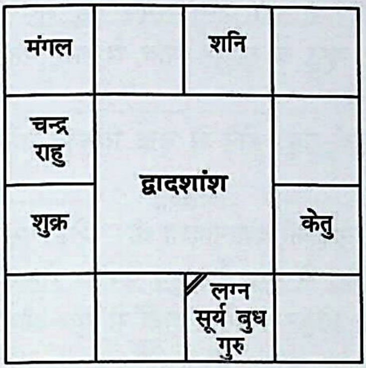

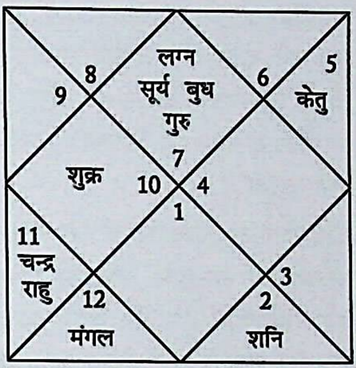

से दृष्ट है। नवांश में शुक्र केतु युक्त होने से राहु-केतु के प्रभाव में है और मंगल से दृष्ट है। द्रेष्काण में शुक्र पर शनि की दृष्टि है और द्वादशांश में शुक्र स्वयं लग्नेश ही है।

योगिनी दशा भी उल्का में भ्रामरी (शनि-मंगल) 24 अक्टूबर 1993 से 24 जून 1994 तक थी। यहां भी दशेश शनि वक्री व षष्ठेश होकर लग्न व लग्नेश को देख रहा है। शनि नवांश में अष्टम में, द्रेष्काण में भी अष्टम में नीचगत है। द्वादशांश में भी शनि अष्टमस्थ ही है।

अन्तर्दशेश मंगल स्वयं अष्टमेश होकर, द्वादश में द्वादशेश व केतु से युक्त है। मंगल की लग्न या लग्नेश से युति नहीं है। नवांश में मंगल शुभ प्रभाव में है। द्रेष्काण में मंगल अष्टमेश होता हुआ भी लग्न या लग्नेश से सम्बन्धित नहीं है। द्वादशांश में षष्ठस्थ मंगल की लग्न पर दृष्टि है। लग्न पर शुभ प्रभाव की अधिकता है।

नोट: (i) मंगल व केतु का पुनः प्रभाव शल्य चिकित्सा को प्रेरित करता है।

(ii) लग्न व लग्न से केन्द्र स्थानों पर व्यापक शुभ प्रभाव आरोग्य लाभ की सूचना देता है। आगामी प्रत्यन्तर्दशेश सूर्य बहुत शुभ नहीं है। अतः आंशिक या विलम्बित आरोग्य को सूचित करता है।

(iii) आगामी योगिनीदशा भद्रिका (बुध) भी वक्र शनि के प्रभाव में होती हुई भी वर्ग चक्रों में शुभ प्रभाव लिए हुए है।

कुण्डली संख्या 10.2

जन्म के समय इस बालक के दोनों वृषण पेट में ही थे, अर्थात् अण्डकोष की थैली में यथास्थान नहीं थे। 2 मई 1994 को इसके अण्डकोषों को

शल्यक्रिया द्वारा उपयुक्त स्थान पर लाया गया था। जन्म समय राहु-सूर्य-बुध की दशा थी, जिनका सम्बन्ध लग्न, षष्ठ व अष्टम भाव से था। यह किसी जन्मजात विकार को इंगित करता है।

योगिनी दशा भी पिंगला में संकटा (सूर्य-राहु) होने से उक्त विकृति को पुष्ट करती है।

दशा विचार: चिकित्सा के समय गुरु-गुरु-बुध की दशान्तर्दशा थी। दशेश गुरु उच्चगत व लग्नद्रष्टा होने पर भी स्वयं केतु से युक्त है। बुध षष्ठेश होकर वक्री मंगल से दृष्ट है। यही बुध नवमेश होकर दशमेश शुक्र से युत और उच्चगत गुरु से दृष्ट होकर शुभ परिणाम का सूचक भी है।

नवांश में बृहस्पति, अष्टमेश शनि से युत होकर नवांश लग्न को देखता है। लग्नेश बुध षष्ठस्थ होकर षष्ठेश मंगल से दृष्ट है।

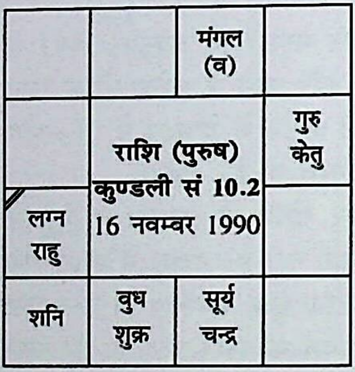

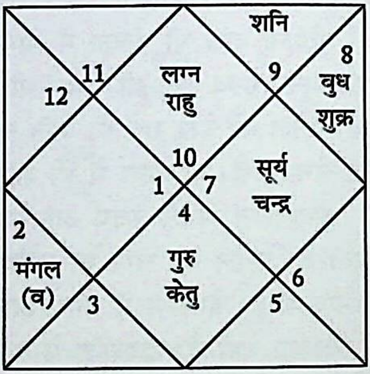

लग्न	17°48'	मंगल (व)	15°53'	शुक्र	03°35'
सूर्य	29°55'	बुध	14°12'	शनि	27°17'
चन्द्र	17°54'	गुरु	19°33'	राहु	06°46'

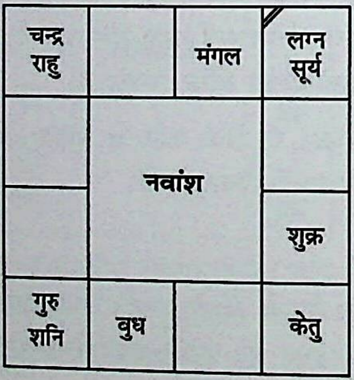

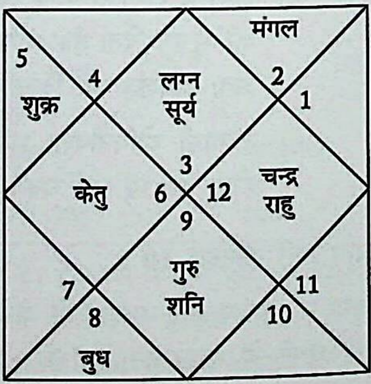

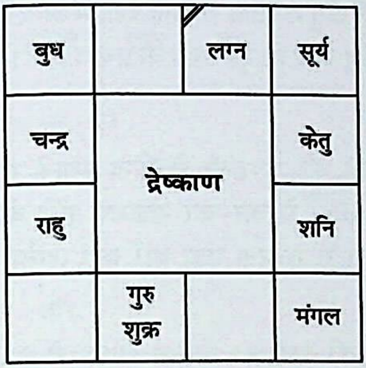

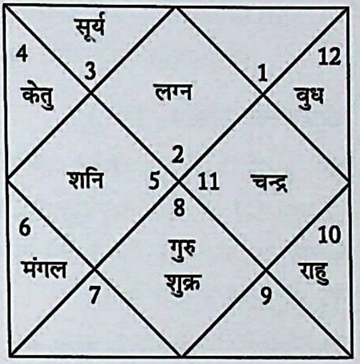

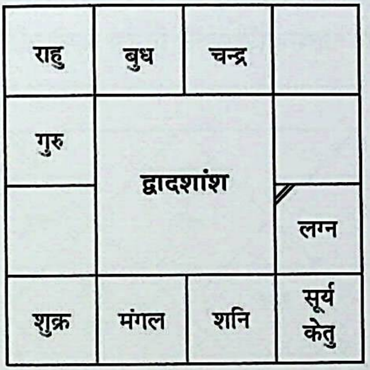

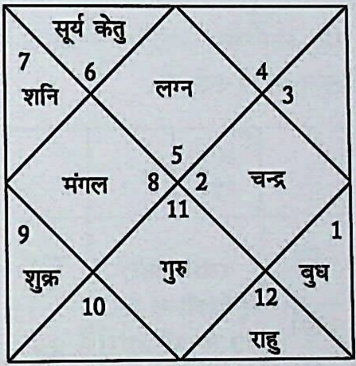

देष्काण में गुरु अष्टमेश होकर तथा लग्नेश शुक्र से युक्त होकर लग्न पर दृष्टि डाल रहा है। बुध नीच होकर अष्टमेश गुरु से तथा मंगल से दृष्ट है।

द्वादशांश में गुरु अष्टमेश है व मंगल दृष्ट है और बुध पर षष्ठेश शनि की दृष्टि है।

योगिनी दशा भ्रामरी-भ्रामरी (मंगल-मंगल) 9 मार्च 1994 से 19 अगस्त 1994 तक थी। यह मंगल वक्री होकर द्वादश भावगत लग्नेश शनि को देख रहा है।

नवांश में षष्ठेश मंगल षष्ठगत लग्नेश बुध को देख रहा है। द्रेष्काण में अशुभ भावेश मंगल नीच बुध से दृष्ट है, लेकिन लग्न या लग्नेश से उसका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। केवल लग्नेश शुक्र मंगल की राशि में है। द्वादशांश में मंगल शुभ भावेश होकर द्वादशेश चन्द्रमा से दृष्ट है।

नोट: (i) सभी वर्गों में बली गुरु की लग्न पर दृष्टि सुरक्षा प्रदान करती है। मंगल का बार-बार आना शल्यक्रिया को निश्चित द्योतक है।

(ii) विंशोत्तरी दशा में अगला प्रत्यन्तर केतु का तथा योगिनी दशा में अगली दशा भद्रिका (बुध) है। बुध व केतु दोनों ही बृहस्पति के प्रभाव में हैं।

कुण्डली संख्या 10.3

इस कृशकाय नाजुक शरीर वाली लड़की की कुण्डली में केन्द्र स्थानों में दो शुभ ग्रह हैं। इसे आन्त्रपुच्छ (Appendix) में बार-बार संक्रमण होने के कारण 29 सितम्बर 1993 को शल्यक्रिया से गुजरना पड़ा था। यहां लग्नेश गुरु के साथ अष्टम में है।

दशाविचार: विंशोत्तरी में शुक्र-राहु-शनि की दशा 24 अगस्त 1993 से 24 फरवरी 1994 तक थी। शुक्र यहां मारकेश है। शनिवत् व्यवहार करने वाला राहु अष्टमस्थ अष्टमेश मंगल से दृष्ट है। प्रत्यन्तर्पति शनि निसर्ग पापी और लग्न में नीचगत है।

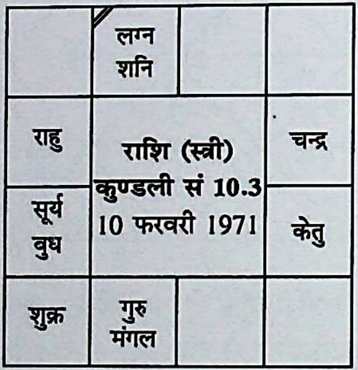

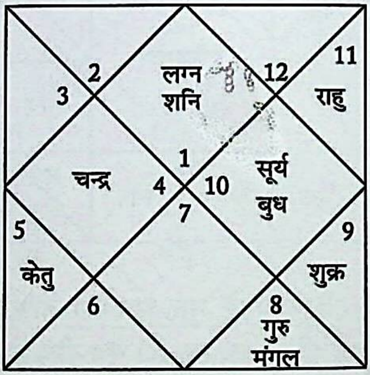

लग्न	15°01'	मंगल	17°51'	शुक्र	11°36'
सूर्य	27°21'	बुध	10°04'	शनि	22°46'
चन्द्र	24°07'	गुरु	10°27'	राहु	00°04'

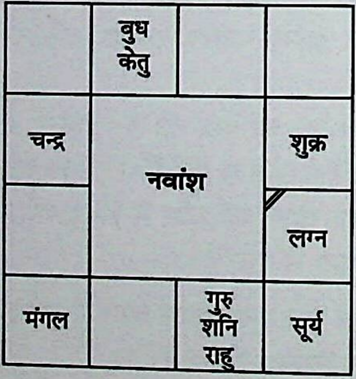

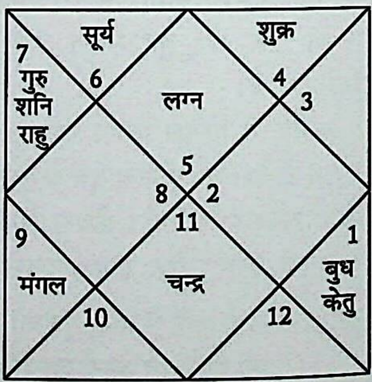

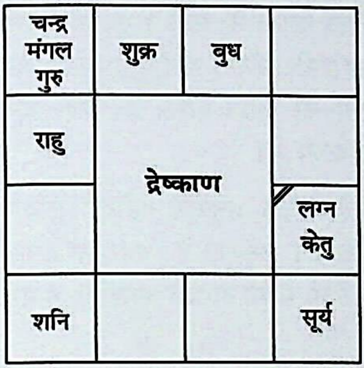

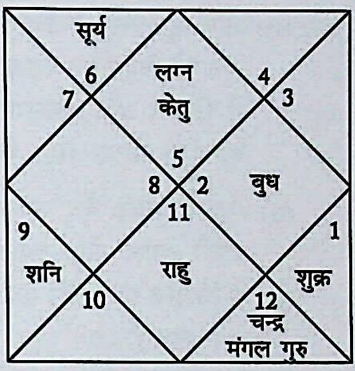

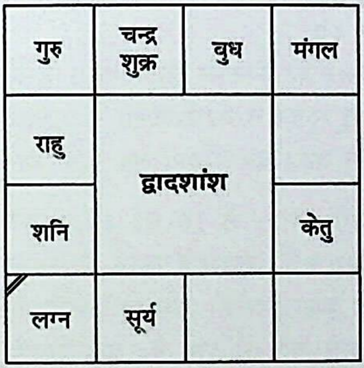

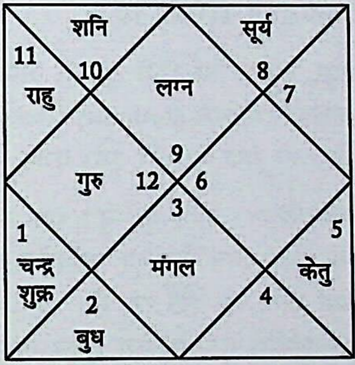

नवांश में अशुभ भावेश शुक्र द्वादश में षष्ठेश शनि से व मंगल से दृष्ट है। राहु भी 6-8 भावेशों से युक्त होकर अधिक पापी हो गया है। शनि भी यहां 6-7 भावेश होकर पापी ही है।

द्रेष्काण में शुक्र अशुभ भावेश, लग्न व सप्तम में राहु-केतु का योग और शनि की राहु पर दृष्टि है। पापी शनि लग्नेश सूर्य को देख रहा है।

द्वादशांश में शुक्र राहु व शनि पापी होकर अतिरिक्त पाप प्रभाव में हैं।

योगिनी दशा: संकटा-धान्या (राहु-गुरु) 25 अप्रैल 1993 से 25 दिसम्बर 1993 तक थी। राहु की अशुभता तो विंशोत्तरी दशा में देख ही चुके हैं, और अन्तर्दशेश गुरु, जन्म लग्न में द्वादशेश होकर अष्टम भाव में अष्टमेश व लग्नेश मंगल के साथ है।

नवांश में गुरु अष्टमेश होकर तथा राहु-केतु प्रभाव में रहकर षष्ठेश शनि से युक्त है। द्रेष्काण में गुरु पुनः अष्टमेश होकर मंगल व द्वादशेश चन्द्रमा के साथ है। द्वादशांश में यह लग्नेश होकर पापी शनि से दृष्ट है।

नोट: (i) शनि कुछ ऐसी चिकित्सा प्रदर्शित करता है, जहां शरीर के किसी अंग को निकालना पड़ता है। यह शरीर में रक्त संचार के किसी अंग में विकार और तज्जन्य दुर्बलता को इंगित करता है। यही बात कुण्डली संख्या 10.1 में भी द्रष्टव्य है।

(ii) यद्यपि अगला बुध प्रत्यन्तर कोई अधिक अनुकूल नहीं है, लेकिन उससे अगला केतु प्रत्यन्तर अपेक्षाकृत अनुकूल है। यह रोग शान्ति में विलम्ब का संकेत देता है। योगिनी में भी अगली अन्तर्दशा भ्रामरी कुछ शुभ है।

कुण्डली संख्या 10.4

इस जातक का दायां गुर्दा 8 अप्रैल 1996 को निकाल दिया गया। उसमें हाईड्रोनेफरोसिस (hydronephrosis) अर्थात् सूजन व कार्यप्रणाली में अवरोध पैदा हो गया था और इसी वजह से उसने काम करना बन्द कर दिया था।

दशाविचार: शनि-गुरु-बुध दशा 6 जनवरी 1996 से 16 मई 1996 तक थी। मेष लग्न के लिए महादशेश शनि अशुभ है। ग्यारहवें स्थान में बैठकर वह लग्न को देख रहा है। वक्री होने के कारण इसकी अशुभता बढ़ती है। अन्तर्दशेश गुरु द्वादशेश होकर लग्न में इसी शनि से दृष्ट है। प्रत्यन्तर्दशेश बुध भी अशुभ ही है क्योंकि वह 3, 6 भावों का स्वामी है। यह बुध सूर्य के साथ भी है और राहु-केतु के प्रभाव में है।

	लग्न गुरु	मंगल शुक्र (व)	सूर्य बुध राहु
चन्द्र शनि (व)	राशि (पुरुष) कुण्डली सं 10.4 1 जुलाई 1964		
केतु			

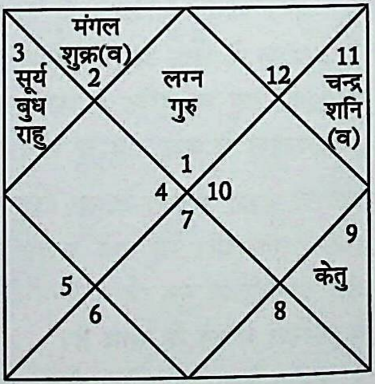

लग्न	26°16'	मंगल	16°07'	शुक्र (व)	29°14'
सूर्य	15°42'	बुध	20°01'	शनि (व)	11°29'
चन्द्र	21°24'	गुरु	24°35'	राहु	08°41'

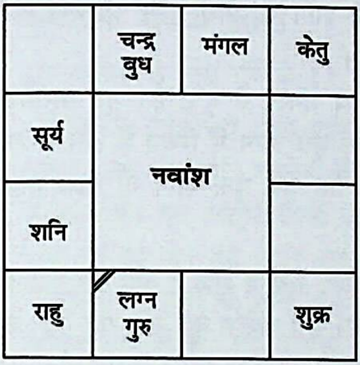

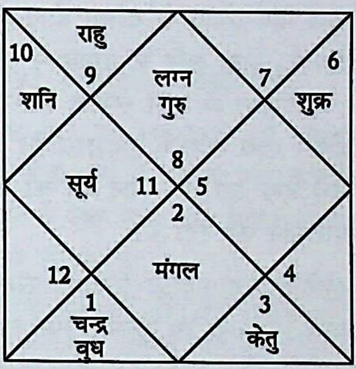

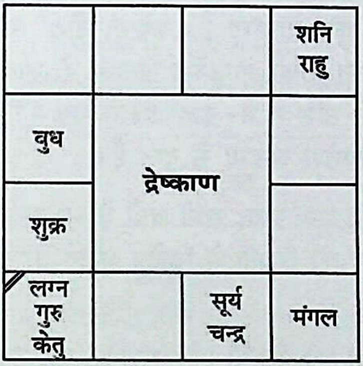

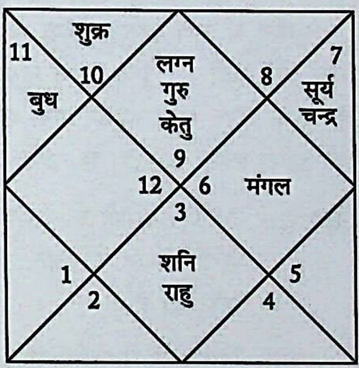

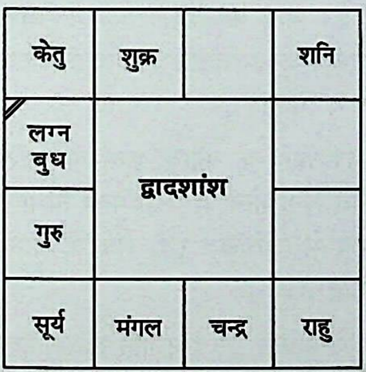

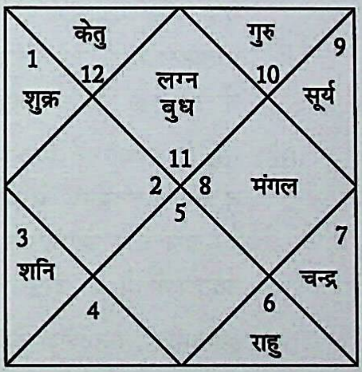

नवांश में शनि पापी तो है ही साथ में पाप मध्य में भी है। गुरु लग्न में स्थित होकर षष्ठेश मंगल से दृष्ट है। बुध भी अष्टमेश होकर षष्ठ में चौंसठवें नवांशपति चन्द्रमा के साथ है।

द्रेष्काण में शनि मारकेश होकर राहु-केतु के योग में है। उसी तरह गुरु भी राहु-केतु अक्ष पर स्थित होकर शनि व मंगल से दृष्ट है। प्रत्यन्तर्दशेश बुध

कुछ पाप प्रभाव से वंचित होता हुआ भी शनि के साथ राशि परिवर्तन कर रहा है। अतः शनि के प्रभाव में पड़ता है।

द्वादशांश में शनि लग्नेश होकर सूर्य व मंगल से दृष्ट है। गुरु मारकेश होकर नीच राशि में द्वादशस्थ है। अष्टमेश बुध लग्न में स्थित है और मंगल उसे देख रहा है। ध्यान देने की बात है कि बुध पुनः शनि के साथ राशि परिवर्तन कर रहा है।

योगिनी दशा: पिंगला-सिद्धा के स्वामी क्रमशः सूर्य व शुक्र हैं और यह दशा 9 मार्च 1996 से 29 जुलाई 1996 तक चली। सूर्य षष्ठेश बुध और राहु-केतु के कुप्रभाव से युक्त है। शुक्र वक्री मारकेश होकर अष्टमेश मंगल से युक्त है।

नवांश में सूर्य अशुभ राशि में और शुक्र नीचगत है। दशान्तर्दशेशों पर पाप योग नहीं है। द्रेष्काण में सूर्य नीचगत होकर अष्टमेश चन्द्रमा के साथ है। शुक्र स्वयं पापी होकर पापी शनि की राशि में है। द्वादशांश में सूर्य शनि की दृष्टि प्राप्त कर रहा है। और शुक्र षष्ठेश चन्द्रमा से दृष्ट है।

नोट: (i) लग्न के अंशों के समीप स्थित गुरु, प्रायः सभी वर्गों में भी लग्न में ही स्थित है। अतः गुरु रोग की स्थिति में विशेष सुरक्षा प्रदान कर रहा है।

(ii) त्रिषडायों में शनि, राहु व सूर्य की स्थिति भी स्वास्थ्य रक्षा का एक अन्य प्रभावशाली कारण है। शनि की वक्रता को कमोबेश प्रतिकूल माना जा सकता है। फलस्वरूप जातक ने रोग निवारण के उपरान्त निर्बाध स्वास्थ्य लाभ किया।

(iii) गुर्दे से सम्बन्धित विकारों में गुर्दे आदि के कारक शुक्र का राशि व वर्ग कुण्डलियों में पाप प्रभाव युक्त होना बड़ी भूमिका निभाता है। इस बात को प्रकृत अध्याय में विवेचित गुर्दा रोग के अन्य उदाहरणों में भी देखा जा सकता है।

(iv) आगामी प्रत्यन्तर्दशेश केतु नवम में बैठकर गुरु दृष्ट होने से अनुकूल फल अर्थात रोग निवारण को इंगित करता है। योगिनी दशाक्रम में अगली दशा संकटा राहु सदृश होने से शुभ ही है। कारण यह है कि राहु तृतीय में स्वास्थ्य रक्षक है। योगिनी दशा की अपेक्षा कारक शुक्र ने अपनी दशा (सिद्धा) में गुर्दे में विकार पैदा किया, ऐसा कहना अधिक संगत है।

कुण्डली संख्या 10.5

इस जातक के बाएं गुर्दे से 11 जून 1992 को पथरी निकाली गई।

दशाविचार: विंशोत्तरी दशा शनि-गुरु-राहु 25 मई 1992 से 12 अक्टूबर 1992 तक थी। शनि लग्नेश है तथा द्वितीय भाव में षष्ठेश तथा अष्टमेश के साथ है। गुरु अशुभ भावों का स्वामी है तथा शनि और मंगल के द्वारा देखा जा रहा है। राहु, शनि (लग्नेश) का द्योतक है।

नवांश कुण्डली में, शनि अशुभ स्वामी है तथा राहु केतु प्रभाव युक्त होकर अष्टम भाव में है। गुरु षष्ठेश होकर लग्न तथा लग्नेश को देख रहा है। राहु दूसरे भाव (मारक स्थान) में मंगल तथा शनि से दृष्ट है।

द्रेष्काण में, शनि षष्ठेश है; गुरु षष्ठेश तथा अष्टमेश द्वारा दृष्ट है; राहु, शनि की राशि में है (उसी राशि में जो राशि कुण्डली का लग्न है)।

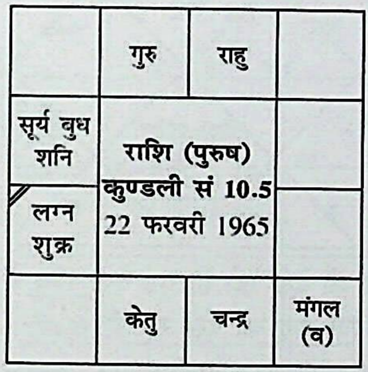

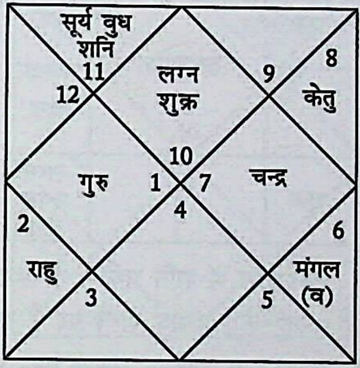

लग्न	21°19'	मंगल (व)	00°58'	शुक्र	27°31'
सूर्य	09°48'	बुध	08°03'	शनि	13°41'
चन्द्र	26°08'	गुरु	25°40'	राहु	26°32'

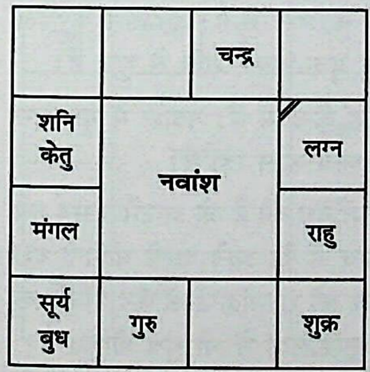

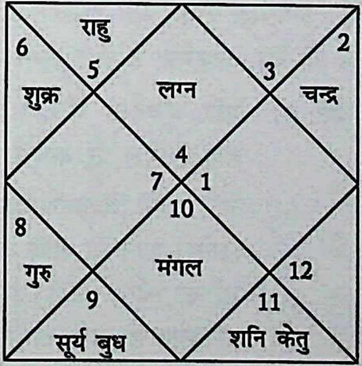

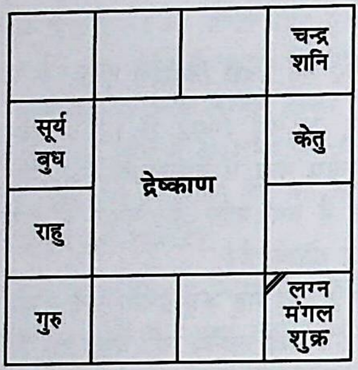

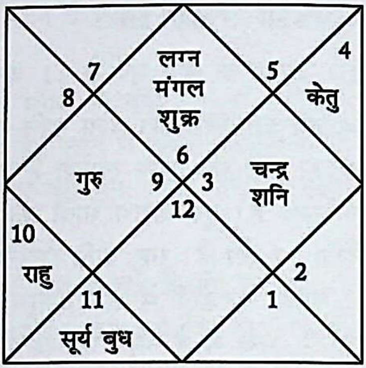

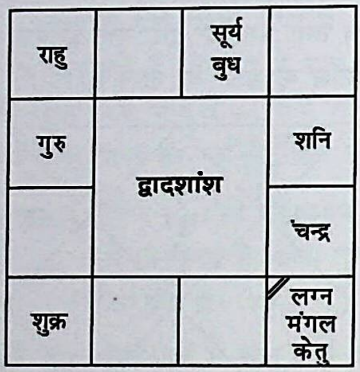

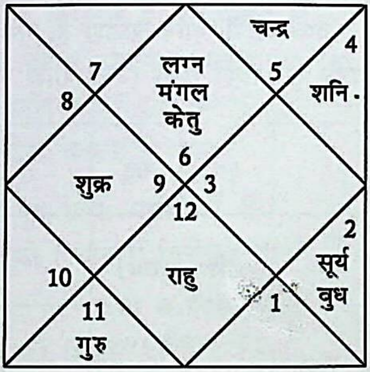

द्वादशांश में शनि षष्ठेश है तथा लग्न को देख रहा है; गुरु षष्ठ भाव में है। राहु-केतु प्रभाव लग्न पर है तथा मंगल, राहु को देख रहा है।

योगिनी दशा: संकटा-भ्रामरी (राहु-मंगल) 29 नवम्बर 1991 से 19 अक्टूबर 1992 तक चली। राहु की भूमिका पहले ही बताई जा चुकी है। मंगल राशि कुण्डली में वक्री पाप ग्रह है। यह नवांश कुण्डली के लग्न को देख रहा है। अष्टमेश होकर यह द्रेष्काण कुण्डली के लग्न में है। द्वादशांश कुण्डली में भी यह अष्टमेश है तथा लग्न में केतु युक्त होकर शनि से दृष्ट है।

नोट: (i) राशि कुण्डली में तीन शुभ ग्रह केन्द्र में हैं। नवांश में गुरु लग्न तथा लग्नेश पर अपना शुभ प्रभाव डाल रहा है।

(ii) आने वाली विंशोत्तरी दशा षष्ठेश बुध की है जो अष्टमेश सूर्य तथा लग्नेश शनि के साथ दूसरे भाव में है। आने वाली योगिनी दशा भद्रिका (बुध) की है। इस जातक को शल्यक्रिया के बाद हर्निया की जटिलता हो गई। अन्य वर्ग कुण्डलियों में भी बुध पीड़ित है।

कुण्डली संख्या 10.6

यह एक युवा स्त्री की कुण्डली है जिसके भीतरी मूत्रांगों में दायीं ओर कई ऑपरेशन हुए। पहला ऑपरेशन 28 मार्च 1990 को हुआ जिसमें उसके दाहिने यूरेटर **(ureter)** में से पथरी को निकाला गया। 9 जून 1990 को दूसरे ऑपरेशन में इसके दाहिने गुर्दे के अवरोध को शल्य क्रिया द्वारा ठीक किया गया। अन्तिम ऑपरेशन 20 मार्च 1991 को किया गया जिसमें इसकी दाहिनी मूत्रवाहिनी **(ureter)** को मूत्राशय में प्रत्यारोपित किया गया। तब से रोगी की दशा में सुधार है।

(i) प्रथम ऑपरेशन

विंशोत्तरी दशा: चन्द्र-गुरु-शुक्र जो 25 जनवरी 1990 से 15 अप्रैल 1990 तक चली। महादशानाथ चन्द्रमा अशुभ स्वामी होकर द्वादश भाव में अन्य

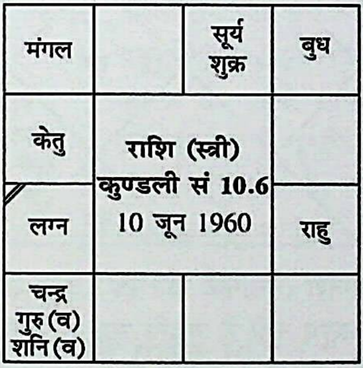

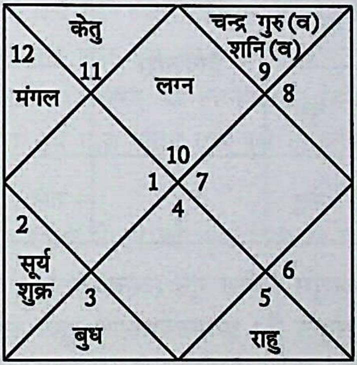

लग्न	12°31'	मंगल	29°13'	शुक्र	23°13'
सूर्य	26°29'	बुध	23°15'	शनि (व)	23°40'
चन्द्र	13°14'	गुरु (व)	06°37'	राहु	26°51'

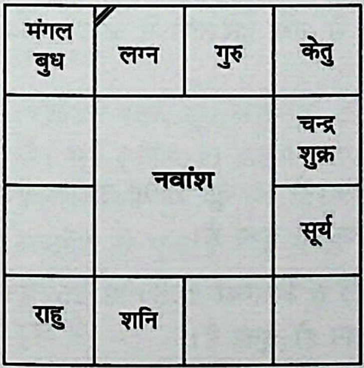

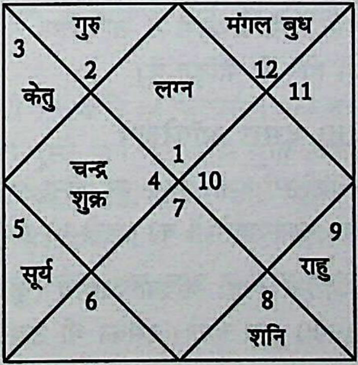

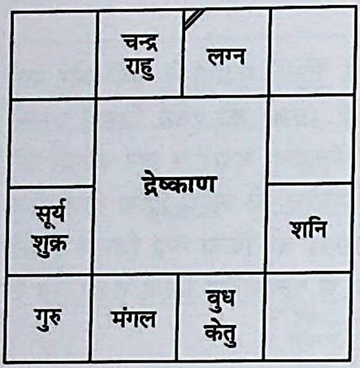

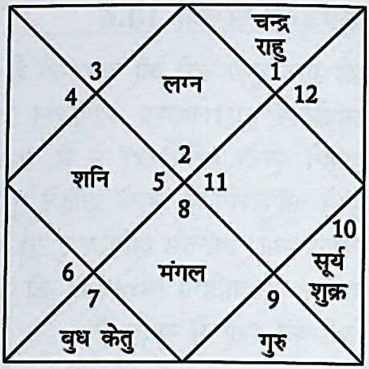

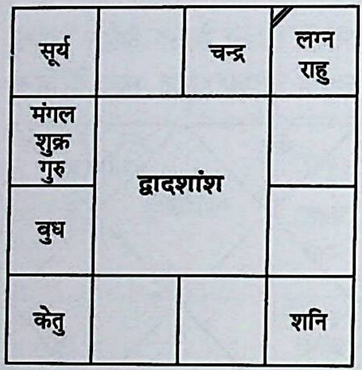

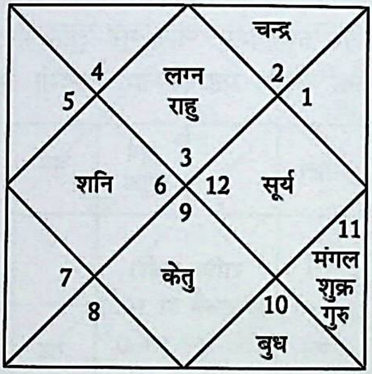

अशुभ भावेश गुरु (अन्तर्दशानाथ) तथा लग्नेश (नैसर्गिक पाप ग्रह) शनि से संयुक्त है। प्रत्यन्तर्दशानाथ शुक्र अधिक अशुभ नहीं है यद्यपि सूर्य से युक्त है। वर्ग कुण्डलियों में भी दशा स्वामी कई प्रकार से पीड़ित हैं।

योगिनी दशा: भद्रिका-भ्रामरी (बुध-मंगल) 6 दिसम्बर 1989 से 26 जून 1990 तक चली। बुध छठे भाव में मंगल और शनि से पीड़ित है। यह नवांश में मंगल से, द्रेष्काण में शनि तथा राहु-केतु से, तथा द्वादशांश में अष्टम भाव में होने से पीड़ित है।

(ii) दूसरा ऑपरेशन

विंशोत्तरी दशा: चन्द्र-गुरु-चन्द्र, 9 मई 1990 से 19 जून 1990 तक चली। इन दशान्तर्दशेशों का पहले ही वर्णन किया जा चुका है।

योगिनी दशा: भद्रिका-भ्रामरी (बुध-मंगल) 6 दिसम्बर 1989 से 26 जून 1990 तक चली। इसका भी ऊपर विवेचन हो चुका है।

(iii) तीसरा ऑपरेशन

विंशोत्तरी दशा: चन्द्र-शनि-बुध, 29 दिसम्बर 1990 से 20 मार्च 1991 तक चली। महादशेश वही है। अन्तर्दशेश शनि लग्नेश होकर चन्द्रमा तथा गुरु से युक्त है। षष्ठेश बुध षष्ठ भाव में ही है और इसका विचार ऊपर किया जा चुका है। केतु का प्रत्यन्तर ऑपरेशन वाले दिन शुरू हुआ। केतु वर्ग कुण्डलियों में बहुत अधिक शुभ प्रभाव में नहीं है यद्यपि यह स्थिति को सुधारता है। शनि इस लग्न के लिए शुभ ग्रह है तथा दो अन्य शुभ ग्रहों के साथ है। इसकी दशा के दौरान स्वास्थ्य में सुधार हुआ।

योगिनी दशा: उल्का-उल्का (शनि-शनि), 26 जून 1990 से 26 जून 1991 तक चली। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, शनि मकर लग्न के लिए शुभ ग्रह है।

नोट: (i) तीसरी रोगनिवारक शल्यक्रिया के बाद आने वाला प्रत्यन्तर, विंशोत्तरी दशा में शुक्र (चन्द्र-शनि-शुक्र) था। शुक्र इस लग्न के लिए योग कारक है। इसके साथ ही शुक्र का लग्न या लग्नेश के साथ सम्बन्ध नहीं है यद्यपि अष्टमेश सूर्य कुछ सीमा तक इसे लगातार पीड़ा पहुंचा रहा है।

(ii) योगिनी दशा में आने वाली अन्तर्दशा सिद्धा भी पुनः शुक्र से ही सम्बद्ध है।

कुण्डली संख्या 10.7

इस जातक के दाएं गुर्दे तथा मूत्रवाहिनी से बहुत सारी पथरियां 9 फरवरी 1994 को निकाली गईं। वास्तव में इसका दायां गुर्दा कार्य नहीं कर रहा था और ये सब करने के बाद भी इसके क्रियाशील होने की संभावना कम थी।

विंशोत्तरी दशा: सूर्य-केतु-गुरु, 27 जनवरी 1994 से 14 फरवरी 1994 तक थी। सूर्य (महादशा) अशुभ स्वामी है जो दूसरे पाप भावेश से युक्त होकर, षष्ठेश वक्री गुरु से दृष्ट है। नवांश में यह षष्ठेश होकर छठे स्थान में अष्टमेश से युक्त है और मंगल से दृष्ट है। द्रेष्काण में भी यह षष्ठेश है तथा लग्नेश से युक्त है। द्वादशांश में यह षष्ठेश शुक्र तथा पापी मंगल से दृष्ट है।

केतु (अन्तर्दशा) लग्नेश के साथ छठे भाव में है। नवांश में यह मंगल के प्रभाव में है। द्रेष्काण में यह अष्टमेश शुक्र के साथ है। द्वादशांश में यह अष्टम भाव में है। गुरु (प्रत्यन्तर्दशा) वक्री षष्ठेश है। नवांश में यह नीच है तथा मंगल से युक्त एवं मीन लग्न के लिए पापी शनि तथा बुध दोनों से दृष्ट है। द्रेष्काण में यह षष्ठेश से युक्त है। द्वादशांश में यह अष्टमेश होकर लग्न में है।

योगिनी दशा: भद्रिका-भद्रिका (बुध-बुध) 3 अगस्त 1993 से 13 अप्रैल 1994 तक चली।

बुध कर्क लग्न के लिए पाप समझा जाता है तथा द्वितीयेश सूर्य एवं वक्री षष्ठेश गुरु के प्रभाव में है। मीन नवांश के लिए यह पाप स्वामी है। द्रेष्काण में यह लग्नेश तथा सूर्य के साथ है जो षष्ठेश है। द्वादशांश में यह लग्न में अष्टमेश से युक्त है।

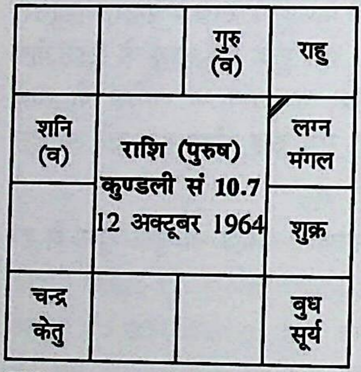

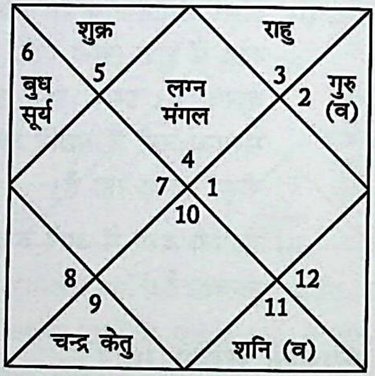

लग्न	26°41'	मंगल	22°40'	शुक्र	13°35'
सूर्य	25°09'	बुध	22°16'	शनि (व)	05°21'
चन्द्र	04°52'	गुरु (व)	01°34'	राहु	02°18'

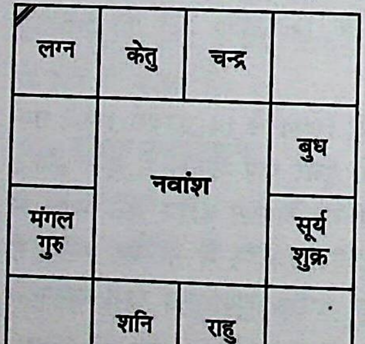

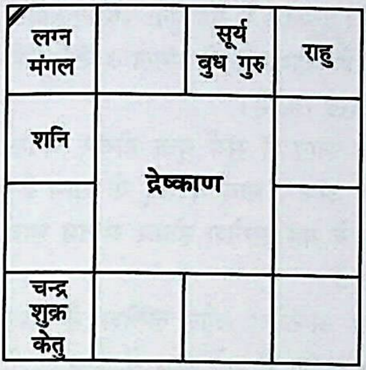

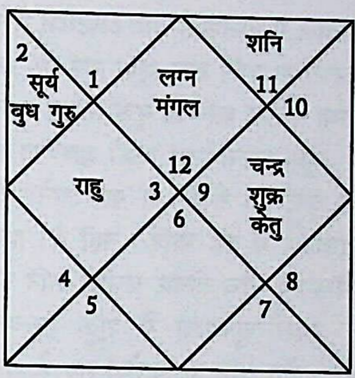

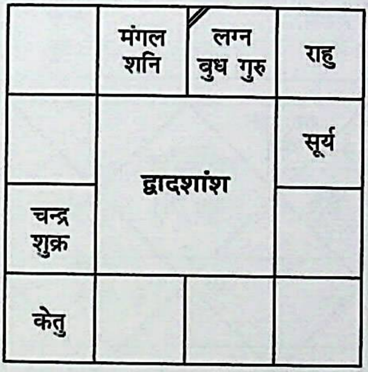

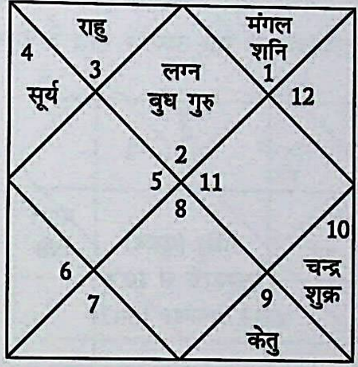

नोटः (i) आने वाले प्रत्यन्तर (शनि, बुध) तथा दशेश शुक्र कोई राहत प्रदान नहीं कर रहे हैं।

(ii) योगिनी दशा में भी आने वाली अन्तर्दशा उल्का (शनि), सिद्धा (शुक्र), संकटा (राहु) इत्यादि हैं।

कुण्डली संख्या 10.8

20 जनवरी 1993 को इस कुण्डली वाले जातक की पित्त की थैली को बाहर निकाला गया। जटिलता गहरा गई और इसके उदर से लगातार पित्त रिसने लगा। तीन पाप ग्रह, जिनमें से दो नीच राशि में, केन्द्रों में हैं और अकेला शुभ ग्रह बुध वक्री होकर सूर्य के साथ लग्न में है।

विंशोत्तरी दशा: मंगल-बुध-शुक्र, 8 जनवरी 1993 से 7 मार्च 1993 तक रही।

मंगल (महादशा) तुला लग्न के लिए मारक ग्रह है, जो नीच है तथा शनि के साथ अंशात्मक युति में है। मंगल पर गुरु की दृष्टि कुछ राहत देती है। मंगल,

नवांश में षष्ठेश है तथा अष्टमेश से युक्त है। द्रेष्काण में यह पुनः षष्ठेश होकर अष्टमेश शनि तथा शुक्र एवं गुरु से युक्त है। द्वादशांश में मंगल अष्टमेश है तथा षष्ठेश शनि से युक्त होकर लग्न को देख रहा है।

बुध (अन्तर्दशा) वक्री द्वादशेश है तथा लग्न में सूर्य युक्त होकर, मंगल से दृष्ट है। नवांश में यह लग्नेश है तथा अष्टम भाव में राहु के साथ है। द्रेष्काण में यह पीड़ित नहीं है। द्वादशांश में यह लग्नेश होकर सप्तम भाव में स्वयं नीच होकर षष्ठेश शनि से दृष्ट है।

राशि कुण्डली में शुक्र (प्रत्यन्तर्दशा) अष्टमेश और लग्नेश है तथा राहु-केतु अक्ष पर षष्ठेश गुरु से युक्त है। नवांश में छठे भाव में, द्रेष्काण में द्वादशेश (और पंचमेश) होकर षष्ठेश मंगल तथा अष्टमेश शनि से युक्त है। द्वादशांश में यह अष्टम भाव में स्थित है।

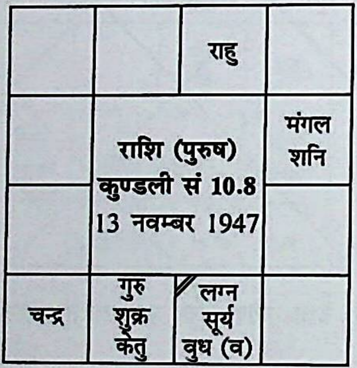

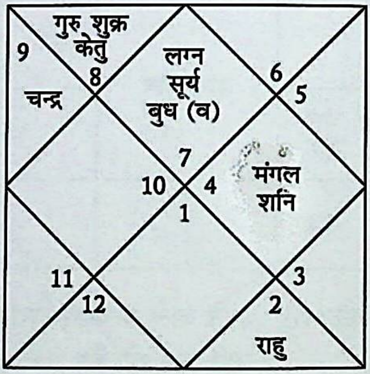

लग्न	29°47'	मंगल	29°22'	शुक्र	14°56'
सूर्य	26°42'	बुध (व)	12°43'	शनि	29°07'
चन्द्र	02°56'	गुरु	11°09'	राहु	00°13'

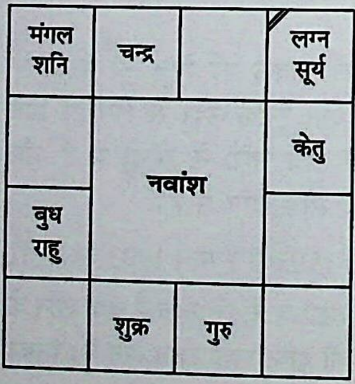

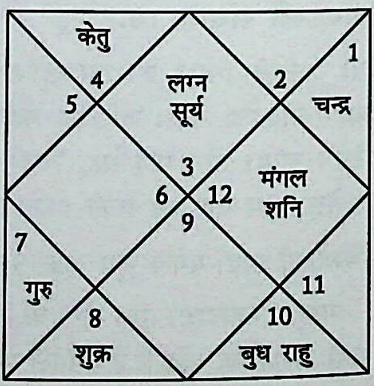

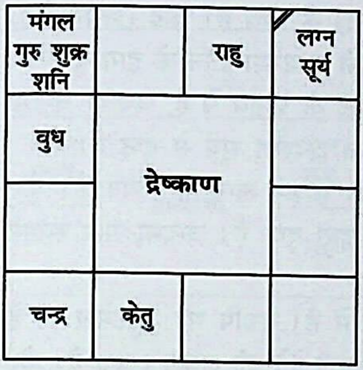

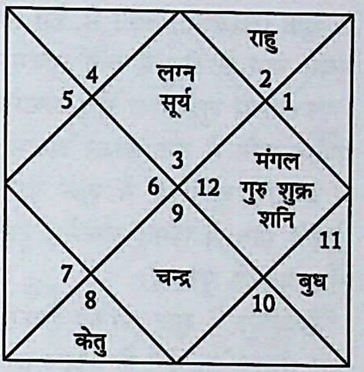

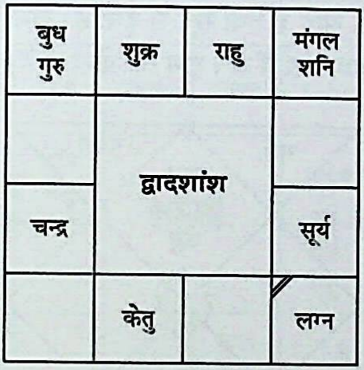

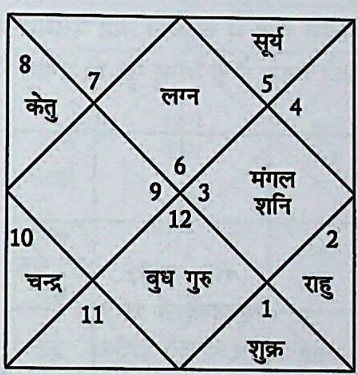

योगिनी दशा: सिद्धा-भ्रामरी (शुक्र-मंगल) 18 अगस्त 1992 से 28 मई 1993 तक चली। शुक्र व मंगल दोनों का विमर्श विंशोत्तरी दशा के अन्तर्गत हो चुका है।

नोट: (i) मंगल महादशा में प्रत्यन्तर्दशाओं की अवधि बहुत कम होती है। अगली अन्तर्दशा केतु, शुक्र, सूर्य... आदि, सभी प्रतिकूल हैं।

(ii) योगिनी दशा में भी दशा क्रम भद्रिका (बुध), उल्का (शनि), सिद्धा (शुक्र) इत्यादि अनुकूल नहीं है।

कुण्डली संख्या 10.9

इस स्त्री को दाएं स्तन में कैंसर हो गया था। इसका ऑपरेशन जनवरी 1984 में हुआ। जनवरी 1994 में यह बीमारी पुनः उभर कर आई तथा अन्य हिस्सों में फैलने से राहत की कोई संभावना नहीं रही।

विंशोत्तरी दशा: शुक्र-केतु-चन्द्र, 21 जनवरी 1984 से 26 अप्रैल 1984 तक चली। यही समय शल्य चिकित्सा का था।

शुक्र (महादशा) लग्न में केतु (अन्तर्दशा) के साथ है। चन्द्र (प्रत्यन्तर्दशा) पंचम भाव में नीच है तथा अष्टमस्थ वक्री अष्टमेश शनि के द्वारा दृष्ट है।

नवांश में शुक्र तथा केतु अष्टमेश मंगल के प्रभाव में हैं, जबकि चन्द्रमा षष्ठेश शनि से युक्त होकर अष्टम भावगत द्वादशेश सूर्य से दृष्ट है।

द्रेष्काण कुण्डली में शुक्र पाप भावेश होकर लग्न में स्थित है। केतु आठवें भाव में स्थित अष्टमेश शनि के द्वारा दृष्ट है। चन्द्रमा, पाप स्वामी नीच बुध से युक्त है।

द्वादशांश में शुक्र लग्नेश होकर लग्न में है। यद्यपि यह अष्टमेश भी है फिर भी लग्नेश होने के कारण लग्न को बल देने की क्षमता रखता है। केतु पंचम भाव में चतुर्थेश तथा पंचमेश शनि के साथ है तथा सूर्य से दृष्ट है। चन्द्र छठे स्थान में है परन्तु गुरु के प्रभाव में है। द्वादशांश में तीन शुभ ग्रह केन्द्र में है।

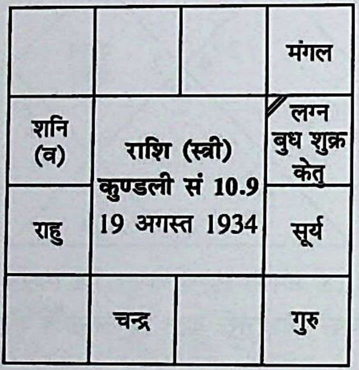

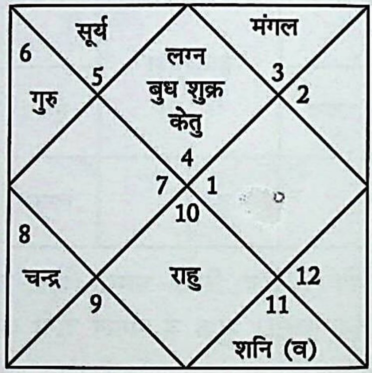

लग्न	08°08'	मंगल	29°36'	शुक्र	08°39'
सूर्य	02°18'	बुध	23°39'	शनि (व)	01°45'
चन्द्र	12°16'	गुरु	26°41'	राहु	18°17'

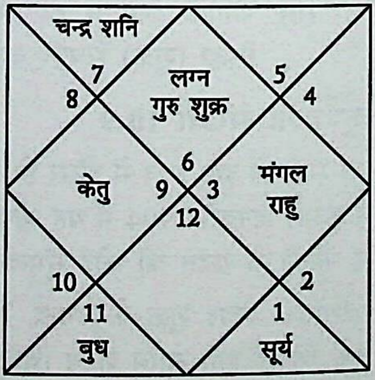

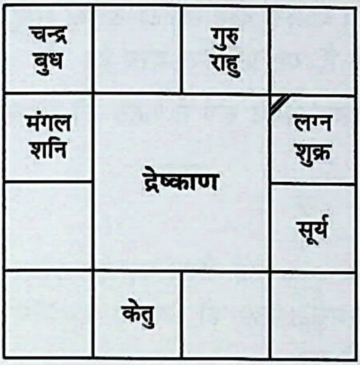

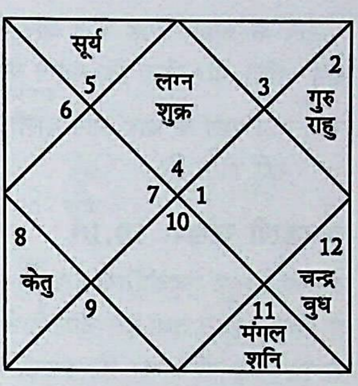

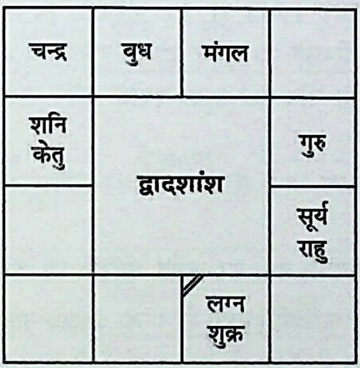

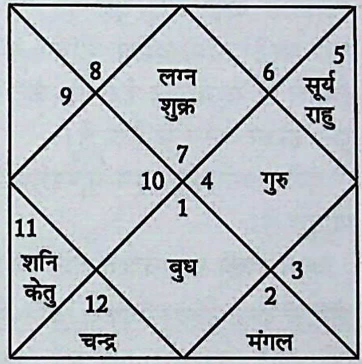

यह स्त्री सूर्य महादशा में काफी ठीक स्थिति में रही। सूर्य सभी वर्ग कुण्डलियों में बलवान है। उसकी हालत चन्द्र महादशा में बिगड़ गई। जनवरी, 1994 में चन्द्र-गुरु-शनि (30 दिसम्बर 1993 से 16 मार्च 1994 तक) में यह पाया गया कि रोग जगह-जगह शरीर के अन्य अंगों में भी फैल गया है। चन्द्र (महादशा) का वर्णन तो हो चुका है। गुरु (अन्तर्दशा) सभी वर्ग कुण्डलियों में पाप स्वामी है तथा राशि, नवांश तथा द्रेष्काण में मंगल के प्रभाव में है। शनि (प्रत्यन्तर्दशा) एक प्रतिकूल भाव का स्वामी है, वक्री है तथा सभी वर्ग कुण्डलियों में कई प्रकार से पीड़ित है। चन्द्र-गुरु दशा के बाद चन्द्र-शनि भी राहत की सूचना नहीं देती है।

योगिनी दशा: सिद्धा-संकटा (शुक्र-राहु), 24 अप्रैल 1983 से 14 नवम्बर 1984 तक थी।

शुक्र (महादशा) का विचार हो चुका है। संकटा (अन्तर्दशा) का प्रतिनिधि केतु है जिसका वर्णन भी किया जा चुका है।

रोग के जगह-जगह फैल जाने के समय योगिनी दशा संकटा-उल्का (राहु/केतु-शनि) थी। जैसा कि पहले कह चुके हैं, यह प्रतिकूल दशा है।

नोट: पाप दशा के बाद आने वाली पाप दशाएं स्पष्ट रूप से राहत की सूचक नहीं होती हैं।

कुण्डली संख्या 10.10

जातक एक्यूट ल्यूकीमिया (Acute Leukemia; रक्त कैंसर का एक प्रकार) से पीड़ित हुआ तथा इस बीमारी से 7 फरवरी 1989 को रोग का पता लगने के छः माह के अन्दर ही उसकी मृत्यु हो गई।

विंशोत्तरी दशा: राहु-बुध-गुरु, 24 अक्टूबर 1988 से 27 फरवरी 1989 तक चली। सभी दशेश पीड़ित हैं तथा स्थिति या दृष्टि द्वारा लग्न अथवा लग्नेश से सम्बन्धित हैं। राहु-केतु से ग्रस्त नीच का शुक्र षष्ठेश शनि द्वारा दृष्ट होकर लग्न में बैठा है।

दशेश अधिकांश वर्ग कुण्डलियों में स्वयं पापी हैं और विभिन्न प्रकार से पीड़ित हैं।

आने वाली प्रत्यन्तर्दशा शनि की है जो पापी तथा हर जगह पीड़ित भी है।

योगिनी दशा: उल्का-पिंगला (शनि-सूर्य) 3 फरवरी 1989 से 3 जून 1989 तक रही। शनि (महादशा) तथा सूर्य (अन्तर्दशा) दोनों या तो भावेश होने के कारण अथवा युति के कारण, राशि कुण्डली में तथा वर्ग कुण्डलियों में पापी हैं। आने वाली धान्या (गुरु) अन्तर्दशा को पहले ही प्रतिकूल वर्णित किया जा चुका है।

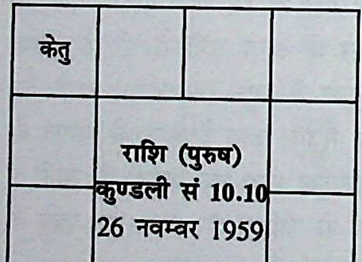

लग्न	14°40'	मंगल	01°09'	शुक्र	23°23'
सूर्य	09°34'	बुध (व)	06°10'	शनि	12°02'
चन्द्र	05°12'	गुरु	17°21'	राहु	08°36'

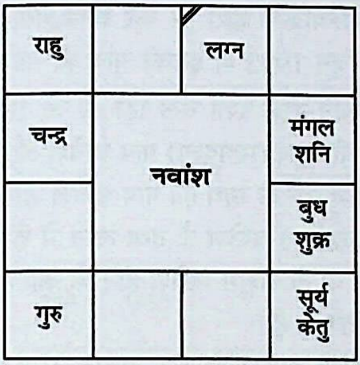

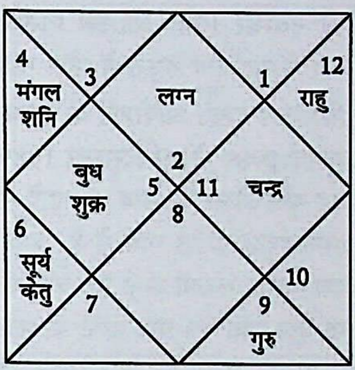

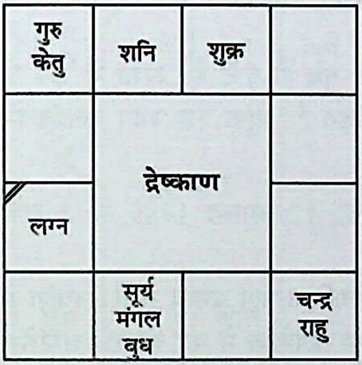

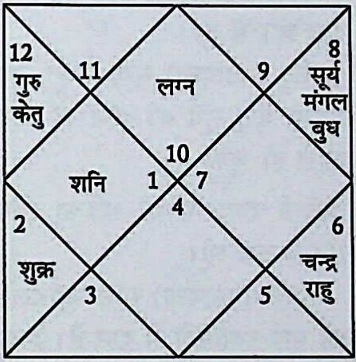

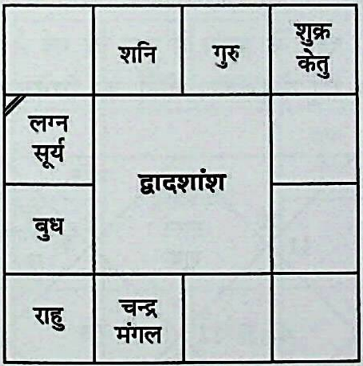

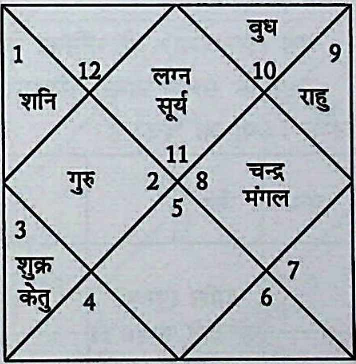

नोटः लग्नेश वक्री एवं अस्त है तथा यह अस्त अष्टमेश मंगल व अस्त गुरु से युक्त है।

कुण्डली संख्या 10.11

जातक 'पेरीएमप्यूलरी कार्सीनोमा' (Periampullary carcinoma; पित्त वाहिनी, अग्न्याशय वाहिनी एवं पक्वाशय के द्वितीय खण्ड में कैंसर) से पीड़ित था।

17 नवम्बर 1989 को इस विकार को शल्यक्रिया द्वारा दूर कर दिया गया। बाद में यह रोग यकृत में फैल गया तथा जून 1992 में इसकी मृत्यु हो गई।

विंशोत्तरी दशा: ऑपरेशन के समय बुध-शनि-शुक्र दशा चल रही थी जो 18 जुलाई 1989 से 29 दिसम्बर 1989 तक थी। बुध (महादशा) पाप भावेश और राहु युक्त होकर दो अन्य पाप ग्रहों मंगल तथा सूर्य के साथ है। पाप भावेश शनि (अन्तर्दशा) द्वादश भाव में है। शुक्र (प्रत्यन्तर्दशा) षष्ठेश है तथा लग्न में है। दशान्तर्दशा स्वामी सभी वर्ग कुण्डलियों में या तो अशुभ भावेश होने के कारण या पाप युति एपं पाप दृष्टि के कारण प्रतिकूल हैं।

इसकी मृत्यु केतु-शुक्र-शनि (जो 6 जून 1992 से 12 अगस्त 1992 तक थी) में हुई।

केतु (महादशा) सूर्य, मंगल तथा पापी बुध से दृष्ट है। अंशों में सूर्य के बराबर केतु सूर्य की दृष्टि के कारण पीड़ित है। शुक्र तथा शनि का विचार पहले हो चुका है।

योगिनी दशा: भ्रामरी-भद्रिका (मंगल-बुध) 12 अगस्त 1989 से 2 मार्च 1990 तक थी।

मंगल (महादशा) राशि कुण्डली में अत्यधिक पाप प्रभाव में है। नवांश में यह पाप स्वामियों से दृष्ट है। द्रेष्काण तथा द्वादशांश में यह क्रमश: अष्टमेश तथा षष्ठेश है।

बुध (अन्तर्दशा) की भूमिका विंशोत्तरी दशा के प्रसंग में बता दी गई है।

मृत्यु के समय भ्रामरी-संकटा (मंगल-राहु/केतु) थी। दोनों का विवेचन ऊपर किया जा चुका है।

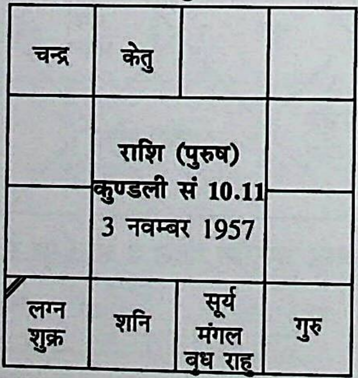

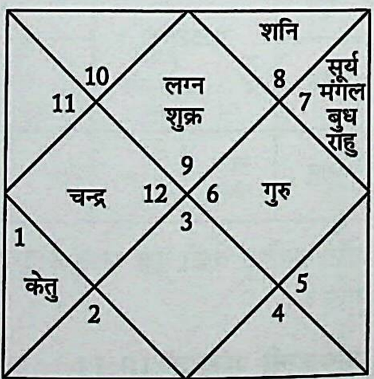

लग्न	15°17'	मंगल	03°20'	शुक्र	04°21'
सूर्य	17°49'	बुध	24°23'	शनि	19°28'
चन्द्र	05°08'	गुरु	25°06'	राहु	17°17'

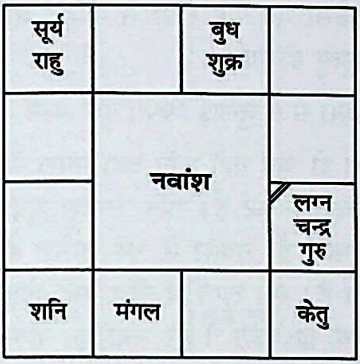

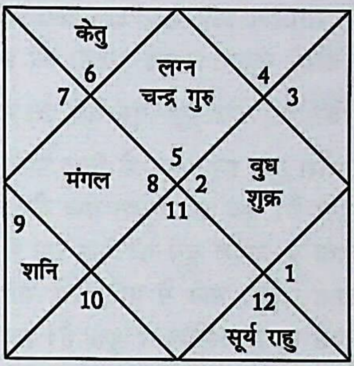

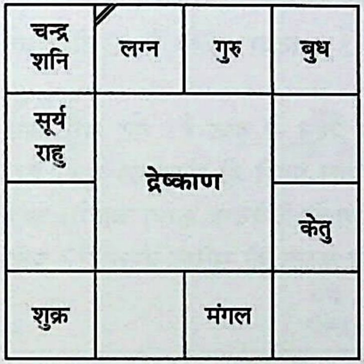

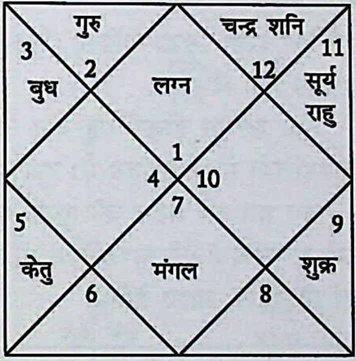

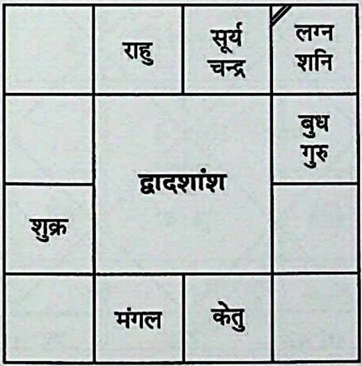

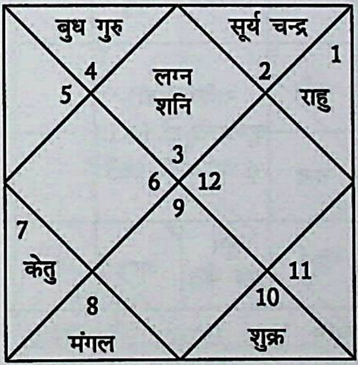

नोट: मंगल 22वें द्रेष्काण तथा 64वें नवांश का स्वामी है।

कुण्डली संख्या 10.12

ज्योतिष की कुछ सूक्ष्मताओं को उजागर करने के लिए इस कुण्डली का विस्तार से विवेचन किया जा रहा है। जातक क्रोनिक माईलायड ल्यूकीमिया

(Chronic Myeloid Leukemia; रक्त कैंसर का एक रूप) से पीड़ित थी जिसके कारण 9 मई 1990 को इसकी मृत्यु हो गई।

विंशोत्तरी दशा: गुरु-गुरु-बुध, 20 मार्च 1990 से 9 जुलाई 1990 तक चली।

दशेश गुरु, इस लग्न के लिए पापी है तथा दो पाप ग्रहों शनि तथा मंगल से दृष्ट है। बुध भी लग्नेश तथा केतु के अत्यन्त निकट है। शनि, लग्नेश शुक्र तथा प्र. दशेश बुध को देख रहा है। गुरु वक्री है। नवांश में, गुरु लग्नेश है तथा अष्टम भाव में षष्ठेश के साथ स्थित है। बुध लग्न में नीच, राहु-केतु अक्ष पर व अष्मेश से युक्त है। द्रेष्काण तथा द्वादशांश में गुरु तथा बुध दोनों अशुभ भावेश हैं और विभिन्न प्रकार से पीड़ित हैं।

योगिनी दशा: सिद्धा-भद्रिका (शुक्र-बुध), 3 अक्टूबर 1989 से 23 सितम्बर 1990 तक थी।

शुक्र लग्नेश होकर राहु-केतु अक्ष पर शनि से दृष्ट है। यह सभी वर्ग कुण्डलियों में भी पीड़ित है। बुध की भूमिका पहले ही बताई जा चुकी है।

अब हम इस घटना की पृथक दृष्टिकोण से विवेचना करना चाहेंगे। क्या सगे सम्बन्धियों की कुण्डलियां भी एक ही घटना को सूचित करती हैं? यदि हां तो कैसे? आइए देखें!

	गुरु (व)	राहु	
शनि	राशि (स्त्री)		
चन्द्र	कुण्डली सं 10.12 6 जनवरी 1965		
सूर्य	बुध शुक्र केतु	लग्न	मंगल

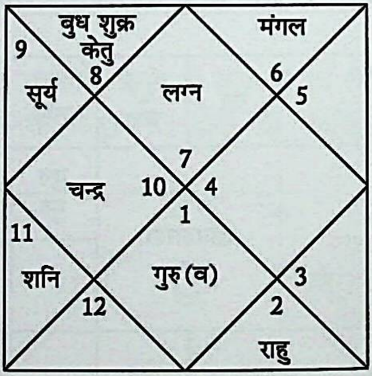

लग्न	19°04'	मंगल	01°42'	शुक्र	28°31'
सूर्य	21°56'	बुध	28°58'	शनि	08°23'
चन्द्र	24°08'	गुरु (व)	22°47'	राहु	29°26'

पिता की कुण्डली

राशि कुण्डली (**कुण्डली संख्या 10.13**) तथा सप्तमांश कुण्डली (जो संतान को सूचित करती है) यहां पर महत्त्वपूर्ण हैं। राशि कुण्डली का

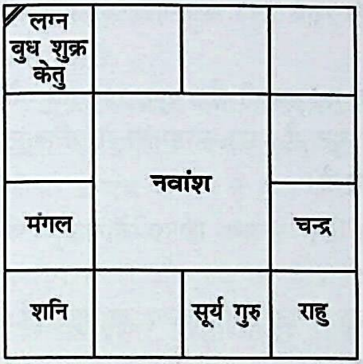

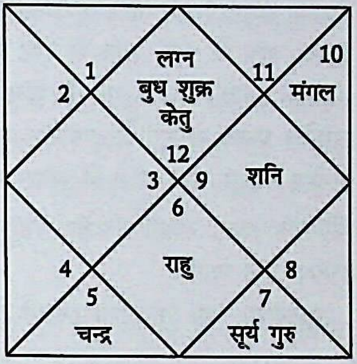

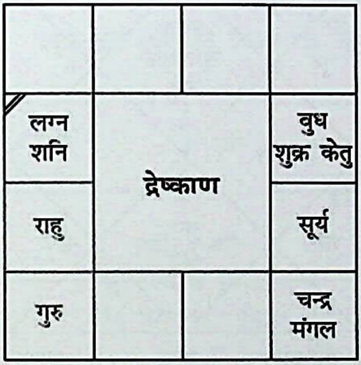

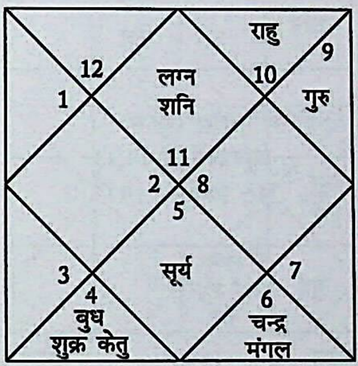

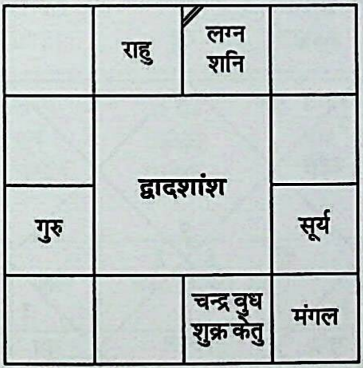

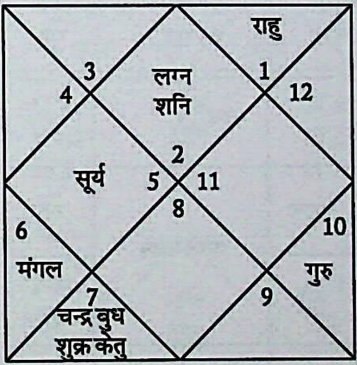

पांचवां भाव तथा सप्तमांश कुण्डली का लग्न और पांचवां भाव प्रासंगिक भाव हैं।

विंशोत्तरी दशा: गुरु-राहु-शुक्र, 1 मई 1990 से 25 सितम्बर 1990 तक चली।

गुरु (महादशा) पंचमेश होकर, नीच राशि में तृतीय भाव में तथा सप्तमांश कुण्डली का अष्टमेश होकर लग्न में है तथा मंगल से दृष्ट है।

राहु (अन्तर्दशा) राशि कुण्डली में लग्न में है तथा सप्तमांश कुण्डली के द्वादश भाव में पापी शनि से दृष्ट है।

शुक्र, संतान कारक गुरु से पांचवें भाव का स्वामी होते हुए, राहु-केतु के समवेत प्रभाव में गुरु से अष्टमेश सूर्य से युक्त है। यह सप्तमांश में प्रतिकूल भावेश होकर नीच राशि में मंगल से दृष्ट है।

योगिनी दशा: संकटा-सिद्धा (राहु-शुक्र), 21 अगस्त 1989 से 11 मार्च 1991 तक चली।

महादशा तथा अन्तर्दशा स्वामी दोनों का वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

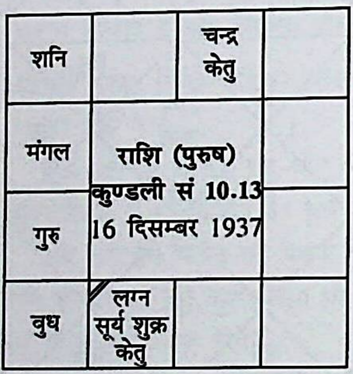

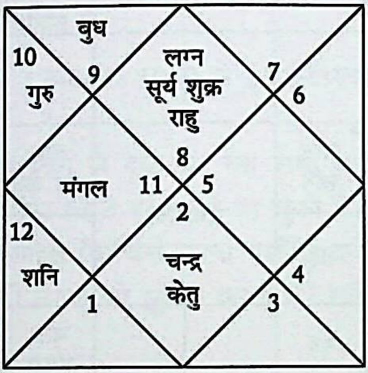

लग्न	13°02'	मंगल	02°40'	शुक्र	18°37'
सूर्य	27°31'	बुध	20°38'	शनि	05°33'
चन्द्र	05°02'	गुरु	06°07'	राहु	12°02'

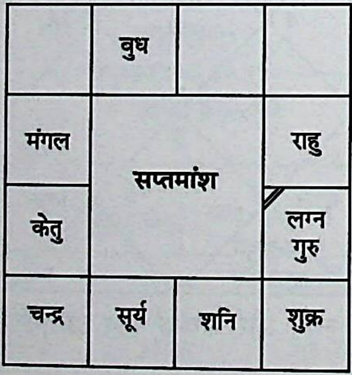

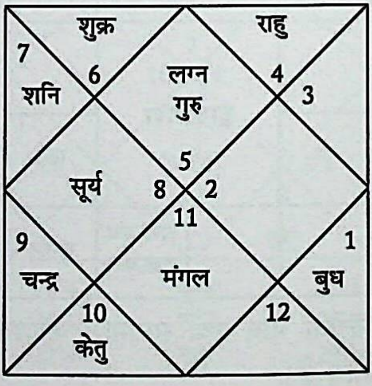

माता की कुण्डली

बिल्कुल वही घटना माता की कुण्डली (**कुण्डली संख्या 10.14**) से देखी जा सकती है।

विंशोत्तरी दशा: शुक्र-शुक्र-शनि, 14 अप्रैल 1990 से 24 अक्टूबर 1990 तक चली।

शुक्र (महादशा तथा अन्तर्दशा) अष्टमेश है तथा राहु-केतु अक्ष पर है तथा राशि कुण्डली के पंचम भाव को देख रहा है। शनि (प्रत्यन्तर्दशा) पंचमेश होकर अष्टम भाव में है तथा पंचम भाव को देख रहा है। सप्तमांश कुण्डली में शुक्र पंचमेश है तथा लग्न में है। शनि लग्नेश है तथा पंचम स्थान में अशुभ मंगल और राहु को देख रहा है।

योगिनी दशा: सिद्धा-सिद्धा (शुक्र-शुक्र), 2 मई 1990 से 12 सितम्बर 1991 तक चली।

शुक्र का विवेचन किया जा चुका है।

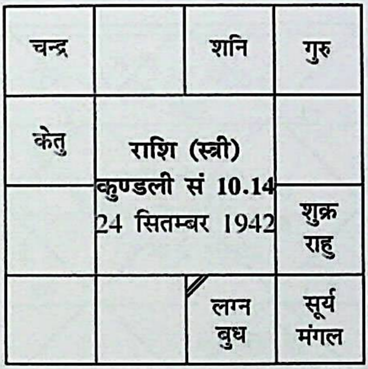

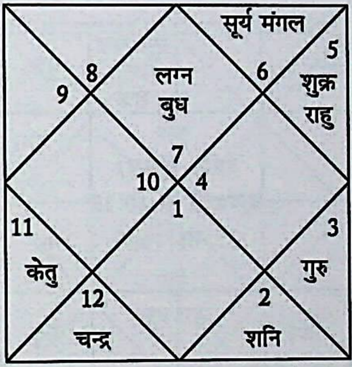

लग्न	13°02'	मंगल	11°18'	शुक्र	24°40'
सूर्य	07°22'	बुध	01°52'	शनि	19°28'
चन्द्र	01°19'	गुरु	28°29'	राहु	11°10'

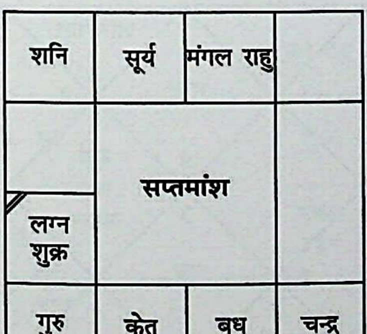

सहोदरों की कुण्डलियां

जातक के दो छोटे सहोदरों की कुण्डलियां भी विचार के लिए प्रस्तुत हैं। यहां पर प्रासंगिक वर्ग कुण्डली द्रेष्काण है तथा दोनों (राशि तथा द्रेष्काण) का तीसरा भाव और द्रेष्काण का लग्न महत्त्वपूर्ण हैं।

कुण्डली संख्या 10.15

इस कुण्डली में विंशोत्तरी दशा राहु-बुध-गुरु, (2 मई 1990 से 4 सितम्बर 1990 तक) थी जिस समय इसकी बड़ी बहन की मृत्यु हुई।

राहु (महादशा) राशि तथा द्रेष्काण में तृतीयेश शनि से युक्त है। बुध (अन्तर्दशा) द्रेष्काण कुण्डली के लग्न को देख रहा है। गुरु (प्रत्यन्तर्दशा) राशि तथा द्रेष्काण कुण्डली के तृतीय भाव को देख रहा है।

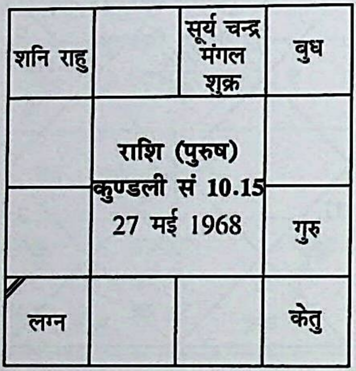

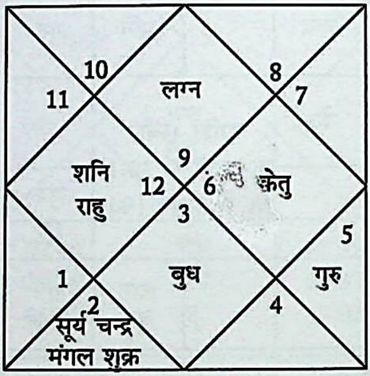

लग्न	03°12'	मंगल	19°51'	शुक्र	06°30'
सूर्य	12°57'	बुध	05°06'	शनि	28°09'
चन्द्र	16°26'	गुरु	04°17'	राहु	24°08'

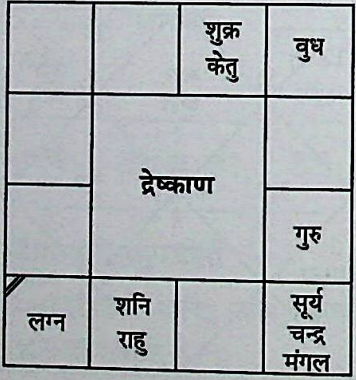

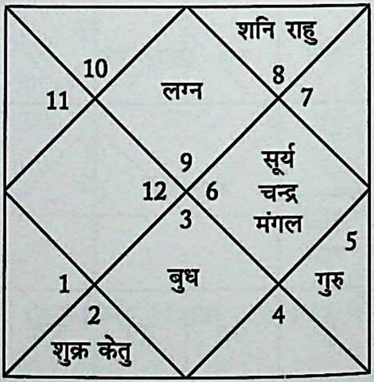

योगिनी दशा: भद्रिका-भद्रिका (बुध-बुध), 11 जनवरी 1990 से 21 सितम्बर 1990 तक चली।

बुध की भूमिका का वर्णन ऊपर हो चुका है।

कुण्डली संख्या 10.16

4 मार्च 1990 से 16 अगस्त 1990 तक *विंशोत्तरी दशा* राहु-शनि-शनि थी।

राहु (महादशा) शनि का प्रतिनिधित्व करता है जो स्वयं अन्तर्दशाओं का स्वामी है। यह अशुभ छठे तथा सातवें भाव का स्वामी होकर तीसरे भाव को देख रहा है जहां वक्री अष्टमेश गुरु स्थित है। तृतीयेश तथा अष्टमेश में स्थान परिवर्तन योग है।

द्रेष्काण कुण्डली में राहु-केतु अक्ष लग्न में है जबकि शनि तृतीयेश है और मंगल से युक्त होकर, तृतीय भाव को देख रहा है।

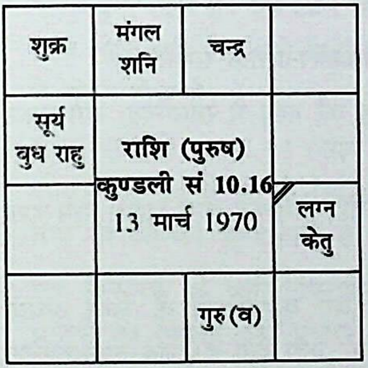

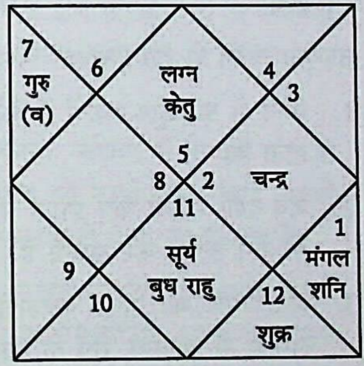

लग्न	14°56'	मंगल	11°07'	शुक्र	10°34'
सूर्य	29°00'	बुध	19°45'	शनि	12°35'
चन्द्र	12°30'	गुरु (व)	11°48'	राहु	18°25'

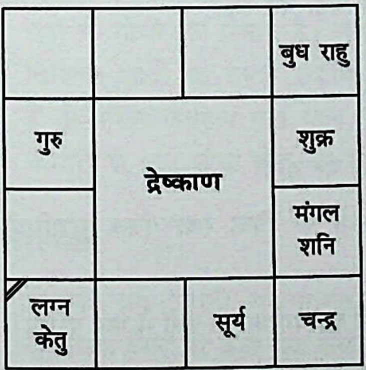

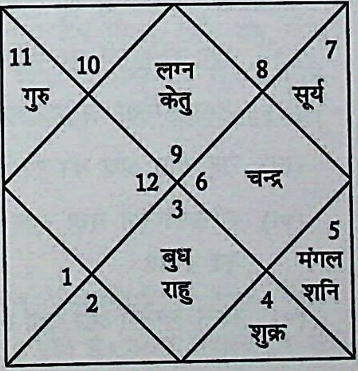

योगिनी दशा: भ्रामरी-भद्रिका (मंगल-बुध) 30 अप्रैल 1990 से 20 नवम्बर 1990 तक चली।

मंगल (महादशा) शनि से संयुक्त होकर तृतीय भाव को देख रहा है। बुध (अन्तर्दशा) एकादशेश (बड़े सहोदर के लिए) होकर राहु के बहुत समीप है तथा वक्री अष्टमेश से तृतीय भाव से दृष्ट है। द्रेष्काण में यह राहु-केतु अक्ष पर है तथा लग्न को देखा रहा है।

नोट: जैसे किसी जातक की किसी एक घटना का समय ज्ञान करने के लिए विभिन्न दशाओं का प्रयोग किया जाता है, वैसे ही विभिन्न सगे-सम्बन्धियों (माता-पिता, बच्चे, सहोदर) की कुण्डलियों को भी उन घटनाओं की पुष्टि करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। इस उद्देश्य के लिए, उचित भाव, उचित कारक तथा उचित वर्ग कुण्डलियों का विचार करना आवश्यक है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त वर्णन से निम्नलिखित निष्कर्ष निकालना तर्क सम्मत है:

1. लग्न से प्रतिकूल स्थानों में बैठे ग्रह की दशा में सामान्यत: रोग प्रकट होता है।
2. जब दशा स्वामी पाप प्रभाव में हों तो अपेक्षाकृत कम अशुभ पाप दशा भी रोग उत्पन्न कर सकती है।
3. अन्तर्दशेशों का राशि कुण्डली या वर्ग कुण्डलियों के लग्न अथवा लग्नेश से सम्बन्ध, रोग के आवेग को बढ़ा देता है। जब लग्न/लग्नेश का सम्बन्ध दशा स्वामी से दृष्टि, युति या परिवर्तन द्वारा न हो तो बीमारी का परिणाम हल्का होता है।
4. वे घटक जो बीमारी की तीव्रता का बढ़ा देते हैं:
   - (i) दशा स्वामियों पर पाप प्रभाव
   - (ii) लग्न/लग्नेश पर पाप प्रभाव
   - (iii) राहु-केतु अक्ष का दशा स्वामी पर होना
   - (vi) लग्न/लग्नेश तथा दशा स्वामियों पर त्रिक स्थान/त्रिक स्वामियों का प्रभाव
   - (v) लग्न, लग्नेश और दशा स्वामियों पर वर्ग कुण्डलियों में पाप प्रभाव।

5. केन्द्र में शुभ ग्रह विशेष रूप से राहत देते हैं जब वे लग्न/लग्नेश से या दशा स्वामी से युक्त हों और वे स्वयं वक्रत्व, अस्तंगत या पाप युति/दृष्टि से पीड़ित न हों।

6. जब अन्य घटक प्रतिकूल हों तो 22वें द्रेष्काण या 64वें नवांश में स्थित ग्रह अथवा इनके स्वामी ग्रह रोग को बढ़ावा देते हैं।

7. विंशोत्तरी दशा के परिणामों की अन्य दशा के प्रयोग से पुष्टि कर लेनी चाहिए। योगिनी दशा उन सहायक दशाओं में से एक है जिसे प्रयोग कर सकते है। यहां यह देखने में आएगा कि बहुत बार रोग के समय विंशोत्तरी दशा तथा योगिनी दशा पद्धति से एक ही दशा चल रही होती है।

8. रोगी के पुनः स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करने में आने वाली दशा एक महत्त्वपूर्ण घटक है। जब आने वाली दशा क्रम प्रतिकूल हो तो स्वास्थ्य लाभ नहीं होता है। आने वाली दशा अधिक अनुकूल हो तो स्वास्थ्य में सुधार होता है।

9. सम्बन्धियों के प्रारब्ध का नियम चिकित्सा ज्योतिष में अच्छी तरह से कार्य करता है। जातक के रोग की घटना को उसके माता-पिता, बच्चों तथा सहोदरों की कुण्डलियों से भी सरलता से देखा जा सकता है।

10. एक जन्मपत्री के सही विश्लेषण में सावधानीपूर्वक शुभ तथा अशुभ प्रभावों का संतुलन दशा प्रणाली के साथ समायोजित करना आवश्यक होता है।

11. एक महत्त्वपूर्ण घटक जिसका यहां पर वर्णन नहीं किया गया है, वह राशि तथा वर्ग कुण्डलियों में विभिन्न भावों तथा दशा स्वामियों पर, ग्रहों के गोचर का प्रभाव है। जब पाप ग्रह जैसे मंगल, शनि, राहु, केतु विशिष्ट भावों या उनके स्वामियों या दशा स्वामियों पर गोचर करते हैं तो परिणामस्वरूप पाप फल देते हैं। गुरु का गोचर आरोग्यकर और बीमारी से पुनः ठीक होने का सूचक है।

उत्तरलेख

1. पचासों वर्ष पुरानी परम्परागत भारतीय जन्मपत्रियों में प्रायः गुप्त सूत्रात्मक शैली में कुछ गूढ़ संकेत निहित होते थे। उनके अवलोकन के

उपरान्त हम आशानुकूल इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि प्राचीन पारम्परिक जन्मपत्रियों में व्यावहारिक ज्योतिष अधिक मुखरित होती थी। वहां पुस्तक निष्ठ ज्ञान की तुलना में व्यवहार व प्रयोगधर्मा प्रणालियों पर अधिक जोर दिया जाता था। उपलब्ध ग्रन्थों में भी एक, दो या तीन ग्रहों की युति का फल कहकर ही कर्तव्य की इति भी समझ ली गई है, जबकि वर्ग चक्रों का विचार इस सन्दर्भ में अनिवार्य है।

वास्तव में इतना पर्दा रखने के पीछे उद्देश्य यह था कि शास्त्र विचारशून्य व्यक्तियों के हाथों में जाकर भ्रष्ट न हो जाए। उत्तर भारत में समयबद्ध फलादेश हेतु वर्षफल की पद्धति को भी अपनाया जाता था।

लेखक की अन्य पुस्तक, 'वर्षफल सर्वस्व' (A Textbook of Varshaphala), में रोग के कई उदाहरण देकर रोगोत्पत्ति का समय व दिशा तय करने के विषय में विवेचन किया गया है। जन्म समय सही होने पर ताजिक विधि से रोगों के प्रकोप का समय निश्चय करने में सहायता मिलती है। इसी स्तर पर चिकित्सक की तुलना में चिकित्सा ज्योतिषी श्रेष्ठतर साबित होता है, क्योंकि वह सम्भावित रोगों की काफी विश्वसनीय भविष्यवाणी बहुत पहले ही कर सकता है।

2. इस प्रसंग में हमने बहुप्रसिद्ध विंशोत्तरी व योगिनी दशा भेदों का प्रयोग किया है। यहां यह कहना भी उपयुक्त है कि विभिन्न दशा पद्धतियों से भी उतना ही विश्वसनीय परिणाम प्राप्त किया जा सकता है। चिकित्सा प्रसंग में तो अन्यान्य दशा भेदों का प्रयोग वास्तव में भविष्य कथन को कुछ अधिक ही धारदार बनाता है।

एकादश अध्याय

मनोरोग

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।
क्रोधाद्भवति संमोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।

इन्द्रिय विपयों का चिन्तन करने से मनुष्य उन विपयों की ओर आसक्त हो जाता है। आसक्ति होने पर कामनाएं जागती हैं। कामना से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से मतिभ्रम, मतिभ्रम से स्मरण शक्ति क्षीण होती है। स्मरण शक्ति क्षीण होने से बुद्धि का नाश होता है और बुद्धि का नाश होने से मनुष्य पथभ्रष्ट होकर पतनोन्मुख हो जाता है।

– गीता-2-62/63

"मनोरोग" शब्द इस संदर्भ में एक शिथिल व उथला शब्द है। यह हमारे दैनिक जीवन में आचरण की कुछ उन विविधताओं को सूचित करता है जिन्हें कुछ परिस्थितियों में रीति विरुद्ध माना जाता है। हम सभी दैनिक जीवन में विविध परिस्थितियों में उत्तेजना, क्रोध, वैमनस्य, खिन्नता तथा अवसाद का अनुभव करते है। वातावरण में बदलाव के कारण, मानव व्यवहार में इन विविधताओं को सामान्य प्रतिक्रिया माना जाता है। इन सामान्य प्रतिक्रियाओं की एक व्याख्या है। ये प्रतिक्रियाएं जब परिस्थितिवश सामान्य मानव व्यवहार में अति अवांछनीय या अगम्य हो जाएं तो इसे मनोरोग या मानसिक विकार का नाम दिया जाता है।

मनोरोग के शास्त्रीय योग

ज्योतिष ग्रन्थों में मनोरोगों एवं पागलपन, उन्माद आदि के विशेष योग दिए गए हैं। ये योग प्रायः कारण का विवेचन न कर, कुछ पूर्व निर्णीत विधि से ग्रहयोगों

से उत्पन्न फल पर ही विशेष जोर देते हैं। वहां तार्किकता के अवसर विरल ही होते हैं। उन योगों को किसी कुण्डली पर शब्दश: घटित करना टेढ़ी खीर ही है। यह बात कमोबेश ग्रन्थोक्त सभी योगों पर लागू हो सकती है। लेकिन वे योग रोग के कारण व रोग होने की सम्भावना पर अच्छी रोशनी डालते हैं। यहां हम वैसे कुछ योगों को उद्धृत करके, अपने विवेकानुसार उनके निहितार्थ को समझते हुए, वास्तविक उदाहरणों द्वारा विषय को स्पष्ट करेंगें।

'जातक तत्त्व' आदि ज्योतिष ग्रन्थों से मनोरोगों से सम्बन्धित कुछ योग यहां उद्धृत किए जा रहे हैं।

1. गुरु लग्न में तथा मंगल सप्तम भाव में हो, अथवा विपरीत क्रम में हों।

   नोट: (i) यह (और आगे आने वाले योग) उथले लगते हैं। गुरु आदर्शवाद का ग्रह है तथा मंगल आक्रामकता का सूचक है। इनका अत्यधिक पारस्परिक प्रभाव वैवाहिक जीवन को बरबाद कर सकता है क्योंकि इस योग में सप्तम भाव सम्मिलित है।

   (ii) इसी योग में मंगल की जगह शनि होने से भी वही फल कहे हैं परन्तु पाप ग्रह की प्रकृति बदलने से स्पष्ट रूप से यह आक्रामकता अवसाद में परिवर्तित हो जाएगी।

2. शनि लग्न में तथा मंगल पांचवें या सातवें या नवें स्थान में हो।
3. शनि लग्न में, सूर्य द्वादश भाव में, मंगल या चन्द्र त्रिकोण में हो।
4. शनि बारहवें स्थान में क्षीण चन्द्रमा के साथ हो।

   नोट: शनि के साथ चन्द्रमा की युति नकारात्मक सोच की प्रवृत्ति देती है। द्वादश भाव प्रतिकूल भाव है।

5. शनि और द्वितीयेश की युति सूर्य या मंगल के साथ हो।
6. शनि या मंगल की होरा में जन्म हो, सूर्य चन्द्र की युति 1, 5, 9 भावों में तथा गुरु केन्द्र में हो।
7. मान्दि (गुलिक) सप्तम भाव में पाप ग्रह से पीड़ित हो।

   नोट: मान्दि यदि पंचम भाव में पीड़ित हो तो भी यही फल मिलते हैं।

8. राहु तथा चन्द्रमा लग्न में हों तथा पापग्रह त्रिकोण में हों।

नोट: यह योग 'पिशाच-ग्रस्त योग' के नाम से जाना जाता है। यह अकारण भय (phobia) को दर्शाता है।

मानव व्यवहार का ज्योतिषीय आधार

इन योगों से प्रतीत होता है कि मानसिक रोग के अधिकांश योग केवल साधारण हैं। इन योगों के कारण रोग कब होगा, ऐसा नहीं बताया गया है। इसके साथ ही विविध वर्ग कुण्डलियों का भी उपयोग नहीं मिलता है, जिनके बिना कोई योग अपनी महत्ता खो देता है। अतः हम उन तथ्यों को तलाशेंगे जो हमारे सामान्य व्यवहार को नियन्त्रित करते हैं और उसके बाद उन तथ्यों के पीड़ित होने के प्रकार तथा विस्तार देखकर असामान्य व्यवहार का पता लगाएंगे। किसी जातक के मानसिक स्वास्थ्य को आंकने के लिए निम्नलिखित बिंदुओं पर ध्यान देना चाहिए–

(1) *चन्द्रमा:* यह मन का कारक है। इसका दुर्बल या बली होना किसी की मानसिक अवस्था को प्रतिबिम्बित करता है। यह दूसरों के प्रति अनुराग, भावनाएं, भावनात्मक प्रतिक्रियाएं, मानसिक योग्यता आदि का सूचक है और इस प्रकार की बातें किसी गणितीय तर्क पद्धति पर नहीं चलती हैं। चन्द्रमा का कोई शत्रु नहीं है।

(2) *बुध:* यह नाड़ी मंडल, शिक्षा, ज्ञान शक्ति एवं व्यवहार की समझ तथा जटिलताओं को दर्शाता है। इसका शत्रु चन्द्रमा है। मन (चन्द्रमा) का विवेक एवं ज्ञान (बुध) से गहरा योगी-प्रतियोगी सम्बन्ध है।

(3) *गुरु:* सबसे शुभग्रह गुरु विचारों की परिपक्वता एवं बुद्धिमत्ता का कारक है। गुरु जबकि बुध के लिए सम है परन्तु बुध, गुरु का शत्रु है। बिल्कुल स्पष्ट है कि तर्क की कठोर सीमाएं बुद्धिमत्ता के प्रयोग को रोक सकती हैं।

नोट : जब चन्द्रमा, बुध और गुरु बली हों तथा अच्छी स्थिति में हों, तो जातक का मस्तिष्क पुष्ट होता है, अच्छा विवेक तथा परिपक्व बुद्धिमत्ता होती है। जब इन तीन ग्रहों पर पाप प्रभाव हो, ये दुर्बल या खराब स्थिति में हों तो मानसिक बीमारी, नाड़ियों की दुर्बलता, भ्रमित बुद्धि तथा विवेकपूर्ण निर्णय लेने तथा उन पर अमल करने की अयोग्यता होती है।

(4) *पांचवां भाव*: पांचवां भाव कल्पना शक्ति, चिंतन, तर्क तथा बुद्धिमत्ता का है। अच्छे मानसिक स्वास्थ्य के लिए पांचवां भाव व पंचमेश पीड़ित न होकर शुभ प्रभावों में होने चाहिए।

(5) *लग्न तथा मेष राशि*: मेष प्रथम भाव होने के कारण कालपुरुष का सिर है। लग्न प्रथम भाव है यानि जातक का सिर है। अच्छे मानसिक स्वास्थ्य के लिए दोनों शुभ स्थिति में होने चाहिए।

(6) *शुभाशुभ योग*: इन तथ्यों के अतिरिक्त कुण्डली में कुछ विशेष पाप तथा शुभ योग होते हैं जो मानसिक रोग को बढ़ावा देते हैं अथवा उसे रोकते हैं। निम्नलिखित योग विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

(i) *केमद्रुम योग*: जब चन्द्र के दोनों ओर या चन्द्र से केन्द्र में कोई ग्रह न हो। यह एक प्रतिकूल योग है। स्वस्थ मन के लिए चन्द्रमा को सम्बल की आवश्यकता होती है। जब चन्द्रमा से दूसरे तथा बारहवें स्थान में कोई ग्रह न हो तो यह कुण्डली में मानसिक दुर्बलता का सूचक है।

(ii) *गजकेसरी योग*: चन्द्रमा से केन्द्र में गुरु का होना। यह एक अतिबली शुभ योग है। केन्द्र में बैठे ग्रह एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं। चन्द्रमा से केन्द्र में बैठा गुरु, चन्द्रमा को बली बनाता है।

(iii) *चन्द्राधि योग*: चन्द्रमा से छठे, सातवें, आठवें स्थान में ग्रह हों तो चन्द्राधि योग होता है। इन भावों में शुभ ग्रह, चन्द्रमा की शक्ति में वृद्धि तथा पाप ग्रह बाधा डालते हैं।

चन्द्रमा पर पाप प्रभाव

प्रायः चन्द्रमा के पीड़ित होने से मानसिक असन्तुलन होता है। ये साधारण मतिभ्रम से लेकर 'न्यूरोसाइकोटिक डिसआर्डर' (neuropsychotic disorder) तक हो सकता हैं। चन्द्रमा तभी पीड़ित होता है जब वह दुर्बल हो, छठे, आठवें या बारहवें भाव में स्थित हो तथा पाप ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो। विभिन्न ग्रहों से पीड़ित चन्द्रमा का फल इस प्रकार बताया गया है–

(1) *सूर्य से:* तीक्ष्ण स्वभाव, झगड़ालू प्रवृत्ति, स्वयं के तर्कों से प्रेरित।

(2) *मंगल से:* तीक्ष्ण स्वभाव, आक्रामक, हिंसक।

(3) *शनि से:* तीव्र अवसाद, सनक-उदासी युक्त पागलपन (maniac depressive psychosis)।

(4) *राहु से :* चालाक, व्यवहार में विसंगति, अकारण भय, आत्मघाती प्रवृत्ति।

(5) *केतु से :* सनक/आत्मघाती प्रवृत्ति, भय (phobia), दूसरों पर अकारण संदेह करना।

नोट: (i) बुध तथा गुरु पर पाप प्रभाव भी व्यवहार में असामान्यता लाते हैं। उदाहरण के लिए छठे स्थान में बुध शनि के द्वारा दृष्ट हो तो किसी प्रकार का मानसिक विक्षोभ होता है। गुरु-शनि या गुरु-मंगल के एक दूसरे के सम्मुख होने का प्रभाव पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है।

(ii) ग्रहों की अंशात्मक निकटता अवश्य देख लेनी चाहिए।

मानसिक रोग: कुछ उदाहरण

कुण्डली संख्या 11.1

यह कुण्डली एक स्त्री की है जो शिज़ोफ्रेनियां (schizophrenia) से पीड़ित है। उसकी झगड़ालू प्रवृत्ति है तथा कभी-कभी अवसाद तथा आत्मघाती दौरे पड़ते हैं। चन्द्रमा बारहवें स्थान में, वक्री अष्टमेश के साथ है तथा षष्ठेश शनि के द्वारा दृष्ट है। बुध छठे स्थान में द्वादशेश तथा वक्री अष्टमेश के द्वारा दृष्ट है। गुरु स्वयं वक्री अष्टमेश तथा पंचमेश है जो शनि के द्वारा दृष्ट है। बुद्धि तथ चिंतन का पांचवां भाव सूर्य तथा राहु के बैठने से तथा शनि की दृष्टि से अत्यधिक पीड़ित है। नवांश कुण्डली में चन्द्रमा

मंगल			केतु
	राशि (स्त्री) कुण्डली सं 11.1 10 जनवरी 1955		चन्द्र गुरु (व)
बुध			लग्न
सूर्य राहु	शुक्र	शनि	

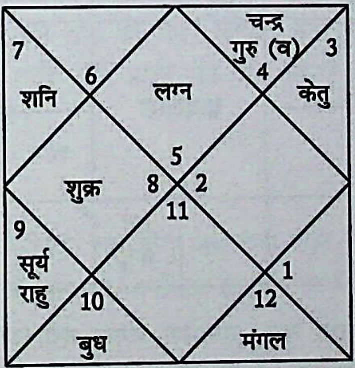

लग्न	03°11'	मंगल	03°29'	शुक्र	10°29'
सूर्य	26°22'	बुध	06°12'	शनि	25°55'
चन्द्र	23°54'	गुरु (व)	02°22'	राहु	11°41'

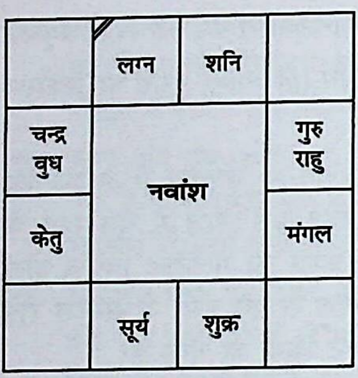

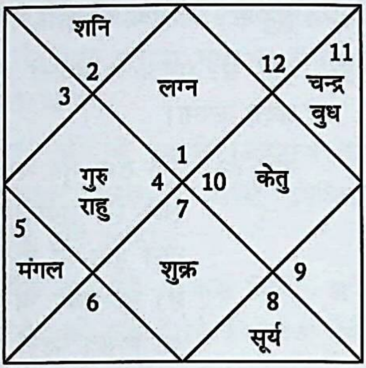

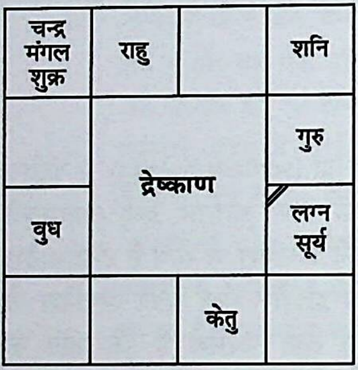

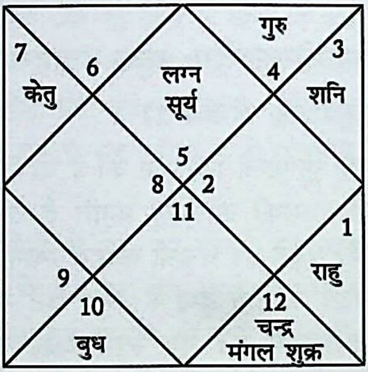

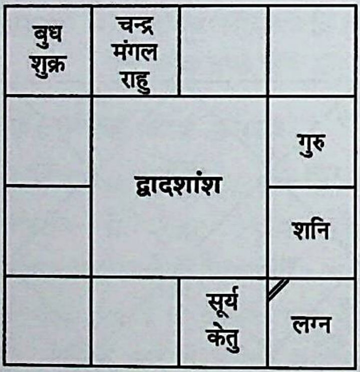

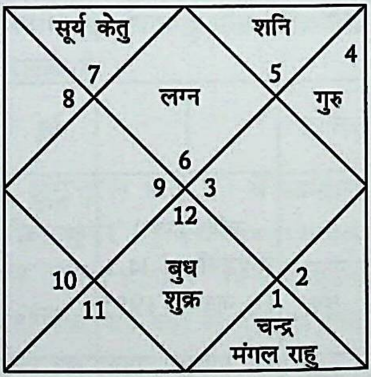

तथा बुध, अष्टमेश मंगल तथा शनि से पीड़ित हैं जबकि गुरु राहु-केतु अक्ष पर है। चन्द्रमा तथा बुध की युति अच्छी नहीं है क्योंकि बुध षष्ठेश है। अष्टमेश पंचम भाव में है। पंचमेश अष्टम भाव में मंगल एवं शनि से दृष्ट है।

द्रेष्काण कुण्डली में चन्द्रमा अष्टम भाव में मंगल से युक्त है तथा षष्ठेश शनि के द्वारा दृष्ट है। बुध छठे स्थान में तथा गुरु बारहवें स्थान में है। शनि पंचम भाव को भी देख रहा है।

द्वादशांश कुण्डली में चन्द्रमा अष्टम भाव में अष्टमेश मंगल तथा राहु से युक्त है। पंचमेश द्वादश भाव में है। गुरु उच्च राशि में है परन्तु मंगल के द्वारा दृष्ट है। पंचम भाव तथा बुध को कुछ राहत मिलती है क्योंकि ये उच्च के गुरु से दृष्ट हैं।

विंशोत्तरी दशा: प्रथम बार लक्षण शुक्र-राहु (24 दिसम्बर 1976 से 25 दिसम्बर 1979) में दिखाई दिए। शुक्र-केतु में (24 अगस्त 1988 से 24 अक्टूबर 1989) स्थिति और खराब हो गई। 24 अक्टूबर 1989 से शुरू होने वाली सूर्य महादशा में स्थिति अति गम्भीर हो गई।

सिंह लग्न के लिए शुक्र एक पाप ग्रह है जो स्वयं पाप मध्य में होने से पीड़ित है। वह वक्री अष्टमेश गुरु से भी दृष्ट है। राहु-केतु तथा सूर्य पंचम भाव को प्रभावित कर रहे हैं। केतु सूर्य की दृष्टि के कारण तथा अष्टम भाव से मंगल की दृष्टि के कारण पीड़ित है।

योगिनी दशा: रोग के प्रारम्भ होने के समय योगिनी दशा संकटा-भ्रामरी (राहु-मंगल) थी। राहु का वर्णन किया जा चुका है। राशि कुण्डली, द्रेष्काण तथा द्वादशांश कुण्डली में मंगल अष्टम भाव में पीड़ित है। नवांश कुण्डली में वह अष्टमेश होकर पंचम भाव में स्थित है।

भ्रामरी (मंगल) की महादशा 1989 से प्रारम्भ हुई तथा लगभग 1992 के अन्त तक चली। इस समय में लक्षण और तीव्र हो गए। अगली महादशा भद्रिका की है जिसमें बहुत कम ही राहत की आशा की जा सकती है क्योंकि इसका स्वामी बुध भी पीड़ित है।

कुण्डली संख्या 11.2

यहां पर चन्द्रमा, बुध तथा गुरु क्रमशः गुलिक, राहु-केतु अक्ष तथा शनि की दृष्टि से पीड़ित हैं। गुलिक पंचम भाव में सामान्य मानसिक संतुलन के लिए प्रतिकूल है। पंचमेश, छठे स्थान में वक्री है।

नवांश कुण्डली में चन्द्रमा अष्टमेश है तथा लग्न को देख रहा है। राहु-केतु अक्ष पंचम भाव में है जो मंगल के द्वारा भी दृष्ट है। गुरु तथा बुध, अशुभ भावों में सूर्य तथा शनि से पीड़ित हैं।

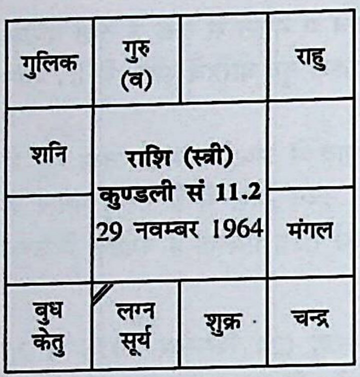

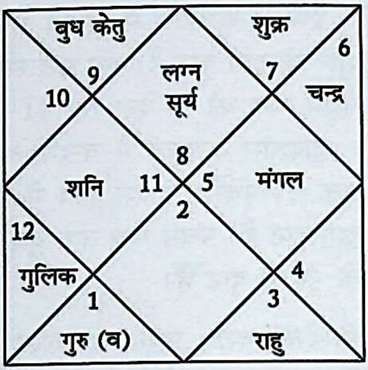

लग्न	19°32'	मंगल	17°58'	शुक्र	11°33'
सूर्य	13°29'	बुध	04°47'	शनि	05°37'
चन्द्र	16°55'	गुरु (व)	25°38'	राहु	00°22'

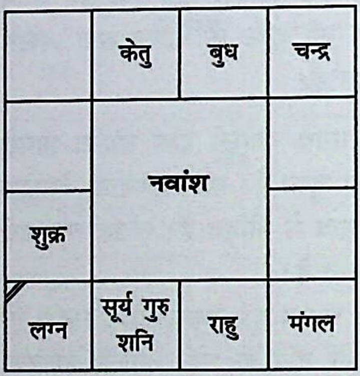

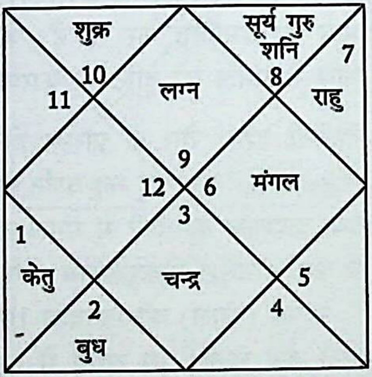

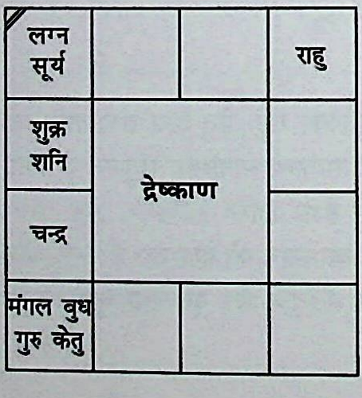

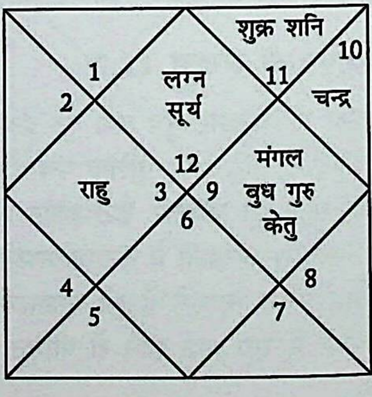

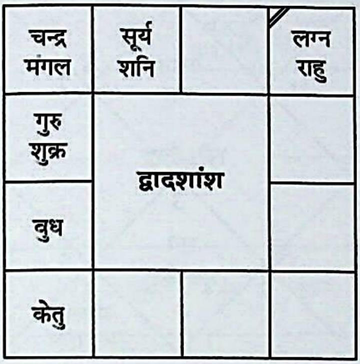

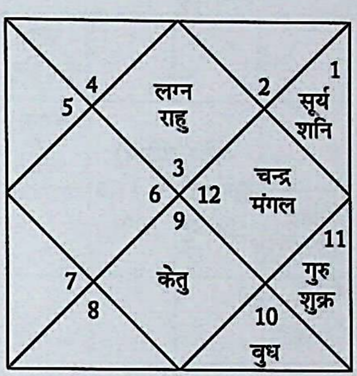

द्रेष्काण तथा द्वादशांश कुण्डली में चन्द्रमा, बुध, गुरु तथा पंचम भाव विभिन्न प्रकार से पीड़ित हैं।

यह स्त्री एक शराबी, नशीली दवा का सेवन करने वाली, हिंसक तथा झगड़ालू प्रवृत्ति की भी है जो अपनी इस दशा के लिए अपनी मां को दोषी मानती है।

विंशोत्तरी दशा: राहु महादशा सितम्बर 1976 से सितम्बर 1994 तक थी। राहु-राहु (4 जून 1979 तक) के तुरन्त बाद समस्याएं उठीं। राहु लग्न कुण्डली के अष्टम भाव में है, नवांश कुण्डली में पंचम भाव को पीड़ित करता है तथा द्रेष्काण कुण्डली में मंगल से, द्वादशांश कुण्डली में मंगल तथा शनि से पीड़ित है। आगामी महादशा गुरु की है, जो पीड़ित है।

योगिनी दशा: 1978 से आगे, भद्रिका (बुध), उल्का (शनि) तथा सिद्धा (शुक्र) की महादशाएं चलीं। बुध, शनि तथा शुक्र राशि तथा सभी वर्ग कुण्डलियों में पीड़ित हैं तथा अशुभ भावों के स्वामी भी हैं। जातक की मानसिक दशा धीरे-धीरे खराब होती गई परन्तु आने वाली दशाओं में कुछ सुधार दिखाई देता है।

कुण्डली संख्या 11.3

यह बच्चा जन्म से मंदबुद्धि पैदा हुआ। चन्द्रमा तथा गुरु क्रमशः द्वितीय व अष्टम में प्रतिकूल हैं। ये वक्री शनि, मंगल तथा षष्ठेश द्वारा भी पीड़ित हैं। गुरु लग्नेश भी है। चन्द्रमा अंशों में शनि के बहुत समीप है। पंचमेश मंगल, अष्टम भाव में नीच का है तथा षष्ठेश से युक्त होकर शनि से दृष्ट है।

नवांश कुण्डली में चन्द्रमा, बुध तथा गुरु, शनि के प्रभाव में हैं। बुध अष्टम भाव में है। गुरु पंचमेश है तथा नीच राशि में है।

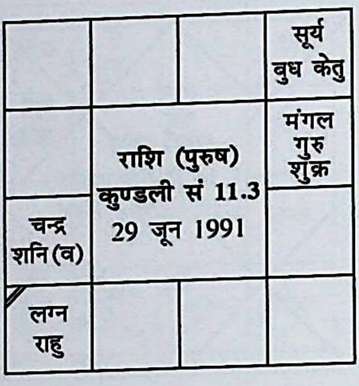

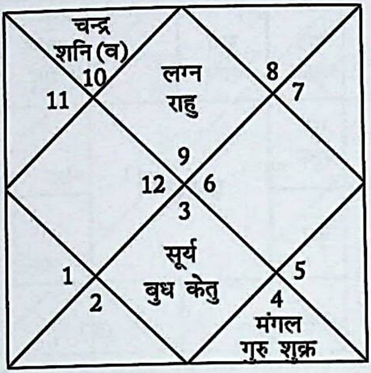

लग्न	23°44'	मंगल	26°33'	शुक्र	27°55'
सूर्य	13°37'	बुध	27°46'	शनि (व)	11°42'
चन्द्र	10°33'	गुरु	20°21'	राहु	25°11'

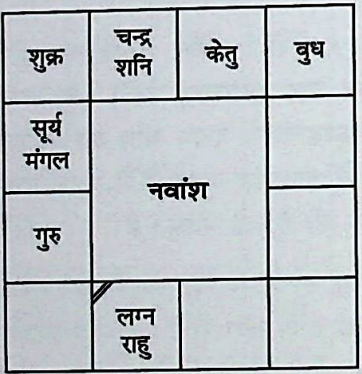

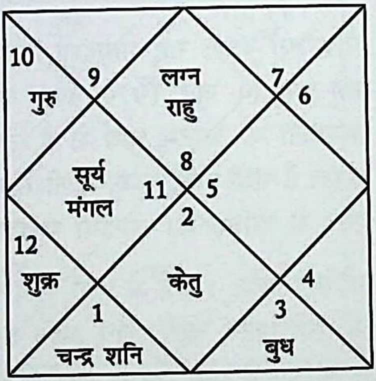

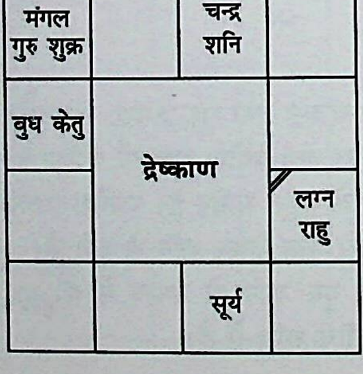

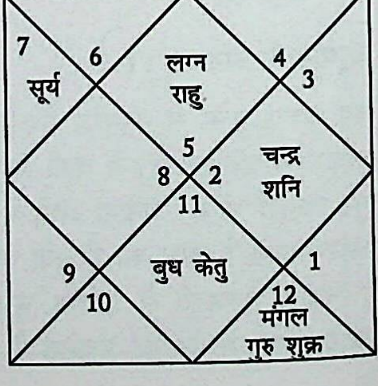

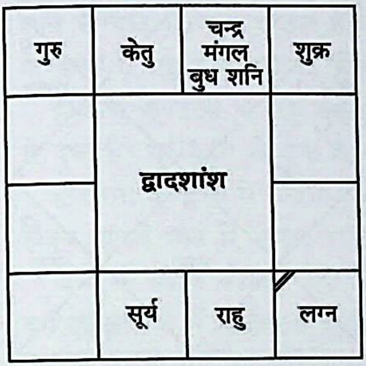

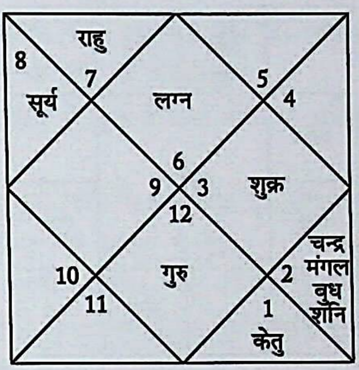

द्रेष्काण कुण्डली में, बुध, गुरु, चन्द्रमा तथा पंचमेश सभी पीड़ित हैं। द्वादशांश कुण्डली में गुरु पीड़ित नहीं है।

जन्म के समय विंशोत्तरी दशा चन्द्रमा की थी, जो अष्टमेश है। योगिनी दशा मंगला-पिंगला (चन्द्र-सूर्य) थी। सूर्य सप्तम भाव में राहु-केतु सम्पात पर है तथा बुध से युक्त है, जो अशुभ स्वामी है। सूर्य शेष वर्ग कुण्डलियों में पीड़ित है तथा द्रेष्काण में नीच का है।

कुण्डली संख्या 11.4

यह एक अन्य जन्मजात मन्द बुद्धि बच्चा है। चन्द्रमा बारहवें भाव में अष्टमेश शनि तथा वक्री मंगल के द्वारा पीड़ित है। बुध पर शनि तथा वक्री पंचमेश

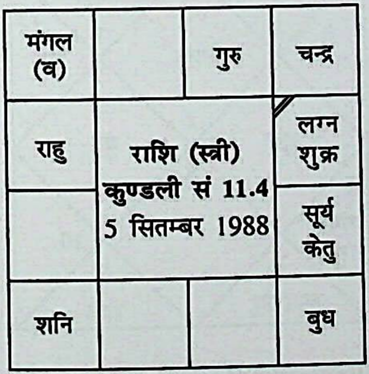

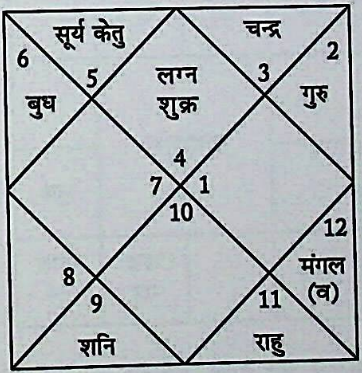

लग्न	25°08'	मंगल (व)	17°09'	शुक्र	03°38'
सूर्य	18°54'	बुध	13°23'	शनि	02°18'
चन्द्र	10°02'	गुरु	11°49'	राहु	20°24'

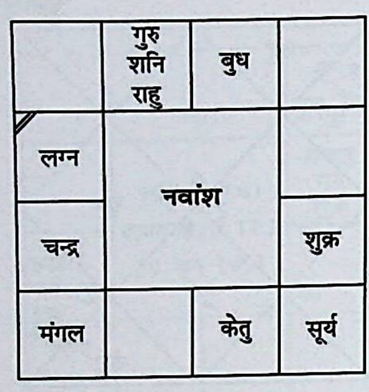

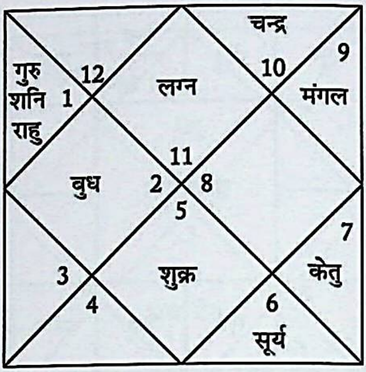

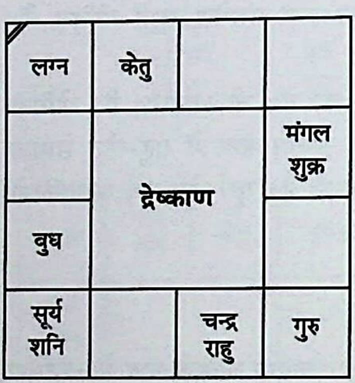

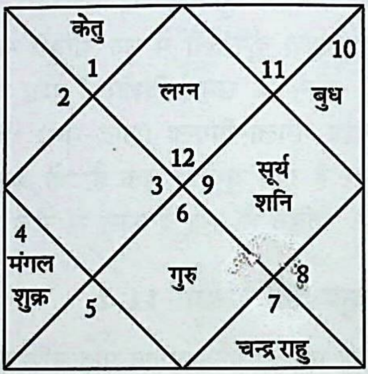

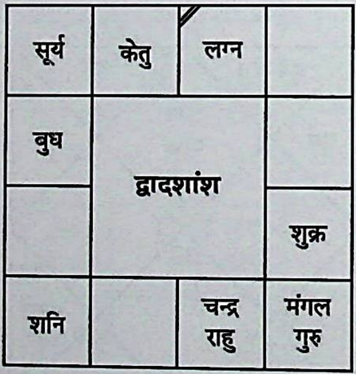

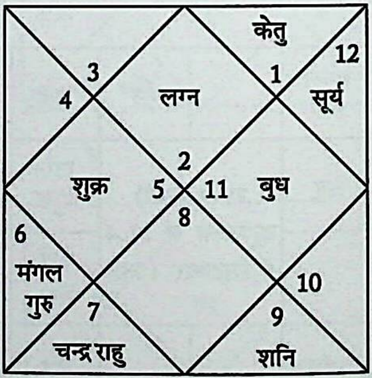

मंगल की दृष्टि है। गुरु षष्ठेश है तथा पंचम भाव को देख रहा है। वर्ग कुण्डलियों में भी इन पर विभिन्न पाप प्रभाव दिखता है।

जन्म के समय *विंशोत्तरी दशा* राहु-गुरु थी। राहु अष्टम भाव में सूर्य तथा

शनि से दृष्ट है। गुरु षष्ठेश है तथा पंचम भाव को देख रहा है। नवांश कुण्डली में राहु तथा गुरु की युति नीच के शनि से पीड़ित है।

द्रेष्काण कुण्डली में राहु पंचमेश चन्द्रमा से युक्त है तथा नीच के मंगल से दृष्ट है। गुरु शनि से दृष्ट है।

द्वादशांश कुण्डली में चन्द्रमा तथा राहु छठे स्थान में हैं जबकि गुरु अष्टमेश होकर पांचवें भाव में, मंगल, शनि तथा सूर्य के प्रभाव में है।

जन्म के समय *योगिनी दशा* मंगला-भ्रामरी (चन्द्र-मंगल) थी। चन्द्र सभी वर्ग कुण्डलियों में भावेशत्व, युति व दृष्टि के कारण पीड़ित है। मंगल वक्री पंचमेश है जो वर्ग कुण्डलियों में विभिन्न प्रकार से पीड़ित है।

द्वादश अध्याय

नेत्र–रोग

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।।

जो मुझे हर जगह देखता है तथा मुझमें सबको देखता है, उसके लिए मैं अगम्य नहीं हूं और वह भी मुझसे दूर नहीं है। न ही वो मेरे लिए अदृश्य रहता है।

– गीता, 2-30

ज्योतिष के प्राचीन ग्रन्थों में नेत्र रोग तथा अन्धता के अनेक योगों का वर्णन किया गया है। इन योगों का केवल शब्दार्थ अर्थ नहीं लेना चाहिए। इन्हें दशाओं के साथ जोड़कर योगों के फलीभूत होने के समय को जानना चाहिए।

शास्त्रीय योग

यहां पर यह कहना प्रासंगिक होगा कि जहां कहीं भी अन्धापन के योग दिए हैं, उनका तात्पर्य केवल दृष्टि-दोष से है। यदि इन योगों में शुभ ग्रहों की दृष्टि या युति हो तो दृष्टि दोष का सर्वथा अभाव और अतिरिक्त पाप प्रभाव होने पर व्यापक कुप्रभाव सम्भव है। अतिरिक्त पाप प्रभाव से साधारण दोषदायक योग भी बड़ी हानि कर सकता है।

I. अल्प दृष्टि/नेत्र रोग

निम्नलिखित योग दृष्टि को प्रभावित कर सकते हैं या किसी नेत्र रोग का कारण बन सकते हैं। यहां यह आवश्यक नहीं है कि जातक को अन्धापन ही हो।

1. सूर्य की लग्न में उपस्थिति।

   नोटः सूर्य का लग्न में होना नेत्रों के लिए अशुभ समझा जाता है:

(i) मेष लग्न में, यह नेत्रों में दाह, सूजन या लाली देता है (मेष में स्थिति से मंगल का प्रभाव)।

(ii) सिंह लग्न में यह रतौंधी का कारण होता है।

(iii) कर्क लग्न में यह मोतिया बिन्द देता है।

(iv) तुला लग्न में यह अन्धापन देता है।

2. क्षीण चन्द्र, शनि से दृष्ट तथा गुरु से अदृष्ट हो।
3. सूर्य दूसरे भाव में हो।
4. दूसरे भाव में दो पाप ग्रह हों।
5. दूसरे भाव में चन्द्र पाप ग्रहों से दृष्ट हो।

नोट: सूर्य तथा चन्द्र इकट्ठे दूसरे भाव में रतौंधी रोग का कारण होते हैं।

6. चन्द्रमा, षष्ठेश होकर वक्री ग्रह की राशि में बैठा हो।

नोट: (i) यह केवल कुम्भ लग्न के लिए ही सम्भव है।

(ii) अन्य मत से कोई भी षष्ठेश वक्री ग्रह की राशि में हो तो प्रतिकूल फल प्रदान करता है।

7. षष्ठ भाव में चन्द्रमा शुभ ग्रह से अदृष्ट अथवा अयुक्त हो।
8. शुक्र षष्ठेश होकर लग्न में हो तथा कोई शुभ ग्रह वक्री होकर छठे, आठवें या बारहवें भाव में हो।
9. सूर्य, शुक्र तथा मंगल इकट्ठे किसी भी भाव में हों।
10. द्वितीयेश तथा द्वादशेश इकट्ठे शुक्र से छठे, आठवें या बारहवें भाव में हों।

II. अन्धत्व

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि इन योगों से अन्धापन तभी सम्भव होगा जब सभी वर्ग कुण्डलियों में काफी पाप प्रभाव हो तथा दशा क्रम भी इसे सूचित करता हो।

1. सूर्य से चन्द्र दूसरे भाव में हो तथा पाप ग्रहों की युति अथवा दृष्टि से पीड़ित हो।
2. नीच चन्द्र छठे या बारहवें भाव में पाप ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो।
3. लग्न में मंगल अस्त हो।
4. सूर्य और चन्द्र केन्द्र में हों तथा जल तत्त्व राशि के आठवें नवांश में हों।

5. लग्न में चन्द्र, कर्क, मेष या वृष नवांश में या धनु नवांश के पूर्वार्ध में हो।
6. लग्न में चन्द्र वृष राशि में 19 अंश पर या मीन राशि में 20 अंश पर हो।
7. लग्नेश अष्टम भाव में, पाप ग्रह की राशि में हो।
8. मंगल, चन्द्र से छठे भाव में स्थित हो।
9. सूर्य, चन्द्र, मंगल, शनि, किसी भी क्रम में दूसरे, छठे, आठवें या बारहवें भावों में हों।

   नोट: पाप ग्रह 6/12 भावों में बाईं आंख को तथा 2/8 भावों में दायीं आंख को क्षति पहुंचाते हैं।
10. सूर्य लग्न में राहु-केतु अक्ष में हो तथा पाप ग्रह त्रिकोण में हों।
11. सूर्य तथा चन्द्र छठे तथा आठवें भाव में; या मंगल और शनि छठे तथा आठवें भाव में हों।
12. सूर्य तथा चन्द्र इकट्ठे बारहवें भाव में पाप ग्रहों से पीड़ित हों।
13. चन्द्र तथा शुक्र इकट्ठे दूसरे भाव में पाप ग्रहों से पीड़ित हों।
14. लग्नेश, द्वितीयेश तथा सूर्य इकट्ठे स्थित हों।

   नोट: (i) जब ये इकट्ठे दूसरे भाव में स्थित हों तो जन्म से अन्धापन होता है।

   (ii) सूर्य और द्वितीयेश इकट्ठे चतुर्थेश से युक्त हो तो माता को अन्धापन होता है; जब वे तृतीयेश के साथ हों तो सहोदर को अन्धापन; यदि नवमेश के साथ हों तो पिता को अन्धापन होता है।
15. द्वितीयेश, शुक्र के साथ तथा लग्नेश से युक्त हो तथा वह शुक्र के नवांश में, शुक्र की मूलत्रिकोण राशि में या शुक्र की उच्च राशि में हो।

III. जन्मांध के योग

1. सूर्य, शुक्र तथा लग्नेश इकट्ठे त्रिकस्थान में हों।
2. सूर्य, चन्द्र, शुक्र, मंगल, शनि इकट्ठे किसी भी राशि में हों।
3. नीच राशि में शनि अस्त हो तथा ग्रहण के समय जन्म हो (संभवतः सूर्य ग्रहण!)।
4. सूर्य राहु-केतु अक्ष पर हो तथा मंगल और शनि त्रिकोण में हों।

5. लग्नेश, द्वितीयेश, सूर्य और शुक्र इकट्ठे किसी त्रिकस्थान में हों।
6. लग्नेश, द्वितीयेश, द्वादशेश और शुक्र इकट्ठे किसी त्रिकस्थान में हों।

IV. एक आंख में अन्धापन

1. लग्न में मंगल या चन्द्र, शुक्र या गुरु से दृष्ट हो।
2. सिंह राशि में चन्द्रमा सातवें भाव में हो और मंगल द्वारा दृष्ट हो।

   नोट: यह कुम्भ लग्न के लिए ही सम्भव है।
3. कर्क राशि में सूर्य सप्तम भाव में, मंगल द्वारा दृष्ट हो।

   नोट: यह मकर लग्न के लिए ही सम्भव है।
4. चन्द्र और सूर्य, बारहवें तथा छठे भाव में हों: जातक तथा उसकी पत्नी दोनों एक आंख वाले होते हैं।

V. आंख पर चोट

1. मंगल बारहवें स्थान में तथा शनि दूसरे स्थान में क्रमशः बायीं तथा दायीं आंख पर चोट पहुंचाते हैं।
2. द्वितीयेश, द्वादशेश तथा शुक्र नवांश कुण्डली में नीच राशियों में हों तथा पाप ग्रहों से पीड़ित हों।
3. द्वितीयेश, षष्ठेश तथा दशमेश, शुक्र के साथ संयुक्त होकर लग्न में हों तो शासक के कोप से आंख की हानि होती है।

उपर्युक्त योगों में से बहुत से *"जातक तत्त्व"* से लिए गए हैं। यहां पर पुनः इस बात पर ज़ोर दिया जाता है कि नियमों को भली-भांति समझें और शुभ तथा अशुभ प्रभावों के न्यायपूर्ण तुलनात्मक अध्ययन के बिना भविष्यफल न कहें। प्रायः यह पाया गया है कि ये योग दशा तथा गोचर प्रतिकूल होने पर अपना प्रभाव अवश्य दिखाते हैं।

नेत्र विकार में ज्योतिषीय नियम

इन तत्त्वों की गवेषणा अवश्य करनी चाहिए।

1. *प्रकाशक ग्रह*: सूर्य तथा चन्द्र क्रमशः दायीं तथा बायीं आंख को इंगित करते हैं।
2. *शुक्र*: शुक्र नेत्रों तथा नेत्र ज्योति का भी कारक है। लग्न में पीड़ारहित

शुक्र, सुन्दर आंखें तथा चेहरा देता है। शुक्र, शनि से युक्त हो तो आंखें छोटी होती हैं। शुक्र आंख के 'लेंस' का भी द्योतक है।

नोटः जो लोग चश्मे का व्यवसाय करते हैं उनका शुक्र उन्नत होगा तथा व्यवसाय तथा लाभ भाव से सम्बन्धित होगा।

3. *दूसरा भाव/द्वितीयेश*: दूसरे भाव का दृष्टि से सम्बन्ध हैं। बली तथा शक्तिशाली द्वितीयेश या द्वितीय भाव पर शुभ प्रभाव के कारण सुन्दर तथा स्वस्थ आंखें होती हैं। यदि द्वितीयेश छठे, आठवें या बारहवें भाव में हो तो कोई नेत्र दोष होता है।

4. *बारहवां भाव*: दूसरा भाव विशेष रूप से दायीं आंख तथा बारहवां भाव बायीं आंख का सूचक है। चन्द्रमा बारहवें भाव में बायीं आंख को क्षति पहुंचाता है। सूर्य जो दायीं आंख का कारक है बारहवें भाव में (हानि स्थान) दायीं आंख को क्षति पहुंचाता है।

नेत्र रोगः कुछ उदाहरण

कुण्डली संख्या 12.1

जातक जब युवा था तब उसकी बायीं आंख पर चोट लगी। इस कारण दृष्टि की लगभग पूर्ण हानि तथा "कार्नियल ओपेसिटी" (corneal opacity) हो गई। आंखों से तथा दृष्टि से सम्बन्ध रखने वाले सभी भाव व ग्रह पीड़ित हैं। चन्द्रमा छठे स्थान में षष्ठेश तथा केतु के साथ है। सूर्य अष्टम भाव में है। शुक्र सप्तम भाव में वक्री शनि के द्वारा दृष्ट है। अष्टम भाव से सूर्य की दृष्टि दूसरे भाव

	चन्द्र मंगल केतु	शुक्र	सूर्य
	राशि (पुरुष) कुण्डली सं 12.1 11 जुलाई 1958		बुध
	लग्न शनि (व)	राहु	गुरु

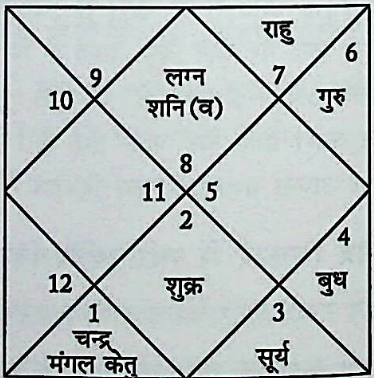

लग्न	29°52'	मंगल	00°23'	शुक्र	23°54'
सूर्य	25°23'	बुध	17°35'	शनि (व)	27°14'
चन्द्र	22°36'	गुरु	29°13'	राहु	04°26'

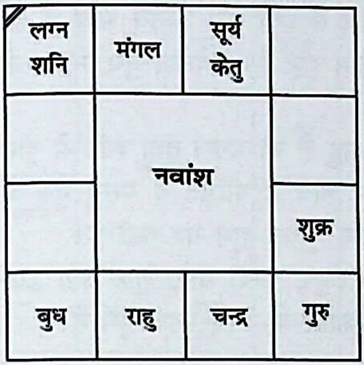

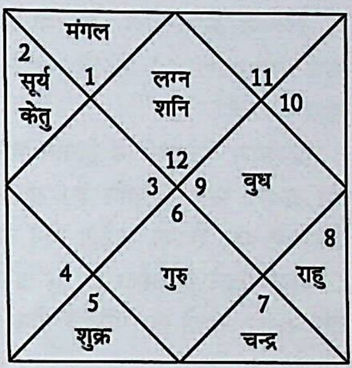

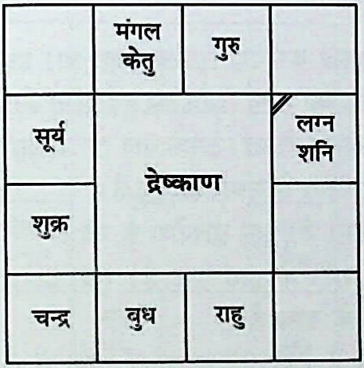

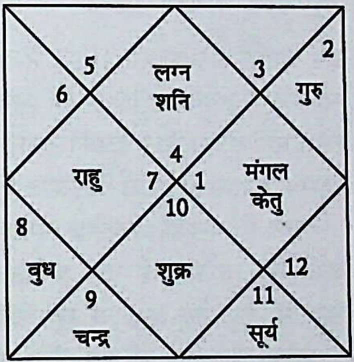

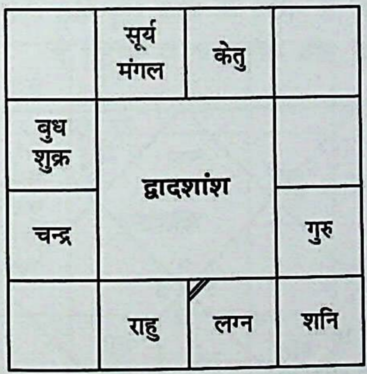

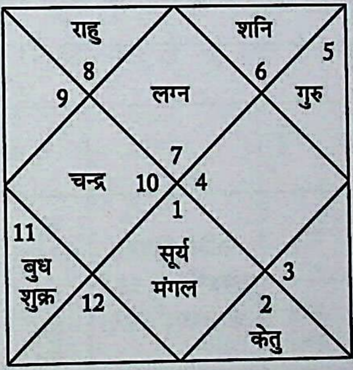

पर है। द्वादश भाव राहु-केतु अक्ष पर है। तथा छठे भाव से मंगल तथा चन्द्र के द्वारा दृष्ट है। किन्तु शुक्र पर गुरु की शुभ दृष्टि भी है।

नवांश कुण्डली में चन्द्रमा अष्टम भाव में मंगल के द्वारा दृष्ट है जबकि सूर्य राहु-केतु अक्ष पर शनि के द्वारा दृष्ट है। शुक्र छठे भाव में तथा मंगल दूसरे भाव में है।

द्रेष्काण कुण्डली में, चन्द्रमा छठे भाव में तथा सूर्य आठवें भाव में है। शुक्र सप्तम भाव में अष्टमेश शनि के द्वारा दृष्ट है। द्वादशेश बुध, मंगल के द्वारा दृष्ट है।

द्वादशांश कुण्डली में द्वितीय भाव में राहु है जो मंगल तथा शनि से दृष्ट है। द्वादश भाव में शनि है। सूर्य सप्तम भाव में पीड़ित है परन्तु गुरु के द्वारा भी दृष्ट है जो षष्ठेश होने के कारण पूर्णतः शुभ ग्रह नहीं है।

ऐसा देखने में आता है कि प्रकाशक (सूर्य, चन्द्र) ग्रहों, शुक्र तथा 2/8 तथा 6/12 भावों का पीड़ित होना नेत्र विकार के लिए महत्त्वपूर्ण है।

कुण्डली संख्या 12.2

इस जातक का अगस्त 1993 में बायीं आंख का पर्दा खिसक गया था। इस सम्बन्ध में 2 नवम्बर 1993 को इसकी आंख की शल्य चिकित्सा हुई परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। वरन्, इसकी हालत और खराब हो गई। इसके बाद 27 जनवरी 1994 को इसका दूसरा ऑपरेशन हुआ और तब से सुधार हो रहा है।

लग्न में चन्द्रमा, अष्टमेश मंगल के साथ है। सूर्य द्वादशेश है जो लग्नेश वक्री बुध के साथ है तथा षष्ठेश वक्री शनि के द्वारा दृष्ट है। शुक्र द्वादश भाव में राहु-केतु अक्ष पर शुभ ग्रह गुरु के साथ है।

नवांश कुण्डली में सूर्य नीच राशि में है तथा चन्द्रमा उच्च राशि में है और पीड़ित भी नहीं है। शुक्र छठे स्थान में मंगल के साथ राहु-केतु अक्ष पर है तथा गुरु के द्वारा दृष्ट है। बारहवां भाव बुरी तरह से पीड़ित है।

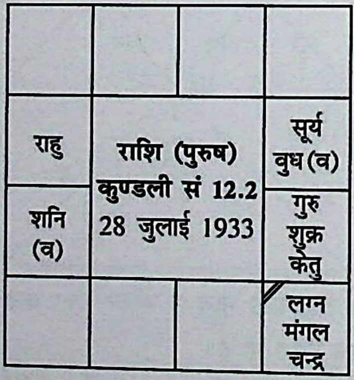

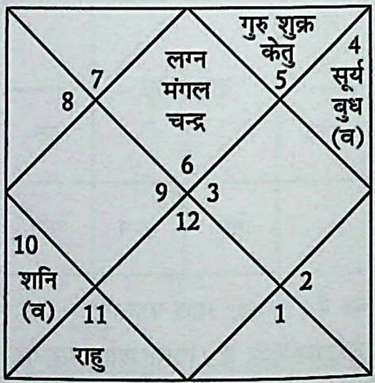

लग्न	02°18'	मंगल	19°06'	शुक्र	07°39'
सूर्य	11°40'	बुध (व)	15°33'	शनि (व)	20°44'
चन्द्र	16°07'	गुरु	28°22'	राहु	06°51'

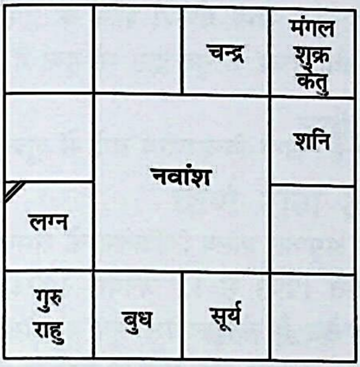

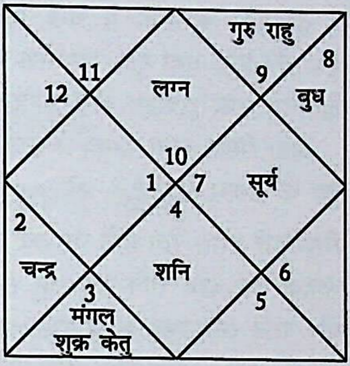

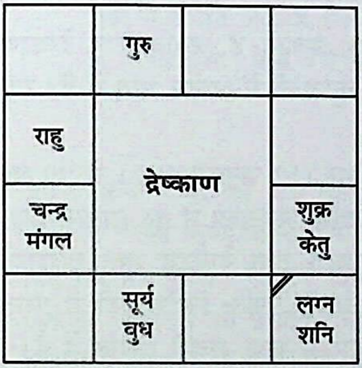

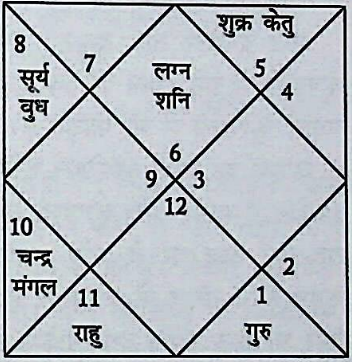

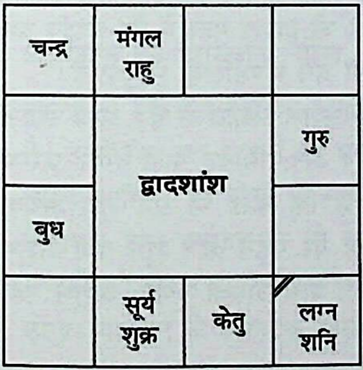

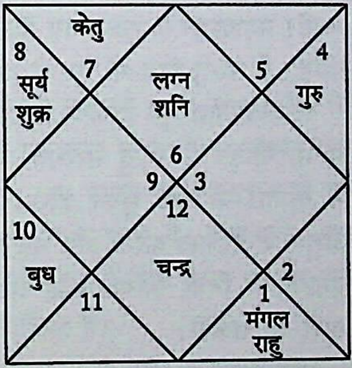

द्रेष्काण कुण्डली में, चन्द्रमा अष्टमेश मंगल के द्वारा तथा सूर्य, षष्ठेश शनि के द्वारा पीड़ित है। शुक्र बारहवें भाव में राहु-केतु अक्ष पर मंगल के द्वारा दृष्ट है, यद्यपि शुभ ग्रह गुरु, शुक्र को देख रहा है।

द्वादशांश कुण्डली में चन्द्र, सूर्य तथा शुक्र सभी षष्ठेश शनि के द्वारा दृष्ट हैं। शुक्र तथा सूर्य, अष्टमेश मंगल तथा उच्च के गुरु द्वारा भी दृष्ट हैं। द्वितीयेश तथा द्वादशेश दोनों पीड़ित हैं।

अतः मिला जुला प्रभाव दिखाई पड़ता है। सभी विचारणीय वर्गों में शुक्र, गुरु के प्रभाव में है।

विंशोत्तरी दशा: रोग होने पर तथा पहली असफल शल्य चिकित्सा के समय जातक की दशा शनि-राहु-राहु (8 अगस्त 1993 से 12 जनवरी 1994) थी। शनि (महादशा का स्वामी) वक्री षष्ठेश है जो द्वादशेश सूर्य को देख रहा है। राहु (अन्तर तथा प्रत्यन्तर दशा का स्वामी) छठे भाव से शुक्र तथा बारहवें भाव को प्रभावित कर रहा है।

शनि द्रेष्काण तथा द्वादशांश में अशुभ स्वामी है जबकि राहु द्रेष्काण कुण्डली में छठे स्थान पर तथा द्वादशांश कुण्डली में अष्टम भाव में है। राहु नवांश कुण्डली में भी पीड़ित है।

जातक का दूसरा ऑपरेशन शनि-राहु-गुरु (12 जनवरी 1994 से 29 मई 1994) में हुआ। राशि कुण्डली में तथा नवांश कुण्डली में गुरु (प्रत्यन्तर्दशा) राहु-केतु अक्ष पर है, और नवांश कुण्डली तथा द्रेष्काण तथा द्वादशांश कुण्डली में मंगल के प्रभाव में है। गुरु यद्यपि पूर्णतः निर्दोष नहीं है परन्तु फिर भी बल, स्थान तथा भावेश के विचार से कुछ अच्छी स्थिति में है।

योगिनी दशा: 13 अगस्त 1993 से 13 मार्च 1994 तक सिद्धा-धान्या (शुक्र-गुरु) चली। महादशानाथ शुक्र स्वयं द्वितीयेश है जो द्वादश भाव में है। यद्यपि यह पीड़ित है परन्तु फिर भी गुरु के द्वारा सभी वर्ग कुण्डलियों में दृष्ट है।

अन्तर्दशानाथ गुरु द्रेष्काण कुण्डली में अशुभ स्थिति में है। अन्य स्थानों में भी पीड़ित है परन्तु सापेक्षतः बली है। अतः मिश्रित फल देगा। प्रारम्भ में बीमारी के बाद सुधार होगा। स्पष्ट है कि कोई भी ग्रह शुभ अथवा अशुभ दोनों फल करेगा और यह उस ग्रह पर पड़ने वाले शुभ तथा अशुभ प्रभावों पर निर्भर करेगा। कोई दशा पूर्णतः शुभ अथवा पूर्णतः अशुभ नहीं मानी जा सकती।

पाठकों को बालारिष्ट अध्याय की **कुण्डली संख्या 6.5** को भी देखना चाहिए। इस कुण्डली में छठे भाव पर काफी पाप प्रभाव है जिसके कारण एक असाध्य और अन्ततः प्राणघातक नेत्र रोग हुआ। प्रतिकूल दशा क्रम जीवन में जल्दी प्रारम्भ हुआ जिसके कारण दुःखद अन्त हुआ।

त्रयोदश अध्याय

कर्ण रोग तथा वाणी विकार

वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे वाच इत्।
स सर्व्वममृतं यच्च मर्त्यमिति श्रुतिः।।

शब्द से समस्त ब्रह्माण्ड, जिसमें नश्वर और अनश्वर सभी सम्मिलित हैं, उत्पन्न हुआ– ऐसा वेदों में कहा गया है।

– *'वाक्यपदीय'*

श्रवण क्रिया शरीर की एक महत्त्वपूर्ण क्रिया है। ज्योतिष शास्त्र के प्राचीन ग्रन्थों में किसी कुण्डली में कर्णरोग का विचार करने के लिए बहुत से योग दिए गए हैं। वास्तव में योग केवल बहरेपन के ही हैं। केवल बहरापन ही अकेला ही कानों को प्रभावित नहीं करता। अन्य भी बहुत सी बीमारियां हो सकती हैं जो कान या सुनने की प्रक्रिया को प्रभावित कर सकती हैं। हम पहले शास्त्रों में दिए गए योगों का वर्णन करेंगे जिनके कारण बहरापन हो सकता है।

बहरेपन के शास्त्रीय योग

शास्त्रों में दिए गए विविध योगों का केवल शब्दार्थ ग्रहण व्यवहारिक नहीं है। उनमें दिए गए नियमों को भलीभांति समझकर कुण्डली पर उनका प्रयोग करना चाहिए। इन योगों के साथ इन पर पाप प्रभाव को निरस्त करने वाले विद्यमान शुभ प्रभावों को भी देखना आवश्यक होता है। शुभ तथा अशुभ प्रभावों की तुलना ही निर्णय करेगी कि किस दशा निर्दिष्ट समय पर रोग प्रकट होगा। बहरेपन के शास्त्रोक्त योग निम्नलिखित हैं।

1. बुध छठे, आठवें या बारहवें भाव में शनि के द्वारा दृष्ट हो।
2. शनि छठे भाव तथा षष्ठेश बुध को देख रहा हो।

   नोट: यह केवल मेष तथा मकर लग्न के लिए तभी सम्भव है जब शनि चौथे, नवें या बारहवें भाव में हो।

3. बुध शनि से चौथे भाव में हो तथा षष्ठेश किसी त्रिक भाव में हो।
4. बुध तथा शुक्र की युति बारहवें भाव में, बाएं कान की दोषपूर्ण श्रवण क्रिया को दर्शाती है।
5. तीसरे, ग्यारहवें, पांचवें या नवें भाव में पाप ग्रह, शुभग्रहों से दृष्ट न हों।

   नोट: 3/9 अक्ष पर पाप ग्रह दाएं कान को तथा 5/11 अक्ष पर बाएं कान को क्षति पहुंचाते हैं।

6. नीच राशि में शुक्र, राहु के साथ हो।
7. बुध तथा षष्ठेश किसी त्रिकस्थान में शनि के द्वारा दृष्ट हों।
8. बुध तथा षष्ठेश चतुर्थ भाव में हों और शनि लग्न में हो।
9. सूर्य तथा बुध की युति तीसरे, छठे या ग्यारहवें भाव में हो।
10. शुक्र वृष अथवा धनु लगन में हो तथा पापी चन्द्र, शुक्र को देखता हो।
11. रात्रि के समय जन्म हो, शुक्र पांचवें तथा बुध छठे भाव में हो।
12. गुरु धनु राशि में हो तथा बुध और शुक्र शनि की हद्दा में हों।

   नोट: हद्दा, वर्षफल पद्धति में एक विशेष वर्ग है। पाठक हद्दा के विषय में अधिक जानकारी के लिए लेखक की पुस्तक *"वर्षफल सर्वस्व"* (A Textbook of Varshaphala) देखें।

13. चन्द्र, मंगल तथा बुध इकट्ठे राहु-केतु अक्ष पर तीसरे या ग्यारहवें भाव में हों।

   नोट: यह योग भीतरी कान के गम्भीर रोग मैस्टॉयडायटिस (mastoiditis) को दर्शाता है।

14. सूर्य से युक्त बुध तीसरे, छठे या ग्यारहवें भाव में, मंगल तथा शनि से सप्तम में हो।

   नोट: यह योग कान के आन्तरिक भाग के उस रोग को दर्शाता है जिसमें शल्यक्रिया अनिवार्य हो जाती है।

ज्योतिषीय नियम

कान की बीमारी का निर्णय इस प्रकार से लेना चाहिए:

1. *बुध:* सुनने तथा किसी भी प्रकार का संचार का कार्य बुध करता है। बली बुध शुभ ग्रहों के प्रभाव में अच्छी श्रवण शक्ति देता है। पीड़ित हो तो विपरीत फल होते हैं।

2. *तीसरा भाव*: कुण्डली में तीसरे भाव का सम्बन्ध कान से है। तीसरे भाव तथा तृतीयेश पर शुभ प्रभाव हों तो अच्छी श्रवण शक्ति होती है।
3. *ग्यारहवां भाव*: तीसरा भाव तथा तृतीयेश दाएं कान को (श्रवण प्रणाली के अतिरिक्त) एवं एकादश भाव तथा एकादशेश बाएं कान को इंगित करते हैं।

बुध, तीसरा भाव, तृतीयेश, एकादश भाव तथा एकादशेश पर शुभ तथा अशुभ प्रभावों के अनुसार ही कान की श्रवण शक्ति होती है।

कर्ण रोग: उदाहरण

कुण्डली संख्या 13.1

यह कुण्डली एक लड़की की है जो बचपन में ही बहरी हो गई थी। बाएं कान में बहुत कम श्रवण शक्ति बची थी। दाएं कान से बिल्कुल बहरी हो गई थी। अन्यथा यह बहुत बुद्धिमान तथा अच्छी चित्रकार है जो कि राशि कुण्डली के तृतीय भाव में शुक्र के होने से तथा नवांश कुण्डली में शुक्र तथा चन्द्र की युति तीसरे भाव में होने से स्पष्ट है।

बुध की सूर्य के साथ युति है तथा वह अष्टमेश शनि एवं वक्री गुरु के द्वारा दृष्ट है। नवांश कुण्डली में, बुध अष्टम भाव में मंगल तथा शनि के प्रभाव में है। द्रेष्काण में भी यह अष्टम भाव में है जबकि द्वादशांश कुण्डली में यह अष्टमेश है जो पापी शुक्र के साथ है।

गुरु (व)	चन्द्र केतु	मंगल	लग्न
	राशि (स्त्री) कुण्डली सं 13.1 22 सितम्बर 1975		शनि
			शुक्र
		राहु	सूर्य बुध

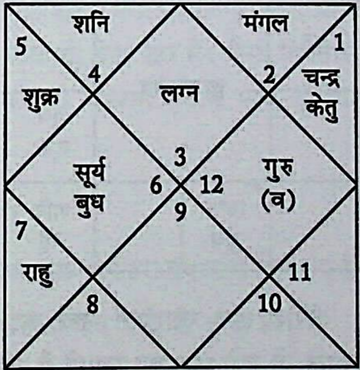

लग्न	13°57'	मंगल	27°39'	शुक्र	02°19'
सूर्य	05°36'	बुध	29°57'	शनि (व)	07°03'
चन्द्र	00°22'	गुरु (व)	28°48'	राहु	29°40'

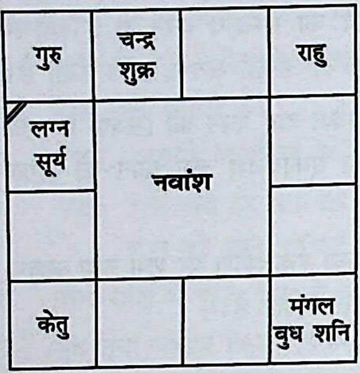

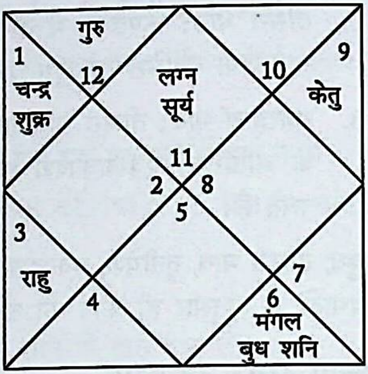

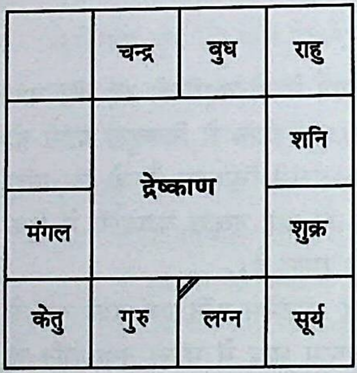

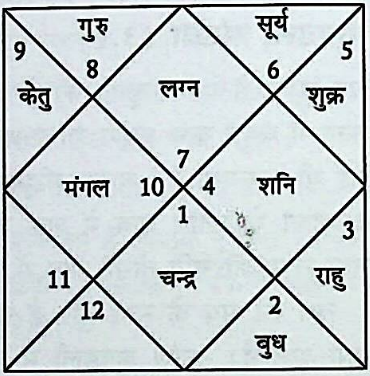

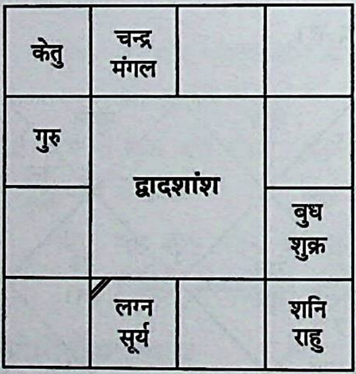

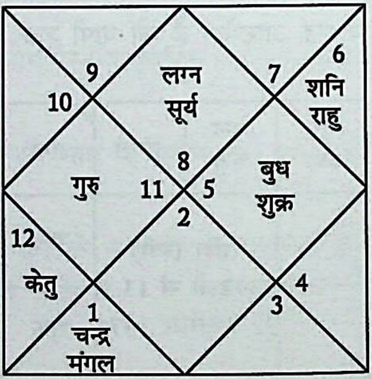

तीसरा तथा ग्यारहवां भाव कई प्रकार से पीड़ित हैं। राशि कुण्डली में मंगल जो छठे भाव का स्वामी है, तीसरे भाव को देख रहा है जहां पर द्वादशेश शुक्र बैठा है। ग्यारहवां भाव राहु-केतु अक्ष पर है तथा अष्टमेश शनि द्वारा दृष्ट है।

नवांश कुण्डली में षष्ठेश चन्द्र तीसरे भाव में है तथा केतु ग्यारहवें भाव में है। दोनों मंगल के द्वारा दृष्ट हैं। तृतीयेश मंगल, शनि के साथ अष्टम भाव में अष्टमेश बुध के साथ स्थित है।

द्रेष्काण कुण्डली में, केतु तीसरे भाव में है जबकि अष्टमेश शुक्र ग्यारहवें भाव में है जो मंगल के द्वारा पीड़ित है।

द्वादशांश कुण्डली में तीसरे भाव पर कोई पाप प्रभाव नहीं है यद्यपि तृतीयेश राहु के साथ युति कर रहा है। ग्यारहवें भाव में राहु तथा शनि हैं।

दशा क्रम

जन्म के समय *विंशोत्तरी दशा* केतु-केतु थी। आप देखेगें कि राहु-केतु अक्ष ग्यारहवें भाव को राशि कुण्डली, नवांश तथा द्वादशांश कुण्डली में प्रभावित कर रहा है जबकि द्रेष्काण कुण्डली में यह तीसरे भाव को प्रभावित कर रहा है। अगली अन्तर्दशा शुक्र की है जो राशि तथा नवांश कुण्डली में तीसरे भाव में स्थित है, द्रेष्काण कुण्डली के ग्यारहवें भाव में तथा द्वादशांश कुण्डली में एकादशेश के साथ स्थित है। अगली अन्तर्दशाएं सूर्य (तृतीयेश), चन्द्रमा (ग्यारहवें भाव में), मंगल (एकादशेश), राहु (ग्यारहवां भाव राहु-केतु अक्ष पर), गुरु (तृतीयेश को देख रहा है), शनि (तृतीयेश एवं ग्यारहवें भाव को देख रहा है) और बुध (श्रवण शक्ति का कारक है, जो तृतीयेश के साथ है) की हैं। अतः सभी अन्तर्दशाएं किसी न किसी प्रकार से श्रवण प्रक्रिया से सम्बन्धित हैं। स्पष्ट रूप से यह महादशा के लिए भी अवश्य प्रमाणित होगा। अतः इस प्रकार उसके दोष में सुधार की आशा बहुत थोड़ी है।

जन्म के समय *योगिनी दशा* भ्रामरी-भ्रामरी (मंगल-मंगल) थी। मंगल एकादशेश होकर, बारहवें भाव से तीसरे भाव को देख रहा है। जैसा विंशोत्तरी दशा के मामले में था, योगिनी दशाओं का भी सम्बन्ध तृतीय भाव, तृतीयेश या एकादश भाव, एकादशेश से होगा।

दोषपूर्ण वक्तृता के शास्त्रीय योग

ज्योतिष के प्राचीन ग्रन्थों में गूंगेपन के सूचक कुछ योग इस प्रकार से दिए गए हैं:

1. बुध षष्ठेश होकर मूक राशि में हो तथा पाप ग्रहों से दृष्ट हो।

    नोट: (i) बुध वाणी का भी कारक है तथा श्रवण का भी।

    (ii) मूक राशियां कर्क, वृश्चिक तथा मीन हैं।

2. बुध षष्ठेश होकर लग्न में हो तथा पाप ग्रहों से प्रभावित हो।
3. बुध नवें भाव में हो तथा शुक्र दसवें भाव में हो।

   नोट: इस योग से वाणी में हकलाने का दोष होता हैं।
4. कर्क, वृश्चिक या मीन राशियों में पापग्रह हों; चन्द्रमा वृष में राश्यन्त में पाप दृष्ट हो।

   नोट: (i) कोई ग्रह राशि के 29 अंश या अधिक होने पर राश्यन्त में कहलाता है।

   (ii) जब उक्त योग में चन्द्रमा को शुभ ग्रह देखते हैं तो जातक देर से बोलना शुरू करता है (पांच वर्ष की आयु के बाद)।
5. द्वितीयेश गुरु के साथ आठवें भाव में हो।

   नोट: (i) जब द्वितीयेश, गुरु के साथ अष्टम भाव में चतुर्थेश के साथ हो तो जातक की माता गूंगी होती है।

   (ii) जब द्वितीयेश, गुरु के साथ अष्टम भाव में नवमेश के साथ हो तो जातक का पिता गूंगा होता है।
6. पूर्ण चन्द्र लग्न में मंगल से युक्त हो।

   नोट: बली मंगल, बुध और चन्द्र इकट्ठे हों या एक दूसरे को देखते हों तो प्रखर वक्ता होता है।

जन्म से मूकबधिर बच्चे

इस अध्याय का यह खण्ड शन्नी निगम* के शोधपत्र पर आधारित है। इन्होंने ज्योतिष के साधारण नियमों को केवल राशि कुण्डली पर ही लगाया है।

यह जानने योग्य है कि जो बच्चे जन्म से ही बहरे पैदा होते हैं उनमें वाणी द्वारा भावों को व्यक्त करने की समस्या पाई जाती है। यदि इस दृष्टिकोण से उनका विशेष ध्यान न रखा जाए तो वे बोल नहीं सकते। प्रायः बालपन में बहरेपन को शीघ्र न जान पाने के कारण उचित आयु में वाक्चिकित्सा सुनिश्चित नहीं हो पाती। नवजात शिशुओं में श्रवण दोष तथा परिणामतः वाक् दोष का पता लगाने के लिए निम्नलिखित तथ्य महत्त्वपूर्ण रोचक तथा उपयोगी भी हैं:

1. *तृतीय भाव अथवा तृतीयेश पर पाप प्रभाव*: तृतीय भाव, श्रवण अंग के साथ-साथ श्रवण प्रणाली का भी भाव है। किसी बच्चे के जन्म से बहरे

---

*देखें एस्ट्रालॉजिकल मैगजीन, दिसम्बर 1993 तथा अप्रैल 1994 के अंक।

(परिणामतः गूंगे!) पैदा होने के लिए तीसरा भाव तथा तृतीयेश का पीड़ित होना आवश्यक है।

2. *चन्द्रमा पर पाप प्रभावः* किसी कुण्डली में चन्द्रमा पर पाप प्रभाव बालारिष्ट योग को सूचित करता है। इस दोष को लेकर पैदा हुआ बच्चा स्पष्ट रूप से बालारिष्ट से पीड़ित होगा। इन मामलों में चन्द्रमा के दुःस्थान में अथवा अन्यथा पीड़ित होने की संभावना होगी।
3. *पीड़ित अष्टम भाव/अष्टमेशः* अष्टम भाव ठीक न होने वाली या दुःसाध्य, लम्बी अवधि की बीमारी का द्योतक है। लग्न कुण्डली में अष्टम भाव या अष्टमेश का पीड़ित होना उपरोक्त बीमारी के होने की पुष्टि करता है। अष्टमेश तृतीय भाव में हो सकता है या तृतीयेश से युति कर सकता है।
4. *राहु–केतु अक्ष का महत्त्वः* राहु–केतु अक्ष तृतीय भाव या तृतीयेश के समीपस्थ हो सकता है। अर्थात् राहु–केतु अक्ष तीसरे भाव पर या तृतीयेश के साथ हो या उनसे दूसरे अथवा बारहवें स्थान पर हो। यह ऐसा होगा कि जैसे राहु–केतु अक्ष अपनी छाया तीसरे भाव या तृतीयेश पर डालता हो। राहु–केतु अक्ष द्वारा पीड़ित होना, बीमारी होने का एक महत्त्वपूर्ण कारण हो सकता है।
5. *दशा चक्रः* महादशा/अन्तर्दशा/प्रत्यन्तर्दशा, सामान्यतः जन्म के समय प्रतिकूल होगी तथा अधिकांश मामलों में तीसरे भाव या तृतीयेश से सम्बन्धित होगी।

जन्म से बहरे और गूंगे बच्चेः उदाहरण

उपर्युक्त नियमों को केवल राशि कुण्डली पर ही लगाया जाएगा।

कुण्डली संख्या 13.2

इस कुण्डली में सूर्य तीसरे भाव में है तथा वक्री गुरु से दृष्ट है। चन्द्रमा अष्टम भाव में है। अष्टमेश अच्छी स्थिति में है परन्तु लग्न को देख रहा है। षष्ठेश शनि भी लग्न को देख रहा है। राहु–केतु अक्ष तृतीयेश मंगल के समीप है।

जन्म के समय *विंशोत्तरी दशा* केतु–बुध–सूर्य थी। बुध तथा सूर्य तीसरे भाव में स्थित हैं। केतु जो राहु–केतु अक्ष का एक हिस्सा है तृतीयेश मंगल के समीप है।

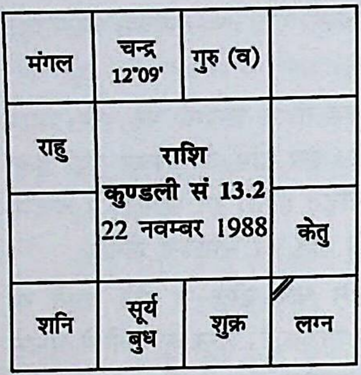

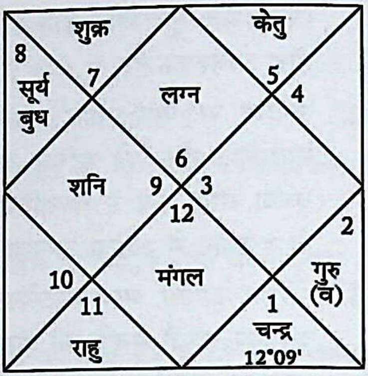

जन्म के समय *योगिनी दशा* भ्रामरी-पिंगला (मंगल-सूर्य) थी। मंगल तृतीयेश है तथा सूर्य तीसरे भाव में है।

कुण्डली संख्या 13.3

तीसरा भाव केतु द्वारा पीड़ित है जबकि तृतीयेश, जो अष्टमेश भी है, नीच राशि में है। राहु-केतु अक्ष तीसरे भाव पर स्थित है। चन्द्रमा बारहवें भाव में, सूर्य तथा वक्री द्वितीयेश (मारक) शुक्र के साथ है और बालारिष्ट की पुष्टि करता है।

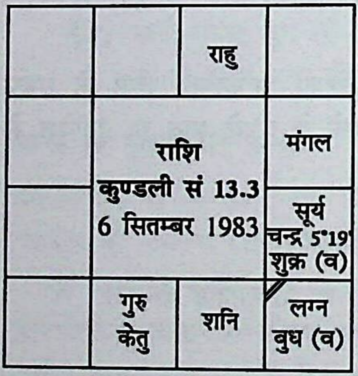

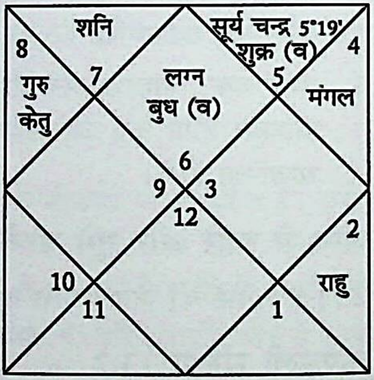

जन्म के समय *विंशोत्तरी दशा* केतु-मंगल-केतु थी। महादशा तथा प्रत्यन्तर्दशा का स्वामी केतु तीसरे भाव में स्थित है जबकि मंगल तृतीयेश है तथा नीच है।

जन्म के समय *योगिनी दशा* भद्रिका-सिद्धा (बुध-शुक्र) थी। बुध (महादशा) वक्री लग्नेश होकर लग्न में है, जिसकी जन्म के समय दशा जन्मजात रोग की संभावना को इंगित करती है। अन्तर्दशा का स्वामी मारक द्वितीयेश, वक्री है, जो द्वादश भाव में द्वादशेश के साथ है। यह भी जन्मजात रोग होने की पुष्टि करता है।

चतुर्दश अध्याय

हृदय रोग

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि।।

"सज्जन मेरा हृदय हैं, मैं उनका हृदय हूं। वह मेरे सिवाय किसी को नहीं जानते और मैं उनके सिवाय किसी को नहीं जानता"।।

–श्रीमद् भावगवत 9:4/68

हृदय रोग, आधुनिक जीवनशैली का सर्वसामान्य कष्ट है। आधुनिक समय में मानसिक तनाव, व्यावसायिक स्पर्धा, भारी भोजन, व्यायाम की कमी, शरीर की कम क्रियाशीलता, ध्रूमपान आदि इस रोग की ओर उन्मुख करते हैं। चिकित्सा विज्ञान ने उन्नति कर लोगों की औसत आयु को तो बढ़ा दिया है तथा बहुत सी संक्रामक या अन्य बीमारियों पर काबू पा लिया है लेकिन बढ़ती हुई आयु दर में अधिक से अधिक लोगों को हृदय रोग के लिए संवेदनशील बना दिया है। इतना अवश्य और कहना चाहेगें कि जहां प्रत्येक वर्ष हृदय रोग के कारण अनेक मृत्यु होती हैं वहीं पर इसके उपचार में प्रगति होने के कारण इस बीमारी से ग्रस्त काफी लोग अधिक आयु तक भी अपेक्षाकृत स्वस्थ रह पा रहे हैं।

उक्त वर्णन जिस सामान्य प्रकार के हृदय रोग पर अधिकांश खरा उतरता है उन्हें "इस्कीमिक हार्ट डिसीज़" (ischaemic heart disease) या "कॉरोनरी आर्टरी डिसीज़" (coronary artery disease) कहते हैं। इस रोग में हृदय के किसी भाग की मांसपेशी में रक्त संचार कम हो जाता है जो उस रक्त वाहिनी में अवरोध के कारण पैदा होता है। इस बीमारी का उपचार औषधियों या ऑपरेशन द्वारा करना सम्भव है। औषधियों के सेवन करने पर आशा की जाती है कि कालान्तर में रक्तवाहनियों में सुधार हो जाएगा या नई वाहनियां बन सकेंगी, जिससे पीड़ित भाग में रक्त संचार सुचारु रूप से हो सकेगा।

दूसरी विधि में दवा और साधारण शल्यक्रिया सम्मिलित हैं। इसमें धमनियों की रुकावट को विशेष क्रियाओं द्वारा या तो सुधार दिया जाता है या वैकल्पिक रक्तवाहिनी को प्रत्यारोपित किया जाता है।

"कोरोनरी आर्टरी डिसीज़" के अतिरिक्त, हृदय को अन्य भी कई प्रकार की व्याधियां हो सकती हैं। इनमें से जन्मजात हृदय रोग विशेषकर महत्त्वपूर्ण हैं। जन्मजात हृदय रोग बहुत प्रकार का हो सकता है जिनमें अधिकांशत: शल्यक्रिया के द्वारा पूरा अथवा आंशिक सुधार होता है।

एक अन्य प्रकार का महत्त्वपूर्ण हृदय रोग वंशानुगत गड़बड़ी है जिसे "कार्डियोमायोपैथी" (cardiomyopathy) कहते है जिसमें हृदय परिमाण में बड़ा तथा कार्य में विफल हो जाता है। इसे ठीक करने के लिए कोई संतोषजनक चिकित्सा या शल्यक्रिया अभी तक उपलब्ध नहीं है।

ज्योतिष शास्त्र के द्वारा किसी कुण्डली के अध्ययन से भविष्य में हृदय रोग की सम्भावना का पता लगाना सम्भव है। दशा योजना का विचार करके रोग का समय तथा अवधि को पहले से निर्धारित किया जा सकता है।

ज्योतिषीय नियम

निम्नलिखित घटक हृदय तथा उसके आसपास के क्षेत्र को प्रकट करते हैं।

1. *सूर्य*: सूर्य हृदय का कारक है। जब सूर्य पर बहुत सा पाप प्रभाव हो तब अन्य प्रतिकूल प्रभावों के होते हुए उपयुक्त दशा हृदय रोग की सूचक हो सकती है।

2. *सिंह राशि*: सिंह राशि कालपुरुष के हृदय को सूचित करती है। इसका पीड़ित होना, हृदय के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

3. *पंचम भाव*: जिस प्रकार भचक्र की पंचम राशि सिंह, कालपुरुष के हृदय को सूचित करती है उसी प्रकार पांचवां भाव भी जातक के हृदय का सूचक होता है। हृदय रोग होने के लिए पंचम भाव तथा पंचमेश पर पाप प्रभाव का होना आवश्यक है।

4. *चौथा भाव*: चौथा भाव जातक के वक्षस्थल को इंगित करता है। हृदय रोग की वक्षस्थल से सम्बद्ध जटिलताएं तथा हृदय रोग के शल्य उपचार (जिसमें वक्षस्थल को खोलना आवश्यक होता है) को चौथे भाव से लेना चाहिए।

हृदय रोग के सूचक

किसी जन्मपत्रिका में हृदय रोग को निश्चित करने के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं का निरीक्षण करना चाहिए।

1. *सूर्य पर पाप प्रभाव*: यह हृदय रोग होने के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण कारण है। सूर्य पर पाप प्रभाव निम्न प्रकार से हो सकता है :
   - (i) मंगल तथा शनि के साथ युति या दृष्टि द्वारा और राहु-केतु अक्ष द्वारा।
   - (ii) नीच राशि में होना।
   - (iii) पापकर्तरी, अर्थात् दोनों ओर पाप ग्रह का होना।
   - (iv) छठे, आठवें या बारहवें भाव/भावेशों से सम्बन्ध होना।
2. *सिंह राशि पर पाप प्रभाव*: पाप युति अथवा दृष्टि द्वारा।
3. *पंचम भाव पर पाप प्रभाव*: नैसर्गिक पाप ग्रहों की अथवा त्रिक भावेशों से युति अथवा दृष्टि। यहां पर पंचम भाव का विचार आवश्यक है–
   - (i) लग्न से
   - (ii) सूर्य से
   - (iii) महादशा और अन्तर्दशा के स्वामियों से।
4. *पंचमेश पर पाप प्रभाव*: नैसर्गिक पाप ग्रहों से, त्रिक भावेशों से, या वक्री ग्रहों से।
5. *चतुर्थ भाव*: लग्न अथवा सूर्य से चतुर्थ भाव पर पाप प्रभाव वक्ष में जटिलताएं या हृदय रोग की शल्य चिकित्सा का सूचक है। पंचम भाव, पंचमेश तथा सूर्य पर शुभ प्रभावों की बहुलता सुरक्षित चिकित्सा तथा रोग मुक्त होने की सूचक है।
6. *दशा योजना*: पर्याप्त पाप प्रभाव के रहते, उन ग्रहों की दशाएं जो सूर्य, पंचम भाव या पंचमेश से युक्त हों, हृदय रोग देती हैं। पाप ग्रह की महादशा में, पंचम भाव में बैठे वक्री ग्रह की अन्तर्दशा विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है।

हृदय रोग : उदाहरण

उक्त नियमों को अब वास्तविक कुण्डलियों के परिप्रेक्ष्य में परखेंगे।

कुण्डली संख्या 14.1

यह स्त्री जातक "कार्डियोमायोपैथी" (cardiomyopathy) से पीड़ित है, जो धीर-धीरे बढ़ने वाला हृदय की मांसपेशी का एक वंशानुगत रोग है। इसके ठीक होने की सम्भावना कम होती है। लग्न में वक्री गुरु है तथा लग्नेश अष्टम भाव में षष्ठेश तथा शत्रु अष्टमेश के साथ स्थित है। नीच का मंगल सप्तम भाव से लग्न को देखता है। अतः इस कुण्डली में स्वास्थ्य के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष रूप से दुर्बलता है।

अष्टम भाव में स्थित सूर्य के एक ओर शनि तथा दूसरी ओर मंगल है। पंचमेश नीच तथा राहु-केतु अक्ष पर है। पंचम भाव, शनि द्वारा अष्टम भाव से तथा वक्री गुरु के द्वारा दृष्ट है। सूर्य से चतुर्थ तथा पंचम भाव पीड़ित नहीं हैं यद्यपि उनके स्वामी नीच हैं।

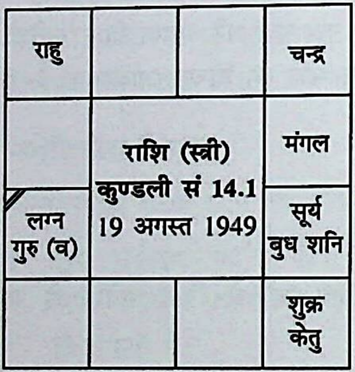

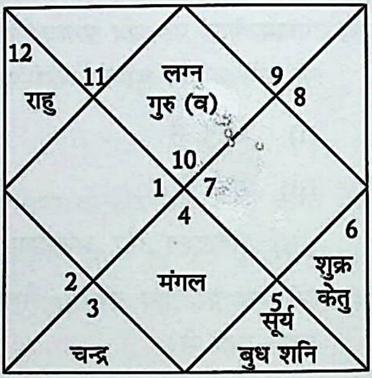

लग्न	00°44'	मंगल	24°52'	शुक्र	05°36'
सूर्य	02°59'	बुध	23°42'	शनि	14°41'
चन्द्र	02°06'	गुरु (व)	00°35'	राहु	24°37'

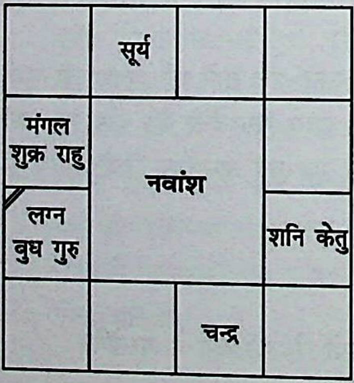

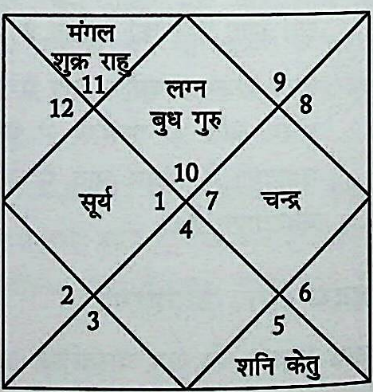

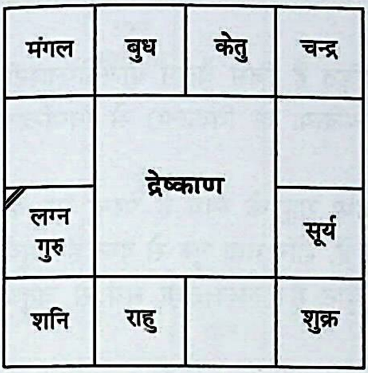

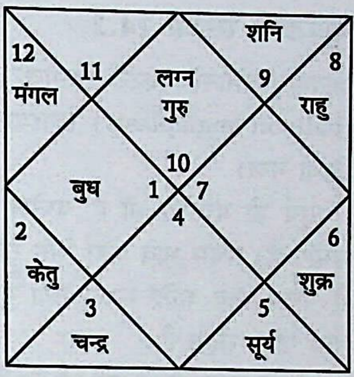

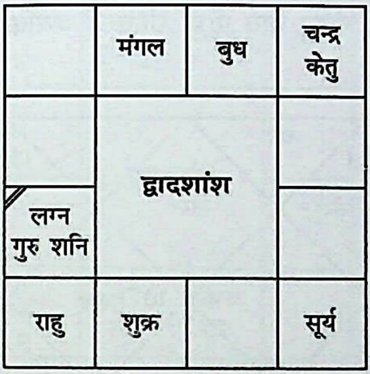

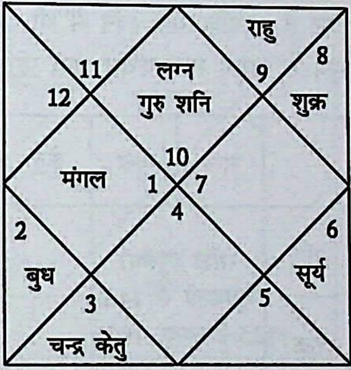

नवांश कुण्डली में पंचम भाव शनि तथा मंगल से दृष्ट है जबकि पंचमेश, मंगल, शनि तथा राहु–केतु अक्ष के प्रभाव में है। सूर्य उच्च का है परन्तु सूर्य से पंचम भाव अत्यधिक पीड़ित है।

द्रेष्काण कुण्डली में सूर्य पुनः अष्टम भाव में है। पंचम भाव राहु–केतु अक्ष पर तथा पंचमेश, मंगल तथा शनि से दृष्ट है। सूर्य से चंतुर्थ तथा पंचम भाव क्रमशः राहु और शनि से पीड़ित हैं।

द्वादशांश कुण्डली में, षष्ठेश बुध पंचम भाव में है तथा पंचमेश शुक्र को देख रहा है जो मंगल से भी दृष्ट है। सूर्य से चतुर्थ तथा पंचम भाव पीड़ित हैं।

यह स्पष्ट है कि सूर्य तथा सम्बन्धित भावों तथा भावेशों पर अधिक पाप प्रभाव हैं। नीच, वक्री गुरु जो तृतीयेश तथा द्वादशेश होने के कारण पापी है, लग्न में स्थित होकर भी कोई बचाव नहीं करता।

शनि की *विंशोत्तरी महादशा* में लक्षण अधिक तीव्र हो गए जो *योगिनी महादशा* में संकटा (राहु) से मेल खाती है। राहु, शनि का ही प्रतिनिधित्व करता है। लग्नेश शनि अष्टम भाव में घोर पीड़ित है।

कुण्डली संख्या 14.2

जातक "कॉरोनरी आर्टरी डिसीज़" से पीड़ित है जिसे बैलून एंजियोप्लास्टी (balloon angiaplasty) (बाईपास शल्यक्रिया के विकल्प) से नियन्त्रित किया गया।

सूर्य जो पंचमेश भी है, षष्ठेश बुध तथा राहु के साथ है परन्तु गुरु के समीप है। पंचम भाव जहां सिंह राशि भी है, शनि तथा गुरु से दृष्ट है। सूर्य से पंचम भाव शनि, मंगल तथा गुरु से दृष्ट है। लग्न तथा सूर्य से चतुर्थ भाव पीड़ा रहित है।

नवांश कुण्डली में सूर्य दो नैसर्गिक शुभ ग्रहों के साथ है तथा तीसरे से दृष्ट है, जबकि यह शनि से भी दृष्ट है। पंचम भाव पीड़ा रहित है जबकि सूर्य से चतुर्थ तथा पंचम भाव पीड़ित हैं।

	लग्न	चन्द्र	केतु
शनि	राशि (पुरुष) कुण्डली सं 14.2 25 दिसम्बर 1936		
शुक्र			
सूर्य बुध गुरु राहु		मंगल	

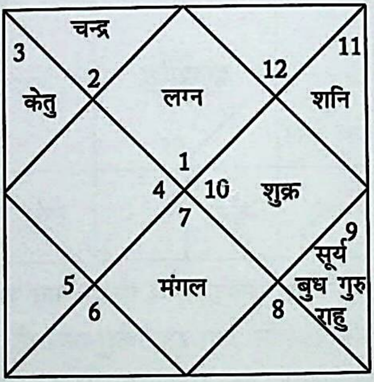

लग्न	01°53'	मंगल	00°39'	शुक्र	23°17'
सूर्य	10°23'	बुध	29°15'	शनि	23°56'
चन्द्र	01°47'	गुरु	12°15'	राहु	01°28'

	लग्न राहु	शनि	
	नवांश		सूर्य शुक्र गुरु
चन्द्र			
बुध		मंगल केतु	

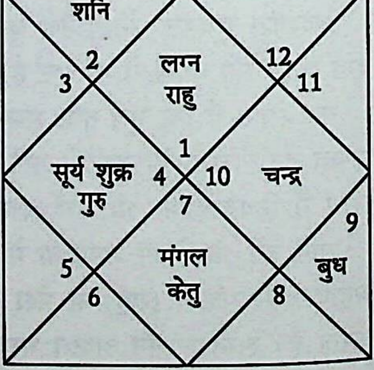

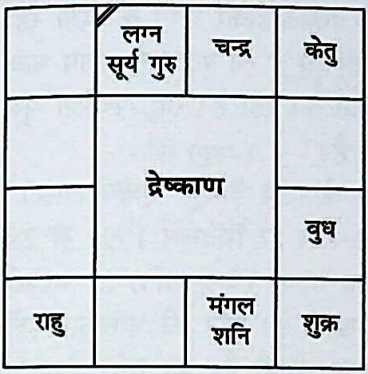

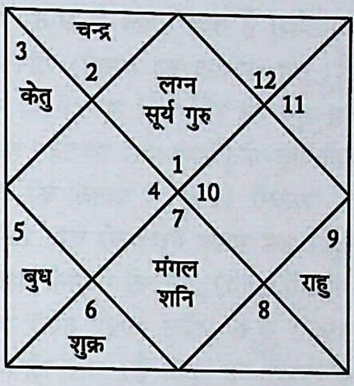

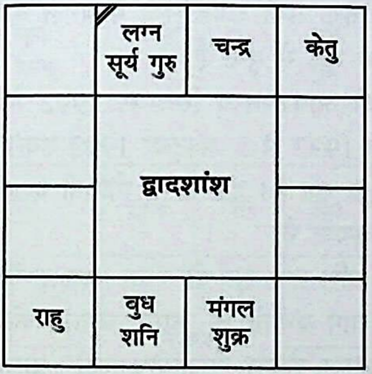

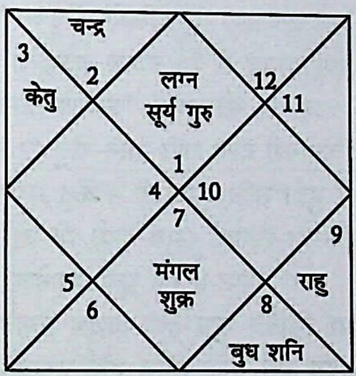

द्रेष्काण कुण्डली में पंचमेश सूर्य उच्च राशि में, गुरु से युक्त तथा मंगल, शनि से दृष्ट है। छठे भाव का स्वामी बुध पंचम भाव में है।

द्वादशांश कुण्डली में सूर्य पुनः पंचमेश होकर उच्च राशि में है तथा गुरु, शुक्र तथा मंगल के प्रभाव में है। पंचम भाव, अष्टम भाव में स्थित शनि से दृष्ट है।

यह ध्यान देने योग्य है कि सूर्य सभी वर्ग कुण्डलियों में गुरु के प्रभाव में है। सूर्य, पंचम भाव तथा पंचमेश पर शुभ तथा अशुभ दोनों प्रकार का प्रभाव है।

जातक को प्रथम बार हृदय कष्ट जून 1984 में, *विंशोत्तरी दशा* गुरु-शुक्र-मंगल (8 मई 1984 से 4 जुलाई 1984 तक) में तथा *योगिनी दशा* संकटा-संकटा (राहु-राहु) (6 सितम्बर 1983 से 16 जून 1985 तक) में हुआ। गुरु (महादशा) सभी वर्ग कुण्डलियों में पंचमेश सूर्य के बहुत समीप है तथा पंचमेश को रक्षा प्रदान करता है। शुक्र (अन्तर्दशा) मेष लग्न के लिए मारक है तथा सभी कुण्डलियों में पीड़ित है। मंगल (प्रत्यन्तर्दशा) सभी वर्ग कुण्डलियों में

अष्टमेश है तथा दृढ़ता से सप्तम भाव में स्थित होकर लग्न को देख रहा है। राहु (संकटा का स्वामी) शनि का प्रतिनिधि है जो दृढ़ता से पंचम भाव या सूर्य को सभी वर्ग कुण्डलियों में पीड़ित कर रहा है। राहु, पंचमेश सूर्य को राहु-केतु अक्ष द्वारा प्रभावित कर रहा है।

फरवरी 1992 में जातक की इस रोग के लिए "बैलून एंजीयोप्लास्टी" हुई। उस समय विंशोत्तरी दशा शनि-शनि-शनि (7 सितम्बर 1991 से 28 फरवरी 1992) थी जो योगिनी दशा मंगला-उल्का (चन्द्र-शनि) (6 फरवरी 1992 से 6 अप्रैल 1992 तक) से मेल खाती है। शनि की भूमिका पहले ही बताई जा चुकी है। चन्द्र चौथे भाव का स्वामी है। यह राशि, द्रेष्काण तथा द्वादशांश कुण्डलियों में उच्च का है तथा सभी कुण्डलियों में मंगल के पाप प्रभाव में है। नवांश कुण्डली में यह सूर्य से दृष्ट है।

जातक को दूसरी "एंजीयोप्लास्टी" की आवश्यकता सितम्बर 1992 में विंशोत्तरी दशा शनि-शनि-केतु (2 अगस्त 1992 से 5 अक्टूबर 1992 तक) में हुई। राशि कुण्डली में केतु सूर्य को देख रहा है। उस समय योगिनी दशा पिंगला-पिंगला (सूर्य-सूर्य) थी जो स्वयं स्पष्ट है।

यहां स्पष्ट है कि सूर्य, पंचमेश, सिंह राशि तथा सूर्य से पंचम भाव सभी पर मिश्रित शुभ तथा अशुभ प्रभाव है। पाप प्रभावों के कारण जातक को हृदय रोग हुआ परन्तु शुभ प्रभावों के कारण केवल "एंजीयोप्लास्टी" द्वारा ही स्थिति नियंत्रण में रही।

कुण्डली संख्या 14.3

इस जातक की "कोरोनरी बाईपास सर्जरी" (coronary bypass surgery) सितम्बर 1989 में हुई।

सूर्य, लग्नेश, अष्टमेश तथा राहु के साथ संयुक्त है। सूर्य एवं लग्न से पंचम भाव मंगल से दृष्ट है जबकि पंचमेश मंगल से युक्त है। सूर्य तथा लग्न से चतुर्थ भाव पीड़ित नहीं है परन्तु चतुर्थेश अधिक पाप प्रभाव में है।

नवांश कुण्डली में सूर्य, राहु-केतु अक्ष पर है। लग्न से पंचम भाव में मंगल है जबकि सूर्य से पंचम भाव को षष्ठेश, अष्टमेश तथा शनि देखते हैं। लग्न से चतुर्थ भी पीड़ित है।

द्रेष्काण कुण्डली में सूर्य नीच का है तथा राहु-केतु अक्ष से पीड़ित है। पंचमेश बुध, शनि तथा मंगल से पीड़ित है। सूर्य से पंचम भाव भी शनि तथा मंगल से पीड़ित है। चतुर्थ भाव तथा चतुर्थेश पीड़ा रहित हैं।

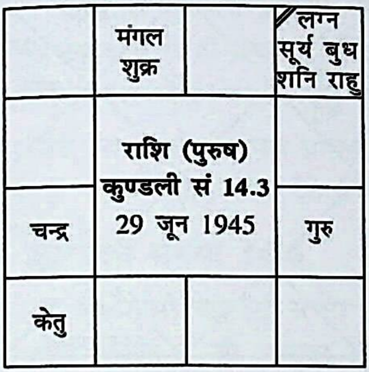

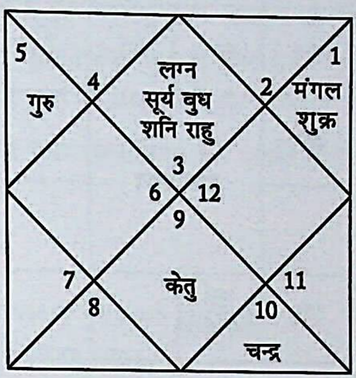

लग्न	25°54'	मंगल	19°46'	शुक्र	28°17'
सूर्य	13°54'	बुध	28°38'	शनि	20°17'
चन्द्र	26°11'	गुरु	27°19'	राहु	16°14'

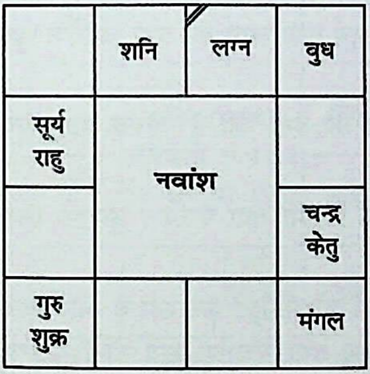

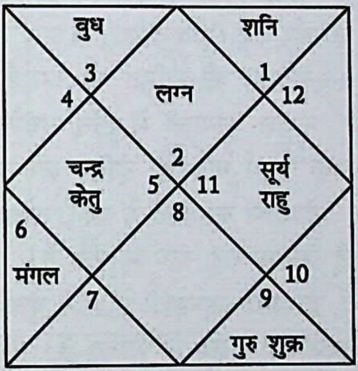

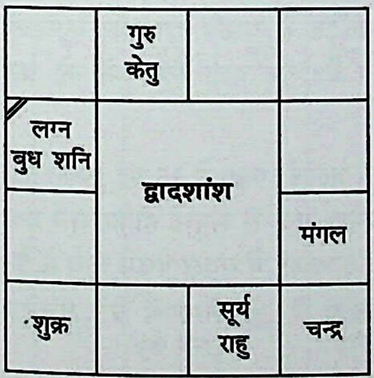

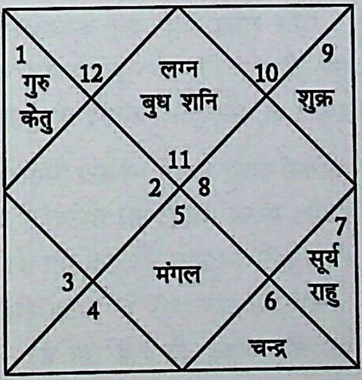

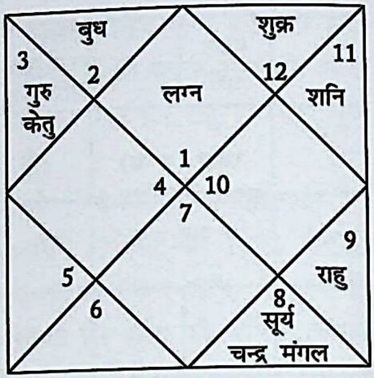

द्वादशांश कुण्डली में पंचम भाव, पंचमेश तथा सूर्य पीड़ित हैं। सूर्य से चतुर्थ भाव तथा लग्न से चतुर्थेश पीड़ित हैं। चतुर्थेश नीच भी है।

विंशोत्तरी दशा: जातक की "कोरोनरी बाईपास सर्जरी" शनि-बुध-राहु में हुई जो 1 जुलाई 1989 से 26 नवम्बर 1989 तक चली। शनि (महादशा) अष्टमेश है और राहु (प्रत्यन्तर्दशा) से युक्त होकर सूर्य तथा लग्न को तथा चतुर्थेश बुध (अन्तर्दशा) को पीड़ित कर रहा है।

नवांश कुण्डली में शनि, पंचमेश बुध को देख रहा है जबकि राहु, सूर्य तथा चतुर्थ भाव को पीड़ित कर रहा है।

द्रेष्काण कुण्डली में शनि, अन्तर्दशा के स्वामी तथा पंचमेश बुध के साथ है जबकि राहु, सूर्य से युक्त है।

द्वादशांश कुण्डली में शनि, पंचमेश सूर्य को पीड़ित कर रहा है और स्वयं अष्टमेश मंगल से पीड़ित है। षष्ठेश बुध तथा पंचमेश सूर्य दोनों परस्पर एक दूसरे को देख रहे हैं। मंगल, बुध को पीड़ित कर रहा है। राहु नवम भाव में गुरु से दृष्ट है।

सिंह राशि सभी वर्ग कुण्डलियों में पीड़ित है यद्यपि द्वादशांश कुण्डली को छोड़कर अन्यत्र गुरु बचाव कर रहा है। गुरु दशा स्वामियों को कई प्रकार से अनुकूलता प्रदान कर रहा है।

योगिनी दशा: भ्रामरी-संकटा (मंगल-राहु) 5 जुलाई 1989 से 25 मई 1990 तक चली। मंगल (महादशा) षष्ठेश है जो पंचमेश शुक्र से संयुक्त होकर सूर्य तथा लग्न से पंचम भाव को देख रहा है। नवांश कुण्डली में मंगल पंचम भाव में है।

द्रेष्काण कुण्डली में मंगल सिंह राशि में है, जो लग्न में बैठे पंचमेश बुध तथा लग्न को देख रहा है।

द्वादशांश कुण्डली में मंगल अष्टमेश है जो चतुर्थेश तथा पंचमेश के साथ अष्टम भाव में ही स्थित है तथा शनि और षष्ठेश बुध से दृष्ट है।

राहु (अन्तर्दशा) का विवेचन विंशोत्तरी दशा के अन्तर्गत किया जा चुका है।

नोट: याद रखें कि पाप प्रभाव बीमारी तथा शल्यक्रिया को दर्शाते हैं तथा शुभ प्रभाव राहत देते हैं।

कुण्डली संख्या 14.4

यह "कोरोनरी बाइपास सर्जरी" (coronary bypass surgery) का एक अन्य मामला है, जो अक्टूबर 1986 में किया गया।

सूर्य लग्न में नीच का है तथा षष्ठेश, द्वादशेश गुरु एवं बुध से संयुक्त होकर शनि से दृष्ट है। लग्न तथा सूर्य से पंचम भाव मंगल (तथा गुरु) से दृष्ट है जबकि पंचमेश राहु-केतु अक्ष पर है। चतुर्थ भाव शनि तथा राहु से पीड़ित है।

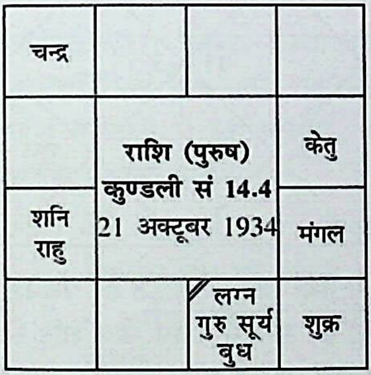

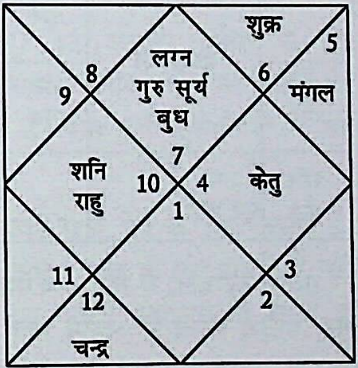

लग्न	03°34'	मंगल	08°43'	शुक्र	26°41'
सूर्य	04°00'	बुध	25°43'	शनि	28°35'
चन्द्र	13°24'	गुरु	09°11'	राहु	13°07'

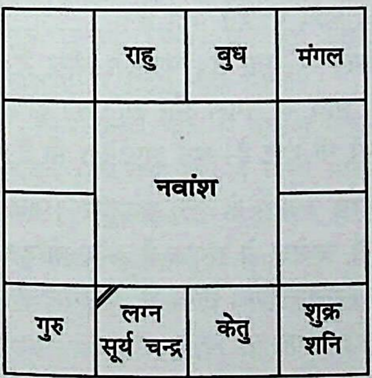

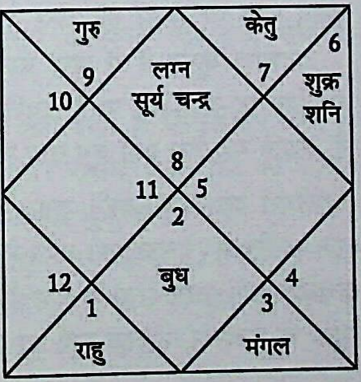

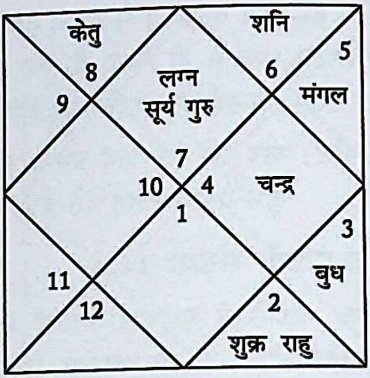

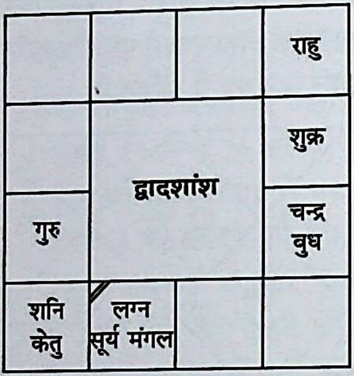

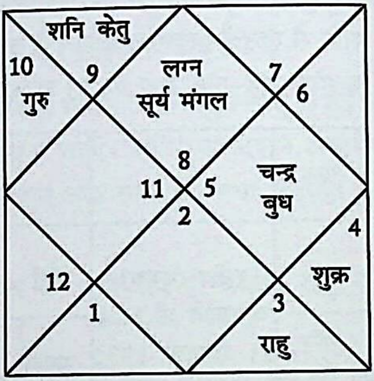

नवांश कुण्डली में सूर्य, अष्टमेश बुध से तथा शनि से पीड़ित है। पंचमेश गुरु, षष्ठेश मंगल से अष्टम भाव से दृष्ट है। सूर्य से पंचम भाव शनि से दृष्ट है। लग्न तथा सूर्य से चतुर्थ भाव पीड़ित नहीं है परन्तु चतुर्थेश, मंगल से दृष्ट है।

द्रेष्काण कुण्डली में सूर्य लग्न में नीच का है जो षष्ठेश गुरु से युक्त है। पंचम भाव पर मंगल की दृष्टि है। चतुर्थ भाव पीड़ित नहीं है।

द्वादशांश कुण्डली में सूर्य, षष्ठेश मंगल से युक्त है। पंचमेश नीच है। चतुर्थेश राहु-केतु अक्ष पर है जबकि चतुर्थ भाव पर मंगल और शनि की दृष्टि है, यद्यपि यह शुभ ग्रहों बुध तथा चन्द्रमा से भी दृष्ट है। बुध अष्टमेश भी है।

विंशोत्तरी दशा: सूर्य-शनि-शुक्र, 28 अगस्त 1986 से 25 अक्टूबर 1986 तक चली। सूर्य (महादशा) लग्न में नीच है, षष्ठेश से संयुक्त है, और पीड़ित पंचमेश शनि (अन्तर्दशा) से दृष्ट है। शुक्र (प्रत्यन्तर्दशा) लग्न से अष्टमेश है। शुक्र के प्रत्यन्तर के बाद सूर्य का प्रत्यन्तर चलेगा।

नवांश कुण्डली में सूर्य लग्न में है तथा अष्टमेश से दृष्ट है। शनि पीड़ित चतुर्थेश है जो पंचम भाव को देख रहा है। शुक्र द्वादशेश है तथा शनि, मंगल से पीड़ित है, तथा पंचम भाव को देख रहा है।

द्रेष्काण कुण्डली में सूर्य, नीच है तथा पीड़ित है। शनि पंचमेश है तथा द्वादश भाव में है। शुक्र अष्टमेश है तथा अष्टम भाव में राहु-केतु अक्ष पर है।

द्वादशांश कुण्डली में सूर्य पुनः पीड़ित है। शनि पीड़ित चतुर्थेश है। शुक्र पंचमेश गुरु के द्वारा दृष्ट है।

नोट: किसी ग्रह की दशा में, उस ग्रह के कारकत्व सम्बन्धी घटनाएं घट सकती हैं चाहे उस ग्रह का सम्बन्धित भाव से सम्बन्ध न हो। इस वर्तमान उदाहरण में, महादशा का स्वामी सूर्य कहीं भी पंचम भाव से सम्बन्धित नहीं है। केवल राशि कुण्डली में पंचमेश से दृष्ट है। फिर भी हृदय रोग हुआ और इससे सम्बन्धित चिकित्सा प्रारम्भ की गई।

योगिनी दशा: संकटा-संकटा (राहु-राहु) 12 जनवरी 1985 से 22 अक्टूबर 1986 तक चली। राहु (महादशा तथा अन्तर्दशा) शनि का द्योतक है। राशि कुण्डली में राहु पंचमेश के साथ है। शेष वर्ग कुण्डलियों में यह प्रतिकूल स्थानों में है।

नोट: एक बार पुनः शुभ ग्रहों की भूमिका राहत देने के लिए स्पष्ट है। नैसर्गिक शुभ ग्रह अपनी दशा में अशुभ फल भी कर सकते हैं यदि वे अशुभ भावों के स्वामी हों। यह अगले उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगा।

कुण्डली संख्या 14.5

इस जातक की "कोरोनरी बाइपास सर्जरी" (coronary bypass surgery) 25 जुलाई 1990 को हुई और ऑपरेशन असफल रहा तथा रोग के लक्षणों से राहत नहीं मिली।

सूर्य चतुर्थ भाव में षष्ठेश मंगल तथा वक्री शनि से पीड़ित है। लग्न से चतुर्थ भाव तथा सूर्य से चतुर्थ भाव पीड़ित हैं। पापग्रह सिंह राशि को पीड़ित कर रहे हैं। पंचमेश गुरु नीच है तथा अष्टमेश बुध के साथ है।

नवांश कुण्डली में सूर्य पंचम भाव में राहु-केतु अक्ष पर है, जबकि पंचमेश अशुभ छठे स्थान में नीच के अष्टमेश द्वारा द्वादश भाव से दृष्ट है। सूर्य से पंचम जो सिंह राशि भी है शनि तथा मंगल से दृष्ट है।

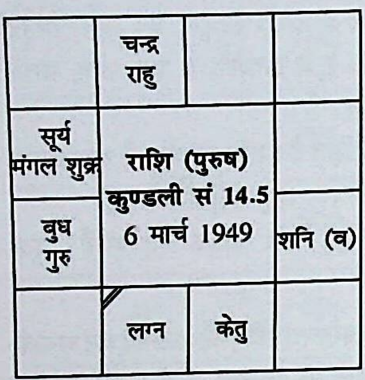

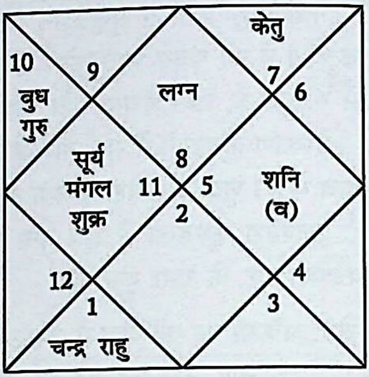

लग्न	19°32'	मंगल	24°15'	शुक्र	11°06'
सूर्य	21°46'	बुध	25°24'	शनि (व)	08°41'
चन्द्र	26°23'	गुरु	01°05'	राहु	03°13'

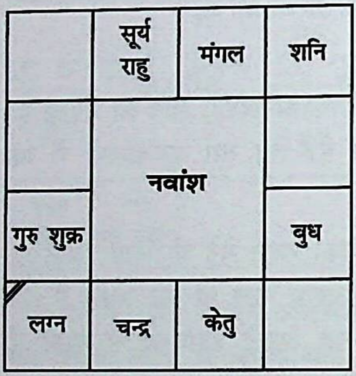

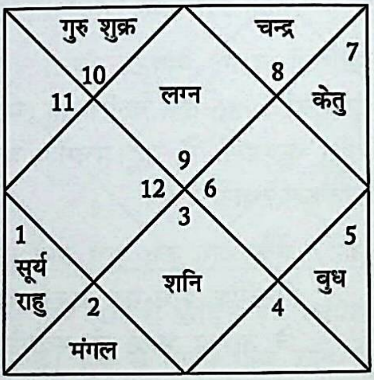

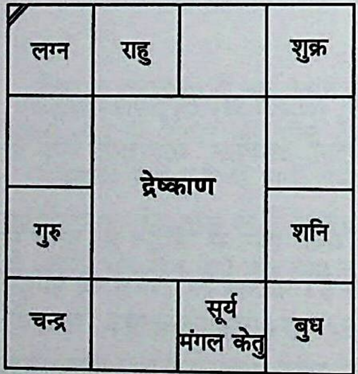

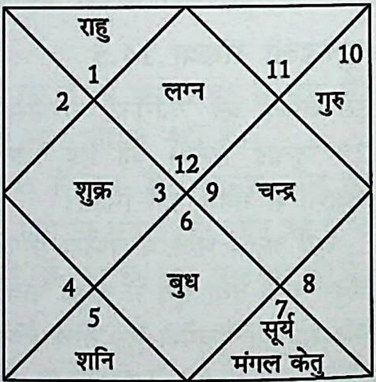

द्रेष्काण कुण्डली में, सूर्य अष्टम भाव में नीच राशि में है तथा राहु-केतु अक्ष पर होकर शनि और मंगल से पीड़ित है, तथा शुभ दृष्ट नहीं है। सूर्य से पंचम भाव शनि से पीड़ित है।

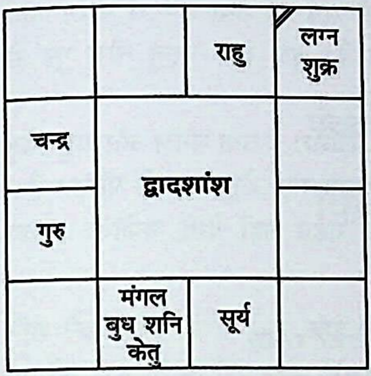

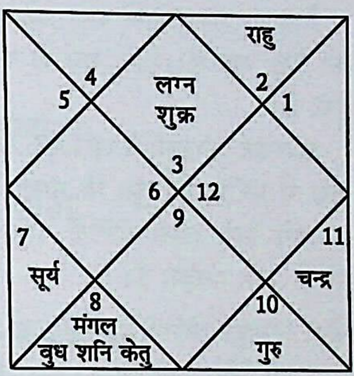

द्वादशांश कुण्डली में नीच सूर्य पुनः पंचम भाव में है। सूर्य से पंचमेश, मंगल तथा केतु से पीड़ित है।

विंशोत्तरी दशा: राहु–मंगल–चन्द्र 12 जुलाई 1990 से 13 अगस्त 1990 तक चली।

राहु (महादशा) छठे भाव में, सूर्य से षष्ठेश से युक्त है। मंगल (अन्तर्दशा) षष्ठेश होकर सूर्य को पीड़ित कर रहा है तथा स्वयं वक्री शनि से पीड़ित है। चन्द्रमा (प्रत्यन्तर्दशा) छठे स्थान में राहु के साथ है।

नवांश कुण्डली में राहु पंचम भाव में सूर्य को पीड़ित कर रहा है। मंगल पंचमेश है तथा छठे भाव में है। चन्द्रमा अष्टमेश है तथा पंचमेश को देख रहा है।

द्रेष्काण कुण्डली में राहु तथा मंगल, सूर्य को पीड़ित कर रहे हैं। चन्द्रमा पंचमेश है तथा अष्टमेश शुक्र के द्वारा दृष्ट है।

द्वादशांश लग्न से राहु बारहवें, मंगल छठे, चन्द्रमा नवें भाव में है। मंगल छठे भाव से राहु, चन्द्रमा तथा पंचमेश शुक्र को देख रहा है।

आगे आने वाली महादशा का स्वामी गुरु, पंचमेश होकर नीच है तथा अष्टमेश से युक्त है अतः राहत की कोई आशा नहीं है।

योगिनी दशा: उल्का–भद्रिका (शनि–बुध) 13 जून 1990 से 13 अप्रैल 1991 तक चली।

शनि (महादशा) सिंह राशि में वक्री है, तथा सूर्य को पीड़ित कर रहा है। बुध (अन्तर्दशा) अष्टमेश है तथा नीच के पंचमेश को पीड़ित कर रहा है।

नवांश कुण्डली में सूर्य से पंचम भाव में बुध है। यह पंचम भाव तथा बुध, शनि से दृष्ट हैं। बुध, शनि तथा मंगल दोनों से पीड़ित है।

द्रेष्काण कुण्डली में शनि छठे भाव से सूर्य को तथा सूर्य से पंचम भाव को देख रहा है। शनि, सूर्य से पंचमेश है। बुध, शुभ परन्तु नीच गुरु से दृष्ट है।

द्वादशांश कुण्डली में शनि पुनः सूर्य से पंचमेश है तथा मंगल और राहु-केतु अक्ष से पीड़ित है। बुध भी मंगल, शनि तथा राहु-केतु अक्ष से पीड़ित है।

आगे आने वाली योगिनी दशा सिद्धा राहत नहीं देगी, क्योंकि उसका स्वामी शुक्र पीड़ित है।

नोट: अगली योगिनी महादशा का स्वामी शुक्र, सूर्य, मंगल और वक्री शनि से त्रिविध पीड़ित है। अतः इससे कोई राहत की आशा नहीं की जा सकती।

पाठकों को ***कुण्डली संख्या 8.6*** देखनी चाहिए जो एक जन्मजात हृदय रोग का मामला है। वहां पर वक्री गुरु लग्नेश होकर राशि कुण्डली के लग्न में है और सूर्य अष्टम भाव में षष्ठेश तथा शनि से पीड़ित है। सूर्य से पंचम स्थान में केतु है जबकि लग्न से पंचम, शनि और मंगल से दृष्ट है। सूर्य से चतुर्थ भाव भी पीड़ित है।

सूर्य नवांश द्रेष्काण तथा द्वादशांश कुण्डलियों में भी पीड़ित है। इन वर्ग कुण्डलियों में पंचम भाव तथा पंचमेश पर विभिन्न प्रकार के पाप प्रभाव दिखाई दे रहे हैं।

विंशोत्तरी पद्धति के अनुसार जातक का जन्म प्रतिकूल दशा में हुआ। वक्री लग्नेश जिसकी दशा जन्म के समय चल रही थी, लग्न में है। वर्ग कुण्डलियों में लग्न तथा लग्नेश पर शुभ प्रभाव के कारण शल्यक्रिया के बाद कुछ आंशिक राहत हुई।

पंचदश अध्याय

विविध रोग

कृष्ण त्वदीयपदपंकजपजरान्ते
अद्यैव मे विशतु मानसराजहंसः।
प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः
कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते।।

हे कृष्ण! मेरा मनरूपी राजहंस आपके चरण कमलरूपी पिंजरे में आज से ही वास करे। अन्यथा प्राणान्त के समय वात, पित्त, कफ से अवरुद्ध अपने कण्ठ से कैसे मैं आपका स्मरण कर सकूंगा।

– *वैराग्यशतक*

ज्योतिष की अन्य शाखाओं की तुलना में चिकित्सा ज्योतिष कुछ कम विकसित शाखा है। इस दिशा में अभी तक कोई महत्त्वपूर्ण शोध नहीं हुआ है। चिकित्सक अपने कार्यों में अत्यधिक व्यस्त हैं, जबकि ज्योतिषियों में चिकित्सा विज्ञान के तत्त्वों को समझने का रुझान कम ही दिखाई पड़ता है। कुछ पुराने ज्योतिषी उन सिद्धान्तों को तो समझते हैं जिसे आज आयुर्वेद कहा जाता है। परन्तु वे 'एॅलोपैथी' पर कम ध्यान देते हैं, जिसकी सत्यता आज रोग निदान तथा उपचार में प्रचलित एवं प्रभावी प्रणाली के रूप में स्वीकार की जाती है।

इस उपक्रम में यह स्वीकर करना संगत होगा कि ज्योतिषीय ज्ञान की वर्तमान अवस्था में अधिकांश रोगों के योगों को भलीभांति नहीं समझा गया है। यहां पर अपनी ज्ञानशक्ति की सीमाओं में रहकर उनकी व्याख्या करने का प्रयास किया जाएगा। इस दिशा में जब तक पर्याप्त शोध नहीं हो जाता तब तक अन्तिम परिणाम के लिए प्रतीक्षा अवश्य करनी होगी।

यहां पर अनियमित प्रकार से कुछ रोगों को चुन लिया गया है। शास्त्रीय ग्रन्थों में कहे गए योगों में कुछ रोगों के नामों का हिन्दी रूपान्तर एक कठिन

समस्या है, परन्तु फिर भी इस दिशा में यहां प्रयास किया गया है। विभिन्न रोगों के योगों को मुख्यतः *'जातक तत्त्व'* से चुना गया है। किसी सीमा तक अपने निजी शोधपरक निष्कर्षों का भी उपयोग किया गया है।

1. मधुमेह या प्रमेह

यह शरीर में शर्करा के चयापचय का रोग है। शरीर, शर्करा से ऊर्जा प्राप्त करता है। मधुमेह के मामले में रक्त तथा शारीरिक तन्तुओं में अधिक शर्करा होती है परन्तु इसका उपयोग नहीं हो पाता। शरीर में अत्यधिक मात्रा में शर्करा होने के कारण शरीर में शर्करा का असन्तुलन बना रहता है। इसका कारण 'इन्सुलिन' नामक हार्मोन की कमी है। इंसुलिन की कमी के कारण शरीर में शर्करा का स्तर बढ़ता है तथा जटिलताएं उत्पन्न होती हैं जो वास्तव में शरीर के सभी अंगों पर प्रभाव डालती हैं। प्राचीन ग्रन्थों में इसका मधुमेह के स्थान पर 'प्रमेह' नाम से उल्लेख किया गया है।

मधुमेह के योग

मधुमेह के लिए निम्नलिखित योग बताए गए हैं।

1. गुरु नीच राशि, या छठे, आठवें या बारहवें भाव में हो।
2. शनि तथा राहु, गुरु को युति या दृष्टि द्वारा पीड़ित करते हों।
3. अस्त गुरु राहु-केतु अक्ष पर हो।
4. शुक्र छठे भाव में, गुरु के द्वारा द्वादश भाव से दृष्ट हो।
5. पंचमेश 6, 8, 12 भावशों से युक्त हो।
6. वक्री गुरु त्रिकभाव में पीड़ित हो।

यकृत शर्करा का चयापचय करता है और अग्न्याशय इन्सुलिन का उत्पादन करता है। यह दोनों उदर के ऊपरी भाग में स्थित हैं और यह पंचम भाव के अधिकार क्षेत्र में आते हैं। यकृत तथा अग्न्याशय के एक भाग का कारक गुरु है। शेष अग्न्याशय का कारक शुक्र है। शुक्र, शरीर की 'हार्मोन' प्रणाली का भी कारक है। अतः इस प्रकार मधुमेह के मामले में गुरु, शुक्र तथा पंचम भाव की भूमिका रहती है। यद्यपि यह स्वीकार करना होगा कि यकृत के रोगों के योग भी लगभग समान ही होंगे परन्तु उनमें शुक्र की कोई विशेष भूमिका नहीं होगी।

मधुमेह : उदाहरण

कुण्डली संख्या 15.1

इस स्त्री को मधुमेह रोग हुआ जिसका 1982 में पता चला। गुरु षष्ठ भाव में अष्टमेश नीच मंगल से दृष्ट है। शुक्र, द्वादशेश नीच सूर्य से युक्त तथा षष्ठेश शनि व अष्टमेश मंगल से दृष्ट है। पंचम भाव तथा पंचमेश दोनों राहु–केतु और मंगल से पीड़ित हैं।

नवांश में पंचम भाव में मंगल व गुरु इकट्ठे हैं; शुक्र एकादश भाव में मंगल व शनि से दृष्ट है।

द्रेष्काण में पंचमेश बुध, अष्टमेश गुरु से युक्त है; दोनों मंगल व शनि से दृष्ट हैं। शुक्र, सूर्य से युक्त है तथा मंगल और गुरु से दृष्ट है।

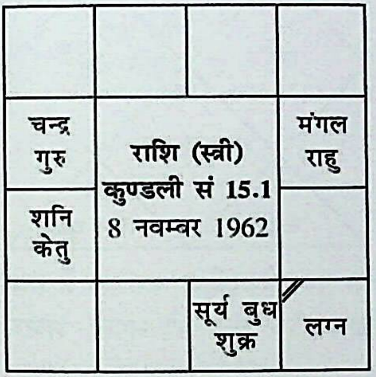

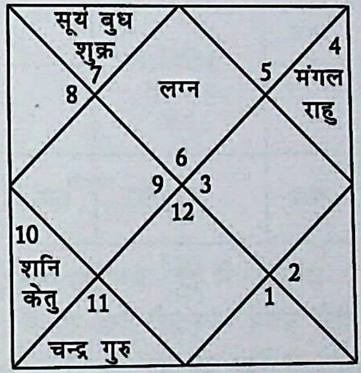

लग्न	25°39'	मंगल	19°39'	शुक्र	29°54'
सूर्य	21°43'	बुध	11°14'	शनि	12°09'
चन्द्र	26°31'	गुरु	09°39'	राहु	09°42'

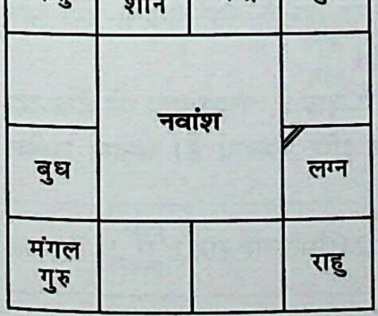

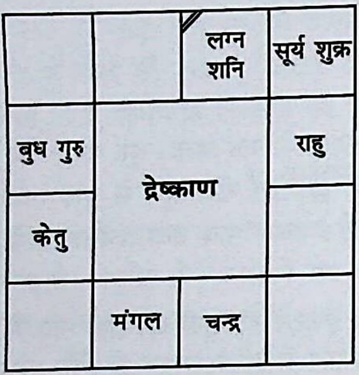

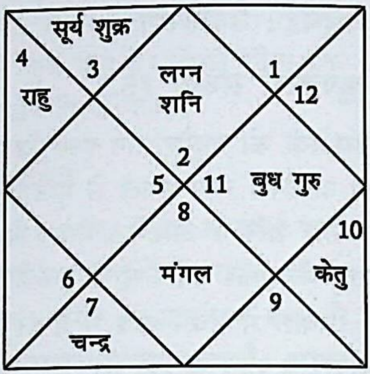

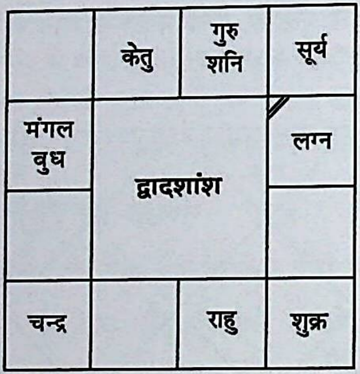

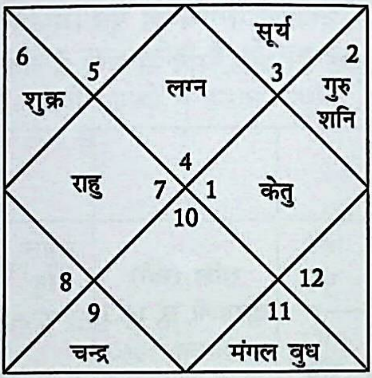

द्वादशांश में शनि अष्टमेश होकर, षष्ठेश गुरु को पीड़ित कर रहा है तथा दोनों पंचम भाव को देख रहे हैं। गुरु तथा नीच शुक्र को मंगल, अष्टम भाव से देख रहा है।

विंशोत्तरी दशा: रोग का शनि-चन्द्र (13 दिसम्बर 1981 से 13 जुलाई 1983) में पता चला। शनि (महादशा) पीड़ित पंचमेश है। चन्द्रमा (अन्तर्दशा) षष्ठ भाव में है। दोनों दशेश नीच अष्टमेश से दृष्ट हैं।

नवांश में षष्ठेश शनि पीड़ित तथा नीच है। चन्द्रमा द्वादशेश है।

द्रेष्काण में पीड़ित शनि पंचमेश को देख रहा है; यहां चन्द्रमा षष्ठ भाव में स्थित है तथा अष्टमेश गुरु से दृष्ट है।

द्वादशांश में शनि अष्टमेश है, षष्ठेश से युक्त है, पंचम भाव को देख रहा है, और इसका पंचमेश मंगल से परस्पर दृष्टि सम्बन्ध है। चन्द्रमा लग्नेश है तथा षष्ठ भाव में है।

योगिनी दशा: सिद्धा-उल्का (शुक्र-शनि) 24 सितम्बर 1981 से 24 नवम्बर 1982 तक चली।

शनि (अन्तर्दशा) की भूमिका पहले वर्णित हो चुकी है।

शुक्र (महादशा) सभी वर्ग कुण्डलियों में पीड़ित है तथा द्रेष्काण को छोड़कर, शेष वर्गों में पंचम भाव या पंचमेश से सम्बन्धित है।

नोट: सभी कुण्डलियों में अष्टमेश पंचम भाव से या पंचमेश से सम्बद्ध है। क्या ये वंशानुगत रोग का सूचक हो सकता है? अष्टम भाव का अधिकार क्षेत्र वंशानुगति पर भी है। जातक की माता मधुमेह रोग से पीड़ित थी।

कुण्डली संख्या 15.2

इस मामले में मधुमेह का पता 1951 में चला। जातक को मधुमेह की जटिलता के कारण अंधापन भी हो गया।

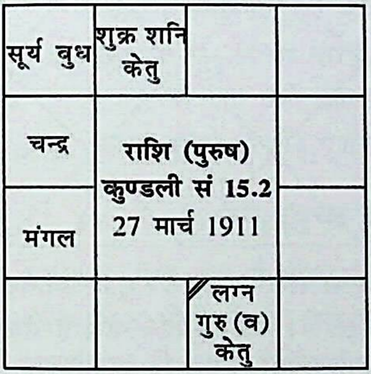

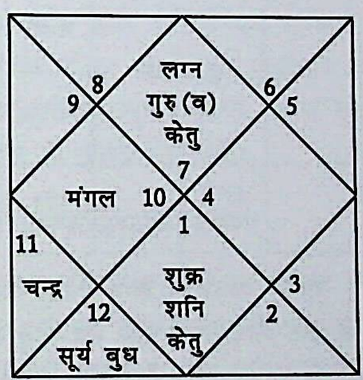

लग्न	04°58'	मंगल	17°27'	शुक्र	11°48'
सूर्य	13°11'	बुध	20°25'	शनि	12°49'
चन्द्र	05°53'	गुरु (व)	20°53'	राहु	17°33'

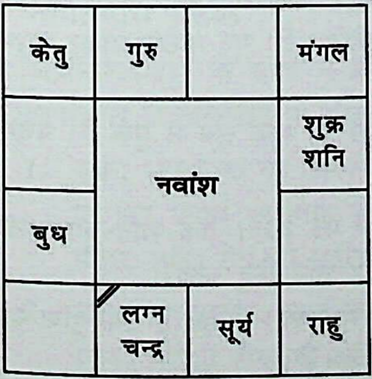

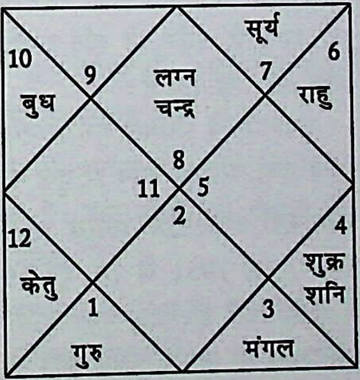

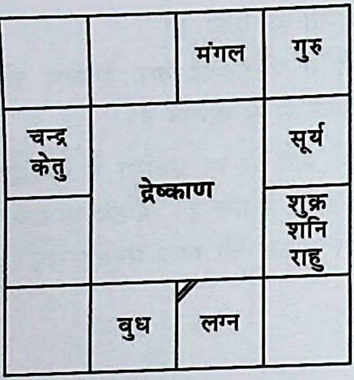

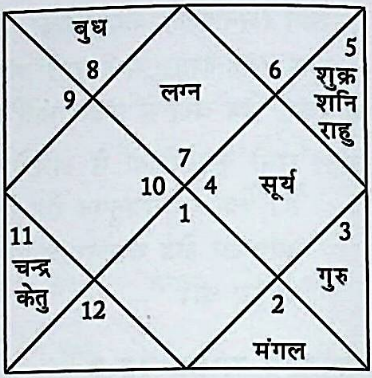

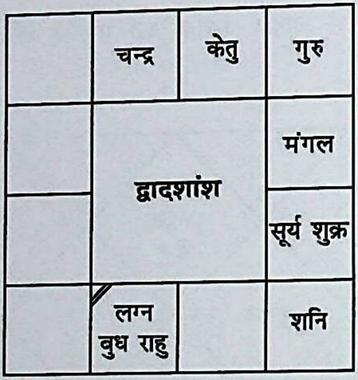

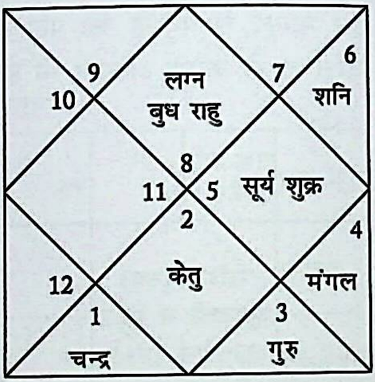

षष्ठेश, वक्री गुरु लग्न में राहु-केतु अक्ष पर शनि से दृष्ट है। शुक्र अष्टमेश है तथा शनि मंगल और राहु-केतु से पीड़ित है। पंचमेश शनि नीच है तथा मंगल व राहु-केतु से पीड़ित भी है।

नवांश में गुरु तथा शुक्र, शनि से पीड़ित हैं। राहु-केतु अक्ष पंचम भाव पर है।

द्रेष्काण में पंचम भाव, पंचमेश तथा शुक्र सभी राहु-केतु अक्ष से, मंगल की दृष्टि से, शनि की युति इत्यादि से पीड़ित हैं। गुरु षष्ठेश होकर पंचम भाव को देख रहा है।

द्वादशांश में पंचमेश गुरु अष्टम भाव में है। शुक्र सूर्य से युक्त है। पंचम भाव तथा पंचमेश शनि से दृष्ट हैं।

विंशोत्तरी दशा: 28 अगस्त 1948 से 7 मई 1951 तक शनि-बुध चली तथा 7 मई 1951 से 16 जून 1952 तक शनि-केतु चली।

यह पहले ही दर्शा चुके हैं कि शनि (महादशा) पीड़ित है तथा दृष्टि या भावेशत्व के कारण पंचम भाव से सम्बन्धित है।

द्वादशेश नीच बुध (अन्तर्दशा) षष्ठ भाव में पाप युक्त है। यह नवांश तथा द्रेष्काण में शनि और/या मंगल के प्रभाव में है तथा द्वादशांश में शनि और राहु-केतु अक्ष के प्रभाव में है।

आने वाली अन्तर्दशा का स्वामी, केतु पंचमेश शनि को पीड़ित कर रहा है। नवांश तथा द्रेष्काण में केतु पंचम भाव में है।

योगिनी दशा: भ्रामरी (मंगल) 9 मई 1950 से 9 मई 1954 तक चली।

राशि कुण्डली में मंगल (महादशा) पंचमेश शनि को देख रहा है। नवांश तथा द्रेष्काण में यह अष्टम भाव में स्थित है। द्रेष्काण में यह पंचमेश शनि को देख रहा है। द्वादशांश में यह नीच षष्ठेश है।

नोट: मधुमेह जैसे दीर्घकालीन रोग में, रोग के प्रारम्भ होने का निश्चित समय का पता लगाना असम्भव है। इस कारण से प्रत्यन्तर्दशा का सदा प्रयोग सम्भव नहीं है। कम समयावधि वाली योगिनी दशा में केवल महादशा का विचार करना प्रासंगिक होगा। ऊपर वाले उदाहरण में, भ्रामरी के बाद आने वाली दशाएं भद्रिका (बुध), उल्का (शनि) तथा सिद्धा (शुक्र) इत्यादि पूर्णत: राहत की सूचना नहीं देती।

2. आन्त्रपुच्छ शोथ (अपैन्डिसाइटिस)

यह एक ऐसा रोग है जिसकी चिकित्सा में साधारणत: शल्यक्रिया की आवश्यकता होती ही है। यदि चिकित्सा में देर न की जाए, तो सामान्यत: शल्यक्रिया से शीघ्र रोगविमुक्ति हो जाती है। यह रोग प्रबल रूप से प्राणघातक होने पर भी समय पर की गई साधारण शल्यक्रिया से ही ठीक हो जाता है।

ज्योतिषीय घटक

'अपेन्डिसाइटिस' के संदर्भ में हमें योग नहीं मिलते हैं। हमारे निरीक्षण के आधार पर निम्नलिखित पर विचार किया जा सकता है।

1. *शुक्र*: आन्त्रपुच्छ का कारक शुक्र है। आन्त्रपुच्छ शोथ होने के लिए इस पर पाप प्रभाव का होना पूर्वाकांक्षित है। पाप प्रभाव की तीव्रता (सूर्य, मंगल, शनि) रोग की प्रबलता की सूचक है।
2. *छठा भाग/षष्ठेश*: छठा स्थान आन्त्रपुच्छ की स्थिति का सूचक है। इसका पीड़ित होना भी अतिरिक्त अनिवार्य घटक है।

3. शरीर के किसी भी अंग में शोथ के लिए मंगल के प्रभाव का विशेष महत्त्व है। ऑपरेशन से आन्त्रपुच्छ को काटकर निकालने के लिए मंगल के अतिरिक्त शनि या अष्टमेश की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण होती है।

कुण्डली संख्या 15.3

षष्ठ भाव, षष्ठेश तथा शुक्र पर मंगल तथा अष्टमेश वक्री शनि का पाप प्रभाव स्पष्ट है।

नवांश में शुक्र छठे स्थान पर सूर्य तथा षष्ठेश गुरु से दृष्ट है। षष्ठेश स्वयं केतु के प्रभाव में है।

द्रेष्काण में शुक्र राहु-केतु अक्ष पर, षष्ठेश गुरु, अष्टमेश शनि तथा मंगल से पीड़ित है।

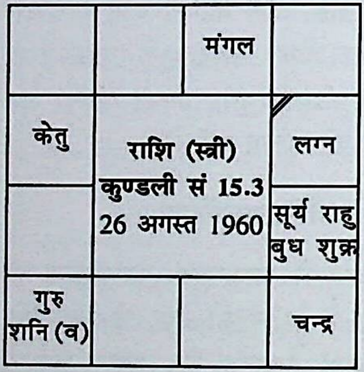

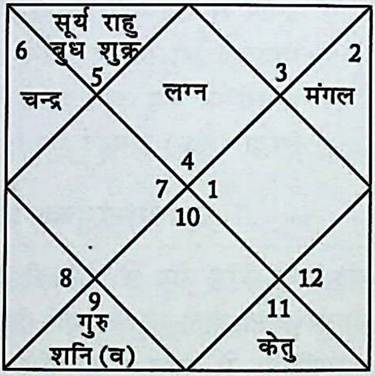

लग्न	01°55'	मंगल	21°49'	शुक्र	26°57'
सूर्य	09°21'	बुध	04°14'	शनि (व)	18°52'
चन्द्र	20°19'	गुरु	00°31'	राहु	22°18'

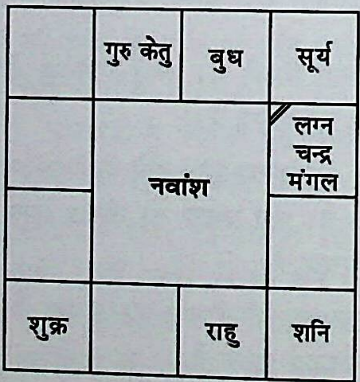

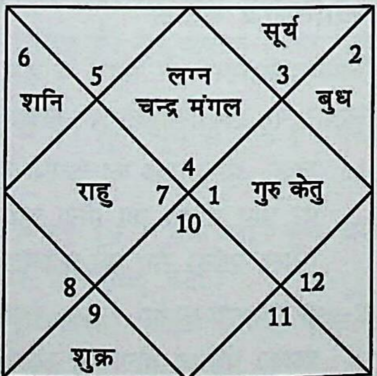

	शुक्र शनि राहु	चन्द्र	
	द्रेष्काण		लग्न
मंगल			सूर्य बुध
गुरु		केतु	

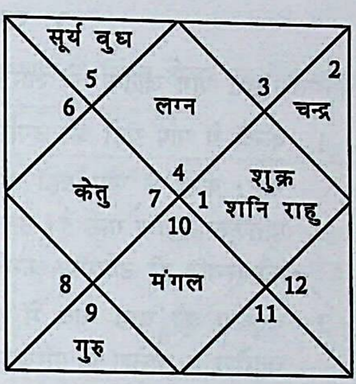

	राहु	चन्द्र	शुक्र
	द्वादशांश		लग्न शनि
मंगल			
गुरु	सूर्य	केतु	बुध

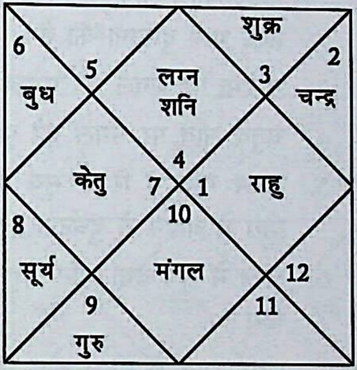

द्वादशांश में शुक्र द्वादश भाव में षष्ठेश गुरु से दृष्ट है।

जातक को *विंशोत्तरी दशा* राहु-शुक्र-राहु में कष्ट हुआ तथा आरोग्य के लिए शल्य चिकित्सा की गई। राहु तथा शुक्र (महादशा, अन्तर्दशा तथा प्रत्यन्तर्दशा नाथ) षष्ठेश गुरु, वक्री अष्टमेश शनि तथा मंगल के प्रभाव में हैं।

इसके अनुरूप *योगिनी दशा* उल्का-भद्रिका (शनि-बुध) थी। सभी वर्ग कुण्डलियों में शनि अष्टमेश है। राशि कुण्डली में यह षष्ठ भाव में वक्री है व मंगल से दृष्ट तथा षष्ठेश को प्रभावित कर रहा है। बुध भी शुक्र से संयुक्त है तथा राह-केतु सम्पात पर मंगल और गुरु से दृष्ट है।

यहां **कुण्डली संख्या 10.3** का पुनः उल्लेख करना संगत ही होगा जिसमें विंशोत्तरी दशा शुक्र-राहु-शनि (प्रकृत उदाहरण में राहु-शुक्र-राहु के सदृश) में आन्त्रपुच्छ शोथ की शल्यक्रिया की गई। यहां पर षष्ठेश पीड़ित है तथा शुक्र पाप मध्य में है। इस लग्न के लिए शुक्र पाप स्वामी है जो नवांश में अधिक पीड़ित है।

3. व्रण-बहुलता

निम्नलिखित योग जातक को शारीरिक रूप से क्षति पहुंचाते हैं।

1. केन्द्रों में पाप ग्रहों की उपस्थिति।

   नोट: केन्द्र में पाप ग्रहों की स्थिति को अनवरत स्वास्थ्य के लिए प्रतिकूल बताया गया है। उनकी प्रतिकूल प्रवृत्ति को केन्द्र में शुभ ग्रहों की स्थिति ही उदासीन करती है।

2. चतुर्थेश की षष्ठ भाव में या षष्ठेश की चतुर्थ भाव में स्थिति या चतुर्थेश व षष्ठेश में परिवर्तन योग।

   नोट: चतुर्थ भाव का सम्बन्ध जातक के निवास, वाहन इत्यादि से है। छठा भाव दुर्घटना का है।

3. चन्द्रमा पर मंगल का प्रभाव (दृष्टि या युति से)।
4. चतुर्थ भाव पर मंगल की दृष्टि या युति।
5. दशम भाव में स्थित सूर्य को चतुर्थ भाव से मंगल देखता हो। इस योग में वाहन से दुर्घटना होती है।
6. लग्न में सूर्य तथा शनि, राहु-केतु अक्ष पर हों। यह वृक्ष से गिरने का योग है।
7. चतुर्थ भाव में मंगल तथा सप्तम भाव में सूर्य या शनि हो।

   नोट: यह अग्नि से क्षति का योग है। मंगल-सूर्य की युति के कारण अग्नि से दुर्घटना होती है।

8. मंगल और शनि लग्न में तथा चन्द्रमा अष्टम भाव में हों।
9. चतुर्थेश तथा केतु षष्ठ भाव में हों।
10. शनि, मंगल तथा राहु इकट्ठे अष्टम भाव में हों।

    नोट: योग संख्या 8, 9, 10 शस्त्र से चोट या मृत्यु देते हैं।

11. राहु या केतु छठे, आठवें या बारहवें भाव में केन्द्र या त्रिकोण के स्वामी के साथ हो: अति व्रणोन्मुख होना।
12. चतुर्थेश पाप ग्रह से युक्त होकर केन्द्र में स्थित हो।
13. लग्नेश चतुर्थ भाव में चतुर्थेश के साथ हो तथा दशमेश से दृष्ट हो।
14. शनि चतुर्थ भाव में, चन्द्रमा सप्तम तथा मंगल दशम भाव में हो।

    नोट: योग संख्या 12, 13, 14 डूबने के कारण चोट या मृत्यु देते हैं।

कुण्डली संख्या 15.4

इस कुण्डली में अष्टमेश वक्री शनि षष्ठ भाव में स्थित होकर चतुर्थेश वक्री बुध को देख रहा है और स्वयं षष्ठेश मंगल से दृष्ट है।

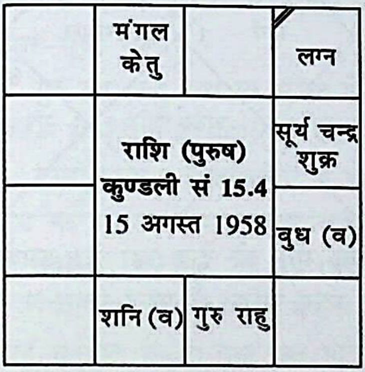

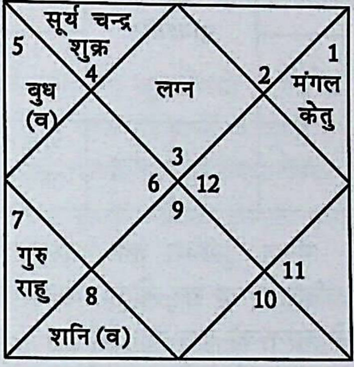

लग्न	24°25'	मंगल	21°41'	शुक्र	05°18'
सूर्य	28°18'	बुध (व)	13°13'	शनि (व)	25°53'
चन्द्र	24°04'	गुरु	02°53'	राहु	01°02'

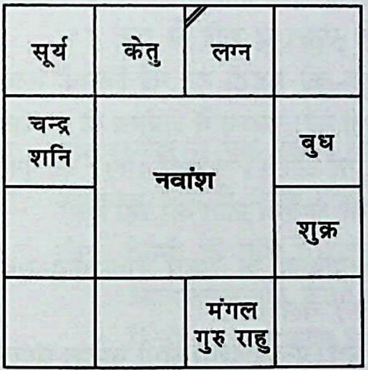

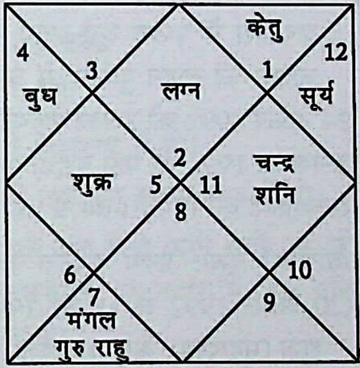

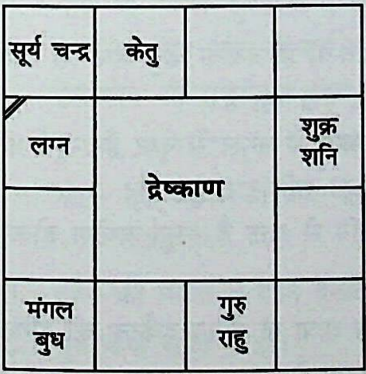

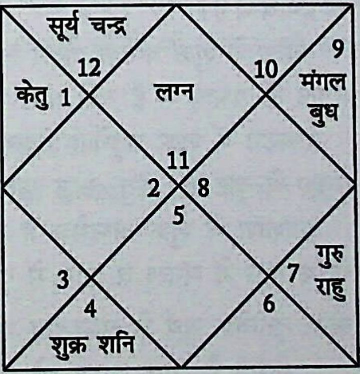

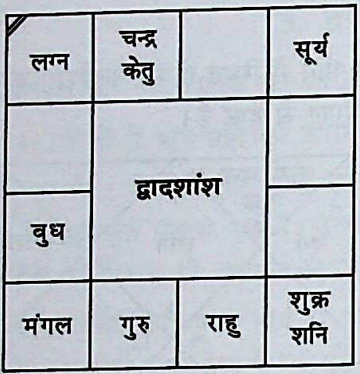

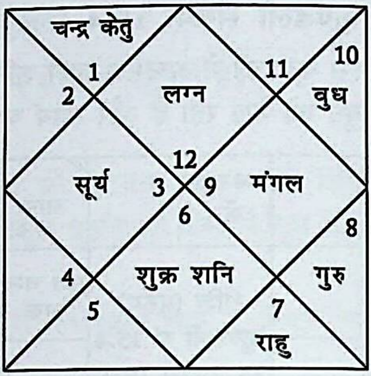

मंगल, तृतीयेश तथा अस्थि के कारक सूर्य को देख रहा है। इसके अतिरिक्त यह राहु-केतु अक्ष पर है। गुरु स्वयं पीड़ित है परन्तु पंचम भाव से लग्न को देख रहा है।

नवांश में षष्ठेश चतुर्थ भाव में शनि से दृष्ट है जबकि मंगल, राहु तथा अष्टमेश गुरु, षष्ठ भाव में है।

द्रेष्काण में चतुर्थेश षष्ठ भाव में शनि से युक्त तथा मंगल से दृष्ट है।

द्वादशांश में षष्ठेश सूर्य चतुर्थ भाव में मंगल व शनि से दृष्ट है।

जातक की वाहन दुर्घटना में बायीं जांघ की हड्डी टूट गई जिसके लिए 24 अप्रैल 1992 को उसकी शल्यक्रिया की गई। प्रारम्भ में आरोग्य के पश्चात 2 नवम्बर 1992 को यही हड्डी पुनः टूट गई और 11 नवम्बर 1992 को पुनः शल्यक्रिया करनी पड़ी। तब से वह उत्तरोत्तर आरोग्य प्राप्त कर रहा है।

विंशोत्तरी दशा: प्रथम दुर्घटना तथा शल्यक्रिया के समय शुक्र-केतु-सूर्य (20 अप्रैल 1992 से 11 मई 1992 तक) चली।

शुक्र (महादशा), केतु (अन्तर्दशा) तथा सूर्य (प्रत्यन्तर्दशा) सभी षष्ठेश मंगल के प्रभाव में हैं।

नवांश में शुक्र षष्ठेश होकर चतुर्थ भाव में है जबकि केतु अष्टमेश तथा मंगल के प्रभाव में है तथा षष्ठ भाव को देख रहा है।

द्रेष्काण में शुक्र चतुर्थेश होकर षष्ठ भाव में मंगल से दृष्ट है। सूर्य भी मंगल से दृष्ट है। केतु, षष्ठ भाव में स्थित शनि द्वारा दृष्ट है।

द्वादशांश में शुक्र अष्टमेश है तथा शनि से युक्त है। सूर्य षष्ठेश होकर चतुर्थ भाव में मंगल व शनि से दृष्ट है।

नोट: तृतीयेश सूर्य से सम्बद्धता, गमन या यात्रा के दौरान दुर्घटना को इंगित करती है; शुक्र वाहन को इंगित करता है।

दूसरी दुर्घटना शुक्र-केतु-गुरु (14 सितम्बर 1992 से 10 नवम्बर 1992 तक) में हुई जबकि शल्यक्रिया शुक्र-केतु-शनि में हुई। गुरु तथा शनि दोनों षष्ठेश मंगल के प्रभाव में हैं।

योगिनी दशा: 24 मार्च 1992 से 24 मई 1992 तक धान्या-पिंगला (गुरु-सूर्य) चली।

गुरु राहु-केतु अक्ष पर मंगल से दृष्ट है तथा वर्ग कुण्डलियों में विभिन्न प्रकार से पीड़ित है। सूर्य (अन्तर्दशा) की भूमिका पहले ही बताई जा चुकी है।

दूसरी दुर्घटना तथा उपचार के समय क्रमशः भ्रामरी-भ्रामरी (मंगल-मंगल) 24 मई 1992 से 4 नवम्बर 1992 तक तथा भ्रामरी-भद्रिका (मंगल-बुध) 4 नवम्बर 1992 से 24 मई 1993 तक थी।

राशि कुण्डली में मंगल षष्ठेश है, नवांश में छठे भाव में है, द्रेष्काण में यह चतुर्थेश, षष्ठेश तथा षष्ठ भाव को देख रहा है तथा द्वादशांश में षष्ठेश को देख रहा है।

बुध वक्री चतुर्थेश है जो विभिन्न वर्ग कुण्डलियों में शुभ तथा अशुभ मिश्रित प्रभावों में है।

4. क्षय रोग, तपेदिक

(जातक तत्त्व से)

1. शुक्र लग्नेश से युक्त होकर किसी भी त्रिकभाव में हो।
2. कारकांश लग्न से मंगल चौथे भाव में तथा राहु द्वादश भाव में हो।

   नोट: किसी भी राशि में सबसे अधिक अंश प्राप्त करने वाले ग्रह को आत्मकारक ग्रह कहते हैं। आत्मकारक ग्रह नवांश में जिस राशि में हो वह कारकांश लग्न होता है।
3. राशि या नवांश कुण्डली में सूर्य तथा चन्द्र स्थान परिवर्तन योग में हों। कर्क या सिंह राशि में सूर्य व चन्द्र इकट्ठे हों तो भी जातक को क्षय रोग होने की सम्भावना होती है।
4. चन्द्रमा, शनि से युक्त तथा मंगल से दृष्ट हो।

   नोट: इस मामले में प्रायः क्षय रोगी के सम्पर्क में आने से रोग ग्रहण होता है।
5. लग्न को मंगल व शनि देखते हों।
6. बुध कर्क राशि में हो।

नोट: उपरिलिखित सभी योग अति सामान्य हैं। अतः इनका प्रयोग सावधानी से ही करना चाहिए।

5. अपस्मार (मिरगी)

(जातक तत्त्व से)

1. शनि तथा चन्द्र, मंगल से दृष्ट हों।

   नोट: ऊपर यही योग क्षय रोग के लिए भी बताया गया है।
2. चन्द्र तथा राहु अष्टम भाव में हों।
3. छठे या आठवें भाव में शनि-मंगल युति हो।
4. सूर्य, चन्द्र, मंगल इकट्ठे लग्न या अष्टम भाव में पाप दृष्ट हों।
5. ग्रहण काल में जन्म हो, गुरु लग्न या त्रिकोण में हो, शनि तथा मंगल छठे या आठवें भाव में हों।
6. राहु लग्न में तथा चन्द्रमा षष्ठ भाव में हो।

6. कुष्ठरोग

(जातक तत्त्व से)

1. बुध मेष राशि में, चन्द्रमा दशम भाव में, तथा शनि-मंगल किसी भी भाव में संयुक्त हों।
2. शनि, मंगल, चन्द्र तथा शुक्र जलतत्त्व राशियों में पाप दृष्ट हों।

   नोट: यह योग उस त्वचा रोग को देता है जिसमें से द्रव रिसता है।
3. कारकांश लग्न से चौथे भाव में चन्द्रमा, मंगल से दृष्ट हो।
4. कारकांश लग्न से चतुर्थ भाव में चन्द्रमा केतु से दृष्ट हो।
5. मिथुन, कर्क या मीन नवांश में स्थित चन्द्रमा, मंगल या शनि से दृष्ट हो।
6. वृष, कर्क, वृश्चिक या मकर राशियां त्रिकोण में पड़ती हों तथा उनमें पाप ग्रह हों या पाप दृष्ट हों।
7. लग्नेश, चन्द्रमा तथा बुध राहु-केतु अक्ष पर हों।
8. मंगल षष्ठेश होकर लग्न में हो।
9. षष्ठेश से युक्त शनि लग्न में हो।
10. षष्ठेश से युक्त सूर्य लग्न में हो।

11. मंगल लग्न में, सूर्य अष्टम में तथा शनि चतुर्थ भाव में हो।
12. चन्द्रमा तथा शुक्र जलराशि में पापग्रह से पीड़ित हों।

    नोट: इस योग के कारण त्वचा पर सफेद चकत्ते पड़ जाते हैं।
13. कारकांश लग्न से चतुर्थ भाव में चन्द्रमा, शुक्र से दृष्ट हो।

    नोट: यह पूर्व योग की तरह ही फल करता है।
14. मेष या वृष राशि में चन्द्र, मंगल तथा शनि हों।
15. चन्द्र लग्न में, सूर्य सप्तम में तथा शनि और मंगल दूसरे या बारहवें भाव में हों।

यहां पर पाठकों को पहले से सचेत किया जाता है कि ये योग 'कुष्ठ रोग' के अन्तर्गत वर्णित हैं जिसका अर्थ 'लेपरोसी' (leprosy) है। इनमें से बहुत से योग विभिन्न त्वचा रोगों से अधिक और कुछ इंगित नहीं करते तथा यह आवश्यक नहीं कि यह योग 'लेपरोसी' का ही कारण हों। शास्त्रीय योगों का शब्दशः प्रयोग करने में सदा त्रुटि की संभावना बनी रहती है। किसी व्यक्ति की जन्मपत्री पर इनका प्रयोग करते हुए अत्यन्त लचीलेपन की आवश्यकता है।

7. दन्त विकार

(जातक तत्त्व से)

1. लग्न या द्वितीय भाव, मेष या वृष राशि हो तथा पापयुक्त या पाप दृष्ट हो।
2. सप्तम भाव में पाप ग्रह शुभग्रहों से अदृष्ट हों।
3. सप्तमेश से द्वितीय भाव में राहु हो। इस योग के कारण दन्त उन्नत (उठे हुए/दिखने वाले) होते हैं।
4. द्वितीयेश तथा षष्ठेश इकट्ठे पापयुक्त हों।
5. राहु लग्न या पंचम भाव में हो।

8. अण्ड वृद्धि

(जातक तत्त्व से)

यह वह रोग है जिसमें अण्डकोष में द्रव इकट्ठा हो जाने के कारण उनका आकार बढ़ जाता है। सामान्यतः इसमें शल्यक्रिया की आवश्यकता होती है।

1. मंगल तथा शुक्र इकट्ठे अष्टम भाव में हों।
2. मंगल तथा शुक्र इकट्ठे मंगल की राशि (अर्थात मेष या वृश्चिक) में हों।

3. चन्द्र और शुक्र, मंगल की राशि में गुरु एवं शनि से दृष्ट हों।
4. कारकांश लग्न में गुलिक केवल बुध से दृष्ट हो।

9. अर्श (बवासीर)

ऐसा कहा जाता है कि शत प्रतिशत व्यक्तियों को अर्श रोग होता है; पचास प्रतिशत व्यक्तियों को समस्या उभर कर आती है तथा वे उपचार ढूंढते हैं। अर्शरोग कभी-कभी अति कष्टपूर्ण हो जाता है और उपचार के लिए शल्यक्रिया की आवश्यकता होती है। जातक तत्त्व से लिए गए योग निम्नलिखित हैं।

1. शनि पाप ग्रहों से दृष्ट हो।
2. लग्न में शनि तथा सप्तम भाव में मंगल हो।
3. सूर्य लग्न में, मंगल वृश्चिक में तथा शनि सप्तम में हो।
4. लग्नेश तथा मंगल सप्तम भाव में तथा शनि बारहवें भाव में हो।
5. बारहवें भाव में शनि, मंगल तथा लग्नेश से दृष्ट हो।

10. यौन दुर्बलता या नपुंसकता

(जातकालंकार से)

1. शनि व शुक्र इकट्ठे दशम भाव में हों।
2. शुक्र से छठे या बारहवें स्थान में शनि हो।
3. विषम राशियों में स्थित सूर्य व चन्द्र में परस्पर दृष्टि हो।
4. विषम राशियों से बुध व शनि में परस्पर दृष्टि हो।
5. सम राशियों में सूर्य व मंगल में परस्पर दृष्टि हो।
6. लग्न तथा चन्द्र विषम राशियों में हों तथा दोनों सम राशि में स्थित मंगल से दृष्ट हों।
7. चन्द्र विषम राशि में तथा बुध सम राशि में हों तथा दोनों मंगल से दृष्ट हों।
8. लग्न, चन्द्र तथा शुक्र सभी पुरुष (विषम) राशियों में हों।

   नोट: अपने साथी को यौन रूप से संतुष्ट कर पाने की असमर्थता के कुछ अन्य योग (इसी ग्रन्थ से) इस प्रकार हैं।

   (i) शुक्र किसी वक्री ग्रह की राशि में हो।
   (ii) लग्नेश लग्न में तथा शुक्र सप्तम में हो।
   (iii) चन्द्र-शनि की युति मंगल से चौथे या दसवें भाव में हो।

11. विभिन्न रोग

(जातक तत्त्व से)

1. गुरु, मंगल, शनि इकट्ठे चतुर्थ भाव में हों तो हृदय रोग देते हैं।
2. एकादशेश षष्ठ भाव में विविध रोग देता है।
3. शनि और मंगल छठे भाव में राहु व सूर्य से दृष्ट हों तो दीर्घस्थायी रोग देते हैं।
4. राहु या केतु सप्तम भाव में या शनि अष्टम भाव में हो, और चन्द्र लग्न में हो तो अजीर्ण (अपच) होता है।
5. गुरु तथा राहु लग्न में दन्त रोग देते हैं।
6. षष्ठेश तृतीय भाव में हो तो उदर रोग देता है।
7. शनि षष्ठ भाव में पैरों में कष्ट देता है।
8. राहु या केतु षष्ठ भाव में हो तो दन्त या ओष्ठ रोग होता है।
9. लग्नेश, मंगल या बुध की राशि में हो तथा शत्रु से दृष्ट हो तो गुदा क्षेत्र में रोग होता है।
10. कर्क या वृश्चिक नवांश में चन्द्रमा पाप युक्त हो तो गुप्त रोग होता है।

    नोट: गुप्त रोग का अर्थ वह रोग हो सकता है जिसे व्यक्ति अन्य लोगों से छुपाता है या यौन सम्बन्धों से प्राप्त रोग हो सकता है।
11. मंगल, बुध तथा लग्नेश इकट्ठे सिंह राशि में चतुर्थ या द्वादश भाव में हों तो गुदा या गुदा क्षेत्र में रोग हो सकता है।
12. अष्टम भाव में पाप ग्रह गुप्त रोग देता है। द्वादश भाव में गुरु का भी यही फल होता है।
13. बुध, षष्ठेश तथा मंगल इकट्ठे हों तो जननांग में रोग होता है।
14. अष्टमेश अष्टम भाव में हो तो शरीर रोगोन्मुख होता है।

यहां हमने कुछ रोगों के योग दिए हैं। यद्यपि शास्त्रीय ग्रन्थों में और भी सूचनाएं उपलब्ध हैं परन्तु पर्याप्त शोध के बिना इनको कण्ठस्थ करने का उपयोग बहुत अधिक नहीं है। इन नियमों को शब्दश: प्रयोग न करके अत्यन्त लचीलेपन से प्रयोग करने की आवश्यकता है। केवल तभी ज्योतिषीय सूत्रों से नए अर्थ की व्युत्पत्ति की जा सकेगी जिससे प्रचुर मात्रा में गूढ़ अर्थों को प्रकट किया जा सकेगा।

षोडश अध्याय

उपसंहार

यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा
यावच्चेन्द्रियशक्तिप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्
प्रोद्दीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः।।

जब तक शरीर रूपी घर स्वस्थ है, जब तक बुढ़ापा दूर है, जब तक (समस्त) ज्ञानेन्द्रियां एवं कर्मेंद्रियां अविकल हैं, जब तक आयु का क्षय नहीं होता, तब तक बुद्धिमान व्यक्ति को आत्म कल्याण हेतु प्रयत्न करते रहना चाहिए। घर में आग लग जाने पर कुंआ खोदने का प्रयास करना सर्वथा वृथा ही होगा।

– वैराग्यशतक

अध्याय 1 चिकित्सा ज्योतिष से हमारा प्रारम्भिक परिचय कराता है। ज्योतिष तथा चिकित्सा दोनों प्राचीन हैं तथा दोनों ने भारतीय जीवनशैली को निर्देशित किया। दोनों के अविभेद्य सम्बन्धों पर बल दिया गया है। वामन पुराण से ऋषि पुलस्त्य तथा ऋषि नारद के बीच संवाद लिया गया है। भचक्र की विभिन्न राशियों का शरीर के अंगों के प्रतिनिधि रूप से वर्णन है। राशियों का भौतिक आकार भी प्रस्तुत किया गया है। वर्तमान समय में चिकित्सा ज्योतिष की अनुरूपता बताई गई है। रोग के सम्बन्ध में ज्योतिषी बनाम चिकित्सक वर्णन है। वामन पुराण के वर्णन पर आधारित एक चित्र में भचक्र की विभिन्न राशियों से सम्बन्धित शरीर के अंगों को प्रदर्शित किया गया है।

अध्याय 2 में जन्मपत्री के विभिन्न भावों, भचक्र की राशियों तथा विशेषताओं, कुण्डलियों के प्रारूप (उत्तर भारतीय, दक्षिण भारतीय तथा पूर्व भारतीय) तथा विभिन्न ग्रहों की प्रकृति का वर्णन है। आवश्यक तथ्य, जैसे ग्रहों की प्रकृति, उनका स्वामित्व, उच्च तथा नीच राशियां, मूल त्रिकोण राशियां, नैसर्गिक

सम्बन्ध, अस्त होना, वक्री होना इत्यादि का वर्णन है। नक्षत्र तथा उनके स्वामियों को दर्शाया गया है। चिकित्सा ज्योतिष के सम्बन्ध में वर्ग कुण्डलियों का वर्णन है। दो आवश्यक दशा प्रणालियां जैसे विंशोत्तरी दशा तथा योगिनी दशा संक्षिप्त रूप में बताई गई हैं। विभिन्न ग्रहों का आयुर्वेद के तीन मूल तत्त्वों से सम्बन्ध भी संकेतित है।

अध्याय 3 में महर्षि पराशर के ज्ञात नियमों पर आधारित शुभ ग्रह तथा पाप ग्रह ज्ञान करना, योगकारक तथा मारक ग्रहों का वर्णन है। गुलिक का संक्षिप्त वर्णन तथा विभिन्न भावों में इसके फल कहे गए हैं। अन्त में बाईसवां द्रेष्काण, चौसठवां नवांश, सर्प द्रेष्काण का परिचय है। केवल शुभ तथा अशुभ ग्रहों के आधार पर स्वास्थ्य तथा रोग ज्ञात करने की विधियां कही हैं।

अध्याय 4 में कुण्डली के विभिन्न भावों तथा विभिन्न राशियों द्वारा इंगित शारीरिक अंगों का सम्बन्ध बताया गया है। चिकित्सा ज्योतिष से सम्बन्धित भावों के कारकत्व की रूपरेखा है। शास्त्रकारों के अनुसार उदित लग्न के द्रेष्काण तथा भावों द्वारा प्रदर्शित शारीरिक अंगों का परस्पर सम्बन्ध बताया गया है। अन्त में वामन पुराण के अनुसार भगवान विष्णु के नक्षत्र शरीर का वर्णन करते हुए नक्षत्रों के माध्यम से शरीर के अंगों को चित्रांकित भी किया गया है।

अध्याय 5 में चिकित्सा ज्योतिष के संदर्भ में विभिन्न ग्रहों के कारकत्व प्रस्तुत हैं। इन्हें मुख्य रूप से फलदीपिका तथा प्रश्नमार्ग से लिया गया है। रोग की प्रकृति ज्ञात करने के लिए इनको समझना आवश्यक है।

अध्याय 6 में बालारिष्ट का वर्णन है। बालपन में रोग तथा असामयिक मृत्यु के विस्तृत योग दिए गए हैं। नवजात के माता पिता को कष्ट देने वाले योगों का भी वर्णन है। किसी प्रतिकूल घटना के होने के समय को ज्ञात करने की विधि बताई गई है। विभिन्न नियमों को उदाहरण कुण्डलियों पर प्रयोग करके स्पष्ट किया गया है।

अध्याय 7 में नवजात को कष्ट देने वाले योगों को निरस्त करने वाले योगों का वर्णन है। जब तक किसी कुण्डली में कष्ट के निरस्तीकरण के योगों का अध्ययन न कर लिया जाए तब तक बालारिष्ट के योगों को किसी कुण्डली पर लागू नहीं माना जा सकता। यह योग जिन्हें अरिष्टभंग योग कहते हैं, किसी कुण्डली में गुणात्मक वृद्धि को दशति हैं।

अध्याय 8 में जातक में वंशानुगत रोग की उपस्थिति के नियम बताए गए हैं। साधारण नियमों को, जो रोग व स्वास्थ्य पर अधिकार रखते हैं, दशा प्रणाली के साथ जोड़कर विभिन्न वंशानुगत रोगों से ग्रसित जातकों की कुण्डलियों पर प्रयोग किया गया है। जन्म के समय चल रही दशान्तर्दशादि के महत्त्व पर बल दिया गया है।

अध्याय 9 उन नियमों को बताता है जो जातक के अच्छे या बुरे स्वास्थ्य को इंगित करते हैं। मौलिक रूप से अच्छे स्वास्थ्य को संकेत देने वाली कुण्डली में दशाओं में मामूली उलट फेर स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालता है। जबकि मूल रूप से दुर्बल कुण्डली के मामले में ऐसा नहीं है। यहां पर वर्णित नियम चिकित्सा ज्योतिष के लिए अति आवश्यक हैं।

अध्याय 10 सबसे आवश्यक विषय 'रोगोत्पत्ति का समय एवं परिणाम' पर आधारित है। एक ज्योतिषी अपनी योग्यता के आधार पर रोग के आक्रमण के समय की भविष्यवाणी करने में सक्षम है। सूक्ष्म ज्योतिषीय चिकित्सा नियमों का इस अध्याय में वर्णन है। बारह जातकों, जिनके रोग तथा रोग की तीव्रता परस्पर भिन्न है, की कुण्डलियों का विश्लेषण विंशोत्तरी तथा योगिनी दशाओं की दृष्टि से किया गया है। अध्याय के अन्त में एक स्त्री जातक के स्वास्थ्य को, माता-पिता तथा सहोदर की कुण्डलियों से ज्ञात करने की सुदृढ़ विधि विस्तार से बताई गई है। इस विधि को जब सावधानीपूर्वक प्रयोग किया जाता है तो विस्मयकारी शुद्ध परिणाम मिलते हैं।

अध्याय 11 में मानसिक रोगों का वर्णन है। मानसिक असन्तुलन पैदा करने वाले शास्त्रीय योगों की रूपरेखा बताई गई है। मानसिक रोगों का ज्योतिषीय आधार, विशेष रूप से चन्द्र, बुध, गुरु की रूपरेखा को उजागर किया है। विभिन्न नियमों को मानसिक रोगियों की वास्तविक कुण्डलियों पर लगाकर व्याख्या की गई है।

अध्याय 12 में नेत्र रोगों के योग दिए गए हैं। स्तरीय ज्योतिषीय ग्रन्थों से अल्प दृष्टि, नेत्रों में चोट, अंधापन तथा एक आंख में अन्धेपन के योगों का चुनाव करके प्रस्तुत किया गया है। नेत्र रोगों के योगों को उदाहरण कुण्डलियों पर लगाकर दिखाया गया है।

अध्याय 13 में श्रवण तथा वाणी दोषों का वर्णन है। कर्ण रोगों के शास्त्रीय योगों का वर्णन है। इस अध्याय के उत्तरार्ध में वाणी दोषों का वर्णन है। अन्त

में शत्री निगम के, जन्म से मूकबधिर बच्चों से सम्बन्धित शोध की उदाहरण सहित व्याख्या की गई है।

अध्याय 14 बहुप्रचलित हृदय रोग से सम्बन्धित है। हृदय रोग के मुख्य नियमों की विस्तृत रूप से व्याख्या की गई है। हृदय रोग का साध्य तथा असाध्य प्रकार, वंशानुगत हृदय रोग, औषध अथवा शल्यक्रिया की आवश्यकता वाले हृदय रोग के प्रकार को, वास्तविक हृदय रोगियों की कुण्डलियों द्वारा समझाया गया है।

अध्याय 15 में विविध रोगों का फुटकर विवेचन है। चिकित्सा सम्बन्धी स्थितियां जिनमें मधुमेह, अपेन्डिसायटिस, क्षयरोग, कुष्ठ रोग, मिरगी, दन्तरोग, दुर्घटना उन्मुख होना, बवासीर, अण्डवृद्धि, उदर रोग, नपुंसकता आदि हैं, का वर्णन है। इस अध्याय में वर्णित योग अधिकांशतः जातक तत्त्व से लिए गए हैं। जबकि इनमें से बहुत से योग साधारण दिखाई देते हैं, तो भी इनमें अन्ततः आवश्यक तथा अति सूक्ष्म ज्योतिषीय सिद्धान्त ही हैं।

शब्दार्थ

अग्न्याशय	Pancreas
अण्डवृद्धि	Hydrocele
अण्डाशय	Ovary
अतिसार	Diarrhoea
अपस्मार (मिरगी)	Epilepsy
अर्श (बवासीर)	Haemorrhoids; piles
आंत	Intestine
आन्त्रकृमि	Intestinal parasites
आन्त्रपुच्छ	Appendix
आन्त्रपुच्छ शोथ	Appendicitis
आन्त्रपेशी	Mesentery
आमाशय	Stomach
कर्क रोग	Cancer
कुष्ठ रोग	Leprosy
क्षय रोग (तपेदिक)	Tuberculosis
गर्भाशय	Uterus (womb)
गुदा द्वार	Anal orifice
गुदान्त भाग	Perineum
गुदामार्ग	Anal canal
गुप्तांग	External genitalia
गुर्दा	Kidney
चयापचय	Metabolism
जननांग	Organ of generation (penis)
तिल्ली (प्लीहा)	Spleen
पक्वाशय	Duodenum
पित्त	Bile
पित्ताशय	Gall bladder
प्रमेह (मधुमेह)	Diabetes
फुफ्फुस	Lung
भोजन नलिका	Oesophagus
मज्जा	Bone marrow
मलाशय	Rectum
मस्तिष्क	Brain
मूत्रनली	Utrethra
मूत्रप्रणाली	Ureter
मूत्राशय	Urinary bladder
यकृत	Liver
रक्ताल्पता	Anaemia
लसिका	Lymph
वक्षःस्थल	Thorax
वीर्य थैली	Seminal vesicle
वृषण (अण्डकोश)	Testis
शिशन ग्रन्थि	Prostate
श्वसन प्रणाली	Trachea
हंसिया	Clavicle; collar bone

पुस्तक के विषय में

चिकित्सा ज्योतिष के मौलिक तत्त्व वैदिक ज्योतिष की एक स्तरीय पुस्तक है। इसमें जन्म कुण्डली के विश्लेषण से सम्बन्धित नियमों, विशेष रूप से रोग तथा इसके विभिन्न पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। इस पुस्तक के मुख्य आकर्षण हैं :

- रोग के सम्बन्ध में कुण्डली के विश्लेषण के नियम।
- कुण्डली से रोग निर्धारण की अचूक विधि का वर्णन एवं चार वर्ग कुण्डलियों तथा दो प्रकार की दशाओं का प्रयोग।
- आरोग्य एवं अनारोग्य के नियमों का विवेचन।
- जन्मजात रोगों के योग।
- रोगों का प्रकोप तथा उनके परिणामों का सही समय सुनिश्चित करने की विस्तृत विधि।
- शरीर के किस अंग में रोग होने की संभावना है, इसके संबंध में भावों तथा ग्रहों के कारकत्व एवं द्रेष्काण के प्रयोग का संकेत।
- बालारिष्ट तथा अरिष्ट भंग के नियमों का विस्तार से वर्णन।
- रोगों की उत्पत्ति व परिणाम का निर्णय करने के लिए ज्योतिष के सूक्ष्म नियमों, जैसे बाइसवें द्रेष्काण, चौसठवें नवांश, सर्पद्रेष्काण, गुलिक आदि का प्रयोग।
- रोगों के सूचक कुछ शास्त्रीय योग तथा उनका वास्तविक कुण्डलियों के माध्यम से वैज्ञानिक विवेचन।

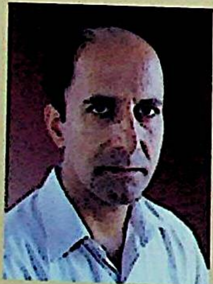

डॉ. के एस 'चरक'

एम.एस. (शल्य चिकित्सा), एफ.आर.सी.एस. (यू.के.)

विभागाध्यक्ष, शल्य चिकित्सा
इंडियन स्पाइनल इंजरीज सेंटर
वसन्त कुंज, नई दिल्ली–110070

वैदिक ज्योतिष की कतिपय
उत्कृष्ट पुस्तकों के प्रणेता

ISBN 81-901008-6-6